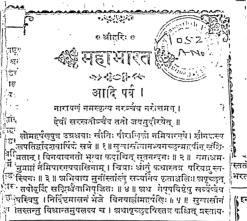
(घ) विषय चिपय पृष्ठ प्रष्को राजनीतिकाउपदेश ७०८ द्रोणाचार्यका द्रुपदको इराना धनकी ईपाँ ७१३ धृष्ट्युम्न और द्वीपदीकाजन्म उबीको हस्तिनापुरसे ७१६ पाञ्चाल नगरमें जानेका ाल देनेके लिये दुर्योधन धिचार धृतराष्ट्रसे प्रार्थना ७२० द्वीपदीके पूर्वजनमकी क्रथा इवीका वारणावतमें जाना ७२२ गन्धर्वका पराजय तागृढ् घनानेको पुरोचन ७३१ सुर्यपुत्री तपतीको कथा हिंद्ना ७३६ तपती और संघरएङा इडवीका बारणायतमें जाना संचाद ंशि-विष्ठिर और भीमकी लाजा ७३८ वर्जुन तापत्य क्यों फटाया ? ७४४ वसिँएचरित्र, राजपुरोदित में वातचीत ŧξ चाधिये ख़बीदा लाजाभवनमें न्छन् ७४५ विश्वाभित्रसे वैर और प्रशन न्वेष वेशकी महिमा नायवनमें जागः सीनं हाके पार होना ७४१ रोजा कल्मापपादकी कथा ग्राच-पहर्वीको गएन बनमें जाना ७५६ राजाको शापसे छटना मिका यस लाना ७६१ सक्तिके प्रत्न पराशरका क्रोध गीकी म ज़ौर दिखिम्बा धौर भृगुवंशियोंकी कथा म और हिडिम्बका युद्ध ७६४ जीवेंका क्रोध वारी, ७६७ छोर्दके सोधकी ग्रान्ति हपेश देश्यक वध पॉका -:प्राचकी उत्पत्ति ७६८ राज्ञस संदारके लिये पराग्रर द्रका नगरीमें जाना का यश 🤻 गुक्ते कुट्रं दकी चिन्ता ७७२ कल्मापपादको पुत्र देनेका ्रेञ्चणीका सम्बाद कारण योर पिता ७७५ पारदवीने घीम्यकी पुरोहित पके लिये ७७६ पाएडच प ञ्चाल नगरमें र ७७= स्वयंम्बर रचना और ा संवाद धुम्नका राजाञीक सुनाना **.सा** सृत ७=२ स्वयंवरमें श्राप्ट वेठे



€ E नारायण भगवान् , नरीमें उत्तम नर-भगव न तथा वाणीकी श्रिधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार करके इतिहास पुराणादि की व्याच्या का आरम्भ करें॥ ॥ एक समय सौति उपनामधारी. प्राणींकी कथा कहने में प्रवीण, सूतकुलको श्रानन्द देनेवाले लोमहर्पण े पुत्र उत्रश्रवा, नैमिपारएयमें, कुलपति (दश सहस्र मनुष्योका प्रथा श्रादिसे पालन करनेवालें) सोनकके वारहवर्षके सब श्रर्थात जिसमें अनेकी मनुष्यीको अर्जादिसे नुप्त कियाजाता था और जिसमें अनेको कर्म करनेवाले थे उस यहाँमें आनन्दसे वैठेहए तरवार की धारकी समान श्रखएड बतवाले बहार्पियोंके समीप विनयसे नार्के जी हुए आपहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ श्रेष्ठ तपस्त्रियाने, नैमिपारग्यवासिया पूजित श्राश्रममें श्रायेहुए उनके (उन्नश्रवाके) मुखसे विचित्र कथाएं सुरामृत्ति के लिये चारों श्रोरले इकट्टे होकर उनका श्रादर सत्कार किया, उज्ञातमा श्रवाने भी दोनो हाथ जोड़कर उन मुनियोंको नमस्कार कर उनवे साधा तपकी कुराल वृभी ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह सब तपस्वी अपने दरके श्रासन पर वैठे तब लोमहर्षणके पुत्र पुराणवेत्ता सुत भी तपस्चित्र-गत्र के बताये हुए श्रासन पर विनयके साथ बैठे ॥ ५॥ - दुतकर्मवाहित ^{दि} साथ वैठेहर

 मेर्ते पुण्यं व्यासस्याद्भतकर्मणः ॥ २५ ॥ श्राचल्युः कवयः केचिः तथा महात्मा महाराजार्थ्योके तथा ऋषियोंके इक्षिंहास पत्रा तुम्हें निनाऊँ ? (यह सुवकर शृषि स्नान सन्ध्यासे निवट कर आये शौर स्वजीसे वृभनेलगे) ॥ १६ ॥ ऋषि योले, कि-देवतार्थीने श्रीर ब्रह्म पियोंने जिसको सुनकर अपने २ लोकमें जिनकी प्रशंसा की है ऐसे उत्तम २ श्राख्यानोसे भरी, विचित्र पदरचनावाले पर्वावाली, सुद्म श्रुधाको दिखानेवाली. न्यायसे भरी, चेदके श्रुधासे शोभायमान, प्रत्थ के श्रर्थके श्रतुसार पदादि व्युत्पत्ति चाली, नानाप्रकारके शास्त्रीय विषयोंसे गौरवमयी, राजा जनमेजयके सर्पयहामें घेदव्यासजी की श्रामासे जिसको वैशम्पायन ऋषिने प्रसम्नतापूर्वक विस्तारके साथ कहा पेसी, चारों वेदोंके विषयोंसे भरपूर, श्रद्धतकर्मा परमर्षि श्रीवेद-ब्यासजीकी रचीहुई, पवित्र श्रीर पापके भयकानाश करनेवाली महा-भारत नामक संहिताको सुननेकी हमारी इच्छा है॥१७—२१॥ सृतजी कहनेलगे, कि-ग्रादिपुरुष मदेश्वररूप, वड़े २ होताश्रोंसे पुजित ्रीतामगीन करनेवालोसे स्तुति कियेद्वप, सत्य, ॐकारस्वरूप, ब्रह्ममूर्त्त ियक तथा भ्राग्यक, सनातन, कार्य तथा कारणुरूप, विश्वरूप, सुत्रात्मा था परमात्मासे पर. पर श्रीर श्रपर (भृत श्रीर भविष्य) के स्रष्टा

ীয়াদুর্লি, पर, श्रविनाशी, मङ्गलदायक मङ्गलमूर्त्ति, विष्णु, श्राद्रके

मर्ग नेपाहित, प्रवित्र, इत्दियोंके स्वामी, स्थावर जङ्गम जगत्के।

महाभारत श्रादिपर्व # (8) प्रत्याचत्रते परे । स्राख्यास्यन्ति तथैवान्य इतिहासिममं भुवि ॥२६ इदन्तु त्रिषु लोकेषु महज्जानं प्रतिष्ठितम् । विस्तरैश्च समासैश्च धार्य्यते यद् द्विजातिभिः ॥२०॥ श्रलंकतं श्रभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः । छन्दौ था-वृत्तेश्च विविधेरन्वितं विदुपां प्रियम् ॥ २= ॥ निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोक् सर्वतस्तमसा वृते । वृहद्रगडमभृदेषं प्रजानां वीजमव्ययम् ॥ २६ युगस्यादी निमित्तं तन्महिद्वयं प्रचलते । यस्मिन् संश्र्यते सत्यं ज्यो तिर्वक्ष सनातनम् ॥ ३० ॥ श्रद्भतं चाप्यचिन्त्यञ्च सर्वत्रं समतांगतम्। श्रद्यक्तं कारणं सूदमं यत्तत् सदसदात्मकम् ॥ ३१ ॥ यस्तात् पिता महो जल्ले प्रभुरेकः प्रजापितः । ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मेटुः फः परमे एयथ ॥ ३२ ॥ प्राचेतसस्तथा दचो दचपुत्राध्य सप्त है। ततः प्रजान पतयः प्राभवन्नेकविशतिः ॥ ३३ ॥ पुरुपश्चाप्रमेयात्मा यं सर्वे ऋएये स्वदः । विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽधाश्विनाविष ॥ ३४ ॥ यक्ता ्राः पिशाचाश्च गुज्रकाः पितरस्तथा । ततः प्रसृता विद्वांसः शिष्टा कितने ही कवि पहिले कहचुके हैं, कितने ही इससमय वर्णन करते। हैं और आगैको भी कितने ही विद्वान इस इतिहासका व्याख्यान करके भूतल पर भले प्रकार प्रचार करेंगे॥ २६॥ यह महाज्ञानरूप भारत तीनों लोकमें प्रतिष्ठा पायाहुआ है श्रीर जिसको ब्राह्मणादि द्विज वि-स्तारसे तथा संदोपसे पढ़कर धारण करते हैं, यह परम ज्ञानवाली संहिता सुन्दर शब्दोंसे शोभायमान है, देवता श्रीर मनुष्योंके वर्णनसे गथ श्रलंकत है, अतेको प्रकारके छन्द श्रीर वृत्तींसे युक्त है तथा विद्वानीको रे त्रिय है ॥ २७ ॥ २= ॥ यह जगत् जिस समय तेज श्रीर प्रभासे सर्वथा शन्य था, अर्थात् जव सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था, उस समय युगके ब्रारम्भमें प्रजाब्बीका खविनाशी वीजरूप एक वडाभारी अगडा प्रकट हुआ, जिसको विद्वान चार प्रकारके प्राणियोका सहत श्रीर ्रिविय कारण कहते हैं, उसमें निःसन्देह सत्य, तेजःस्वरूप श्रीर सना तन ब्रह्म सुदमरूपसे वास करता है, ऐसा श्रुतियें भी कहती हैं, यह ब्रह्म श्रद्धत, श्रव्मित्त्य, सर्वत्र सुमानरूपको प्राप्त, श्रव्यक्त, सुदमकारण क्रिप तथा सत् और असत्रूप है ॥ २६-३१ ॥ उस अगडेमेंसे देवगरे पितामह, प्रभु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वह एक ही प्रजापतिथे, इसप्रव ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु, देवता, परमेष्टी, दश प्रचेता, दत्त और दर् सात पुत्र हुए, तदनन्तर इक्कीस प्रजापति हुए॥ ३२.

· जिसको सब ऋषि जानते हैं पेला अप्रमेग<u>त्मा</u>

थोः पृथिवी वायुरन्तरित्तं दिशस्तथा ॥ ३६ ॥ सम्बन्सरर्त्तवो मासाः पनाहोरात्रयः भगात् । यद्यान्यद्पि तत्सर्वं संभृतं लोकसान्निकम् ३७ यदिदं दृश्यते किञ्चिद्धतं स्थायरजङ्गमम् । पुनः संक्षिप्यते सर्वे जग-श्रामे युगच्ये ॥ ३= ॥ यथर्चायुतुलिङ्गानि नानावताणि पर्य्ये । हश्य-न्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादितु ॥ ३६ ॥ एवमेनद्नाधन्तं भूत-संहारकारकम् । श्रनादिनिधनं लोके चक्रं सम्परिवर्त्तते ॥ ४० ॥ श्रय-लेखिशन्सहन्नाणि प्रयस्त्रिंशच्छ्यानि च । प्रयक्षिशच्च देवानां सृष्टिः ।तंबेपलक्षणा ॥ ४१ ॥ दिवः पूर्वो वृहङ्कानुश्वक्ररात्मा विभावसः। स-विता स ऋचीकोऽकों भानुराशायहो रविः ॥ ४२ ॥ पुरा विवस्ततः व्रीतर्वे महास्तेषां तथावरः । देवस्राद् ननयस्तस्य सुम्राडिति ततःस्मृतः ॥ ४३ ॥ सुम्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजायन्तो बहुभूतोः । दशज्योतिः शंस-ज्योतिः सहस्रज्योतिरेव च ॥ ४४ ॥ दश पुत्रसंहस्राणि दशज्योतेर्महा-त्मनः । ततो दश्गुणाध्यान्ये शतज्योनेरिहात्मजाः ॥ ४५ ॥ भूयस्ततो दशगुणाः सहस्रव्योतिषः सुनाः । तेभ्योऽयं ह्यस्वंशस्य यदुनां भरत-होनेके पीछे उत्तम और बिहान यहे २ बहार्षि उत्पन्न हुए॥ ३५॥ इन के श्रविरिक्त सकल श्रेष्ट गुणोंसे प्रसिद्ध धनेकों राजर्षि तथा पृथ्वी, जल, श्राकाश, बायु, श्रम्तरिज्ञ, दिशायें ॥ ३६ ॥ संगत्सर, ऋनु, मास पन्न, दिन, रात्रि तथा श्रीर जो कुछ भी लोकमें प्रसिद्ध है वह सय क्रमसे उत्पन्न हुआ। ३७॥ जैसे नाना प्रकारके फल ऋतुक्रोंमें क्रम से श्राते हैं श्रीर ऋनुके चदलने पर शान्त होजाते हैं तैसे ही स्थावर जहमरूप जो प्राणी इस जगत्में दीन्त्रते हैं वह सब ही प्रसयकाल श्राने पर कारणमें समाजाते हैं तथा दृखरेयुगके द्यारम्भ कालमें फिर मकट होजाते हैं ॥ ३= ॥ ३६ ॥ इसमकार अनादि अनन्त प्राणी-पदार्थमात्र का संहार करनेवाला कालचक इस जगत्में निरन्तर धुमता रहता है ॥ ४० ॥ संत्रेपमें देवतात्रोंकी खुष्टि तैतीस हजार, तैतीस सी, तैतीस है ॥ ४१ ॥ वृहद्भानु, चतुरात्मा, विभावसु, सविता प्राचिक, शर्क,

आता. श्रात्मावद और रिव इतने दिचके पुत्र गुए ॥२२॥ स्पैके सकत पुत्री में मह अष्ट था, उत्तका पुत्र देवश्नाद् श्लीर देवश्नाद्का पुत्र सुभार हुत्रा, पिता शास्त्रों कहा है ॥२३॥ इस सुम्लादके प्रजावाले श्लीरपर मसिख । वहुमार विद्वान दश्रक्योति श्लीर सहस्रके प्रजावाले शिरपरम मसिख पुत्र हुए ॥ १४॥ महास्मा दश्रक्योतिक दश्य हजार इससे दश्शुणे शत- इसीतिक श्लीर इससे दश्शुणे शत- इसीतिक श्लीर इससे इस्त्र सुशुणे पुत्र सहस्रक्योतिक हुए,उनसे कुर, यह, भरत ययाति श्लीर इस्त्र हुस्तु श्लीद श्लीको राजविंगोंके वह विस्तार वाले

श्र भाषानुवाद सहित श्र

ब्रह्मविसत्तमाः ॥ ३५॥ राजर्षयश्च बहुवः सर्वैः समुद्रिता ग्रुणैः। खापो

(4.)

.

श्रन्याय ी

*** महाभारत श्रादिपर्व :** पिहला (8) स्य च ॥ ४६ ॥ ययातीच्वाक्रवंशश्च राजर्पाणाञ्च सर्वशः । संभूता वह वो वंशा भतसर्गाः सविस्तराः ॥ ४७ ॥ भतस्थानोनि सर्वाणि रहस्यं ला विविधन यत । वेदा योगः सविशानो धर्मोऽर्थः काम एव च ॥ ४६॥ धर्मकामार्थयकानि शास्त्राणि विविधानि च । लोकयात्राविधानञ्ज सर्वे 🖔 तदहप्रवानुषिः ॥४८॥ इतिहासाः सर्वेयाख्या विविधाः श्रतयोऽपि च । इह सर्वमनुकान्तमुक्त अन्थस्य लच्चणम् ॥५०॥ विस्तीर्य्येतन्महुज् शानमधिः संविष्य चात्रवीत । इष्टं हि विदर्षां लोके समासन्यासधा रणम् ॥ ५१ ॥ मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे । तथोपरिच-रादन्ये विज्ञाः सम्यगधीयते ॥ ५२ ॥ विविधं संहिताहानं दीपयन्ति मनीषिणः। व्याख्यातं क्रशलाः केचिद्र ग्रन्थान् धारयितं परे ॥ ५३ ॥ तपसा ब्रह्मचर्य्येण व्यस्य वेदं सनातनम् । इतिहासिम् चक्रे पण्यं सत्यवततीस्ततः ॥ ५४ ॥ पराशरात्मजो विद्वान ब्रह्मार्षः संशितव्रतः । वंश हुए तथा अन्य प्राणियोंके विस्तारवाले वंश हुए॥४५-४०॥प्राणिमात्र के रहनेके सकल स्थान जैसे कि किले. परकोटे. नगर, बाग आदि तथा तीर्थंबेन श्रादि पवित्र स्थान, धर्मका तीन प्रकारका रहस्य,बेद श्रर्थात कर्मकाण्ड. उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, स्मार्चधर्म, लोकप्रसिद्ध धर्म ने श्रर्थ श्रीर कामका वर्णन करनेवाले श्रनेको प्रकारके धर्मशास्त्र, श्रर्थ-है शास्त्र, कामशास्त्र श्रादि, जिनसे लोगोंकी श्राजाविका चलती है पेसे आयर्वेद. धत्रवेद. गान्धर्व वेद आदिकी रचना इस सबको योगविद्या 🗐 🗷 के प्रभावको वेदव्यासजी जानते थे ॥ ४८ ॥ ४८ ॥ इतिहास और नाना भ प्रकारकी श्रतियोको उनके न्याख्यान सहित जानतेथे,यह सब विषय इसमें कमसे कहे हैं और यह सब ही इस मन्यका विषय है।।५०।।व्यासने ज्लिपने इस महान ज्ञानको संचेपसे और विस्तारसे कहा है, क्योंकि इस जगतमें विद्वान पुरुष संत्रेष श्रौरविस्तार दोनो प्रकारसे बन्धको न पढ़ते हैं ॥ ५१ ॥ कोई ब्राह्मण इस महाभारतको "नारायणंनमस्क्रत्य" यहांसे आरम्भ करके पढ़ते हैं, कितने ही आस्तीक आदिकी कथासे पढनेका आरम्भ करते हैं, कितने ही उपरिचरकी कथासे पढनेकान श्रारम्भ करते हैं.दूसरे कोई बाह्यण सकल महाभारतको पढ़ते हैं।।पूरान कितने ही विद्वान् पुरुष इस भारतसंहिताके ऊपर नाना प्रकारकी टीकाएं करके संहिताके झानको प्रकट करते हैं, कितने ही विद्वानी व्याख्या करनेमें चतुर होते हैं और कितने ही केवल मुखसे ग्रन्थक पाठमात्र करनेमें ही प्रवीण होते हैं ॥५३॥ सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने तप और प्रहाचर्यके प्रभावसे सनातन एक वेदका विस्तार करके इस महाभारतके पवित्र इतिहासको रचा है॥ ५४ ॥ श्रखरहज्जनध

॥ ५६॥ तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरः स्वयम् । भीस्यर्थं तस्य चैवर्षेलीकानां हितकाम्यया ॥ ५०॥ तं एष्ट्रा विस्मितो भूत्वा प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः । ख्रासनं कर्रवयामास सर्वेमुँनिगर्जेष्ट्रं तः॥ ५=॥ हिरुएवर्गममास्त्रीतं तर्सम्बन्तु परमासने । परिषुर्व्यासनाम्यासे वासन्वयः स्थितोऽभवन् ॥ ५६॥ अनुस्रानोऽश्र रुप्णुस्तु ब्रह्मण् परमेष्टिना विषयत् । स्वान्यत् प्रायमाणः प्रविक्तिमतः॥ ६०॥ उवाच स महान्त्रेत्रा व्यान्यत् स्थान्यत् स्थान्यत् स्थान्यत् स्यान्यत् स्थान्यत् । स्थान्यत् स्थान्यत् स्थान्यत् । स्थान्यत् मास्यान्यत् स्थान्यत् । प्रवान्यत् भविष्यस्य विविष्यं कालसंक्रितम्॥ ६३॥ जरामृन्युगयव्याः स्थान्यत्वाविनिक्ययः। विविष्यस्य च धर्मस्य हाष्ट्रमाण्याञ्चलालावा

॥ ६४ ॥ चातर्वर्ण्यविधानञ्च पुरागानाञ्च कृतस्तराः। तपसो ब्रह्मचर्य्य-

विज्ञान पराशरके पत्र, ब्रह्मपि, भगयान क्षेपायन घेदन्यासजीने जब इस उत्तम इतिहासको परा किया उस समय उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुन्ना, कि—मैं यह ब्रन्ध ब्रापने शिष्योंको किसप्रकार सिलाऊँ? म्मपि हैपायनके इस विचारको जानकर उन देवर्पिके मनको शान्ति देनेकी तथा लोकोंका हित करनेकी इच्छावाले लोकग्रह भगवान ग्राग-जी तहाँ श्रापहुँचे ॥ ५५-५७ ॥ जिनके चारों श्रोर श्रनेकों मुनि चैठे हैं ऐसे व्यासजीने जब ब्रह्माजीको देखा तब उनको श्राश्चर्य हुशा, घह दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करतेहुए खडे होगए श्रीर प्रह्माजीको श्रासन दिया ॥५७॥५=॥ व्यासजीके पद्विणा करलेने पर हिरएयगर्भ ब्रह्माजी श्रेष्ठ श्रासन पर वैठे श्रीर ज्यासजी हाथ जोडेहुए उनके श्रासन के समीप खड़े रहे ॥ ५६ ॥ श्रीर जब परमेग्री ब्रह्माजीने उनको बैठने की श्राका दी तब पवित्र हास्यवाले वेदव्यासजी बड़े प्रसन्न होकर उनके श्रासनके पास ही नीचे श्रासन पर वैठे ॥ ६० ॥ श्रीर महातेजस्वी व्यासजीने तव परमेष्ठी ब्रह्माजींसे कहा, कि—हे भगवन् ! मैंने यह उत्तम काव्य रचा है ॥ ६१ ॥ है ब्रह्मन् ! इस उत्तम काव्यमें वेदोंका रहुइय, ब्रङ्ग, उपनिषद् और वेदींका पूर्ण विस्तार तथा और भी जो हु है उसका विस्तारसे वर्णन किया है ॥ ६२ ॥ इसमें इतिहास और

णांका विस्तार कहा है, भूत भविष्य और घर्तमान इन तीनप्रकार कालकी संज्ञाओंका भी वर्णन है ॥ ६३ ॥ जरा,मृत्यु,भय, व्याधि, भत्तव और विनाशिताका निश्चय भी कियागया है, नाना प्रकार वर्म और आश्रमोंके लच्चण कहे हैं ॥ ६४ ॥ चारों वर्णेको धर्म और

H (CANADAR SARAR

1

नह् । इद्वें पर्कृषि कामानि वेदाश्यातमं तथैव च ॥ ६६ ॥ न्यायशिक्ता व्हिद्धितका च दार्ग पायुपतं तथा । हेतुनव समं जन्म दिव्यमासुपसं-द्वित्रम् ॥ २० ॥ तीर्धानाञ्चैव पुरसानां देशानाञ्चव कीर्सनम् ।नदीनां

पर्यक्षतं प्राप्तानां सागरस्य च ॥ ६=॥ पुराणां चैव दिव्यानां कल्पा-गां तुकुकंशकुन् । साल्यज्ञातिविशोगाश्च लोकयात्राकमुख्य यः ॥ ६६ ॥

इट्डांदि सर्वतं वर्तु तर्वेव प्रतिपादितम् । परं न लेखकः कश्चित्-तरम् भृद्धि विचरे ॥ ७० ॥ ब्रह्मावाच । तपोविशिष्टाद्पि वे विशिष्टात् स्वित्रक्ष्यात् । मन्ये शेष्टतः न्दां वे रहस्यक्षाववेदनाम् ॥ ७१ ॥ जनम्

प्रस्ति स्त्याने देशि गाँ ब्रह्मवादिनीम् । त्वया च काव्यमिग्युक्त हरुति साव्याने प्रशिक्यति॥ ७२॥ श्रद्भ काव्यस्य कवयो न समर्थाः

हिर्हे त्ये : विहोदणे पृष्टस्थस्य ग्रेपाक्षय इवाधमाः ॥ ७३ ॥ काव्यस्य होकन प्राप्त गर्देतः स्मर्जनां सुने । सोतिरुदाच । प्रयमामाप्य तं

पुराजांका सद जार रक्त्वा है, तप, पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, प्रह, नक्त्वा, दारा तथा नारों युनीका प्रमाण कहा है, ऋग, यज्ञु, सामवेद, ग्रन्था-

स्प्रशास, न्याय, चिकित्या, दान, अन्तर्यामीका माहास्म्य तथा देवता और महुन्योंने उत्ता, तीर्थ, पवित्र स्थान, नदियें, पर्वत, वन, समुद्र, दिच्य तगर तथा कोट किलोंकी स्वना और सेनाके व्युहकी स्वना

व्यक्तिशास्त्रांना एसमें वर्षन किया है, तथा इसमें युद्धचातुरी, पृथकर है भाषासों सौट समार्थोकी स्तुनि, निन्दा खादि अनेको विषयोका तथा है

भाषाका कार इकारका स्तुन, तनदा आहर अनका विषयाका तथा म लोक्क्यवदारमें उपयोगी नीतिशालका दिचार तथा अन्य सर्वक्रके हा उपयोगा दिल्लीका दिचार इस प्रन्थमें वर्षन क्षिया है, परन्तु ऐसे ह प्रन्थका तिक्रनेवाला क्षकें भमपुरुख पर कोई नहीं मिलतो ॥ देश ॥ क

॥ ७० ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-तुम्हारे तत्त्वशानके कारणसे में, तपस्याके कारण उत्तर मानेजानेदाले और श्रेष्ठ कुलके गिनेजानेवाले सकल सुनिर्योद्ये समृदके सामने आपको ही परमोत्तम मानता हूँ ॥ ७१ ॥

जन्मले ही तुन्हारी ब्रह्मचादिनी सत्यवाणीको में भन्ने प्रकार जानता हुँ, तुमने शपने इस प्रन्थको साव्य नाम से कहा है तो यह जगत्में काव्य ही सहसावेगा ॥ ७२॥ ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास यह तीन प्राश्रम कैसे एक गृहस्थ श्राश्रमसे नहीं बढ़सकते तैसे ही ऐसा

े होई कवि नहीं है कि जिसका काव्य वर्णन श्रादिमें इस काव्यसे वढ़ जिल्ले प्रधांत् तुम्हारः काव्य सकल काव्योंका श्राश्र्य होगा ॥ ७३ ॥ हे हुने ! श्रम तुम श्रपने इस काव्यको लिखनेके लिये गण्पतिका स्मरण

करो अर्थात् उनल विनय करो सौतिकहते हैं, कि व्यासजीसे पे

याय] 💮 🛊 भाषानुवाद सहित 🕫

(۲

व्रक्षा जगाम स्वं निवेशनम् ॥७४॥ ततः सस्मार देरभ्यं व्यासः सत्य-वर्तासुतः । स्मृतमात्रो गण्शानो भक्तचिन्तिनपूरकः ॥ ७५ ॥ तत्राज-गाम विद्नेशो वेद्व्यासो यतः स्थितः । पूजितश्चोपविष्ठश्च व्यासेनो-क्तस्तदानम् ॥ ७६ ॥ लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गण्नायकः । मयैव प्रोव्यमानस्य मनसा कलिगतस्य च ॥ ७९ ॥ श्रृत्वेतत् प्रातः विष्कोशे । यदि मे लेखनी चण्मे । लिखतो नाविष्ठेत तदा स्वं लेखकोश्वस्य ॥ ७६ ॥ श्र्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्धा मा लिल क्वचित् । स्रोमि-पुष्ठस्या गण्शोऽपि वभूव किल लेवकः ॥ ७६ ॥ प्रस्थप्रस्थि तदा चक्रे वृतिगृद्धं क्षुत्रतात् । विस्तन् प्रतियया प्रातः मुनिर्द्धं प्राप्तस्य वदा चक्रे प्रार्थो क्रोकसहस्त्राणि स्रष्टी ग्रेशकश्चरम्यापि प्रथिन॥ ६६॥ सक्तवा वेत्ति च ॥ म व ॥ = १ ॥ तत् क्रोकस्तरम्यापि प्रथिन॥ ६६॥ सुते । भेत्तुं न श्रयवतऽर्धस्य गृहत्वान् प्रश्रितस्य च ॥ = श्रा सर्वाष्ट्राण्या

कहकर ब्रह्माजी श्रपने लोकको चलेगए ॥ ७४ ॥ तदनन्तर**्स**त्यव स् के पुत्र व्यासजीने, गण्पति का स्मरण किया, स्मरण करते ही भक्तीं का मनोरथ पुरा करनेवाले विद्यनायक गणपति, जहाँ व्यासजी बैठे थि तहाँ श्राकर खड़े होगए, पृजनके श्रनन्तर वैठने पर उनसे व्यास जीने इस प्रकार कहा, कि—हैं पापरहित गणनायक !मैं श्रपने मनसे रचना करके जिस महाभारत काव्यको बोल् उसको श्राप लिस र्लीजिये ॥ ७५---७७ ॥ व्यासजीका यह वचन सुनकर गण्पतिने उत्तर दिया, कि-यदि एक चणको भी मेरी लेखनी चलते में यन्द न हो ती मैं भारतका लेखक वनता हूँ ॥ ७= ॥ व्यासजीने गणेशजीसे कहा, कि-श्राप भी विना समभे कदापि न लिखें, गणपतिने इस वातको खीकार किया श्रीर भारतके लेखक वनगए॥ ७६ ॥ इसके श्रनन्तर व्यासमुनि कुतृहलसे घन्थकी गृढ़ रचना करनेलगे, व्यास-जीने आपही कहा है, कि-॥ =० ॥ इस भारत में आठ हजार आठसी श्होकोंकी रचना ऐसी कठिन है कि-जिनको एक मैं (स्वयं व्यास) श्रीर दूसरे शुक्रदेव जानते हैं श्रीर कदाचित् सञ्जय भी जानता हो तो जानता हो ॥ =१ ॥ श्रीर हे मुने ! उन कूट श्रीकांकी ऐसा कार्टन रहुना करी है, कि-जिनका श्रर्थ होता श्रीर है श्रीर भासता हू हैं श्रीर श्रव भी गृढ़ श्रर्थ होनेके कारण शब्दप्रमाणका श्राक्षय क 🕆 🦡

भी उसका श्रर्थ ठीक २ स्पष्ट नहीं कियाजासकता ॥ ६२ ॥ यद्या पति सर्वक्ष हैं तव भी उनको उन कूट श्लोकोंके विषयमें ज्ञणुअर विचार करना पड़ता था, उतने हो समयमें भगवान् व्यासजी

P

मा व कुतितत् अस्तात् । मा हार्याक्ष्य में साह्याक्ष्य व स्वाद्य स्वाद

समाखा करनेके लिये धर्म, अर्थ, काम और मोज्ञका जिकमें संत्तेप से श्रीर विस्तार वर्षन है ऐसे भारतकर्यी स्त्रीयों के अध्यक्षार का स्थासजीने नाश किया है। = ८॥ ॥ पूर्ण चन्द्रमा, वाँदनीसे व कमलों विलाता है तैसे ही यह भारतपुराणुक्षी पूर्ण चन्द्रमा भी अधिकार के स्त्रीत का स्वाप्त के स्वाप्त के

हमा जो लोग जगत्में भटकते थे उनको बानरूपी श्रंजनकी शलाकासे

तहाभारतमं ऋषि वेद्वयासजीने कुरुवंशका विस्तार,गान्धारीकी धर्म-शीलता,विदुरकी बुद्धिमानी,कुन्तीका थेथे कहा है॥हह॥भगवान कृष्ण कुर्ण पवित्र माहात्म्य, पाएडबीकी सत्यता और धृतराष्ट्रके पुत्रोका शावरण पूर्णरीतिसं वर्णन किया है॥१००॥ पवित्र कर्म करनेवाल जीन पुरुवीके चरित्रोके सहित यह महामारत पकलास है, अनु पहिलेतोक्रयामागको छोड़कर व्यासजीने भारतसहितामान भीस सहस्र न्होंकोंकी रची.थी और उसको विद्वान पुरुप भारत

भाषानुवाद सहित

श्रध्याय]

(१२)

पिहिला उपारूपानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते वधैः ॥ १०१ ॥ ततोऽध्यर्ज्यस्त

भूयः संज्ञेषं कृतवान्यिः । श्रमुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम् ॥१०२॥इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयत् शुक्रम्।ततोऽन्येभ्योऽनुक्रपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रदरी विभः॥१०३॥ पष्टि शतसहस्राणि चकारान्यां स संहि-ताम् । त्रिशच्छतसहसञ्ज देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ १०४ ॥ पित्र्ये पञ्च-

दश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश। एकं शतसहस्रन्तु मानुवेषु प्रतिष्ठितम् ॥ १०५ ॥ नारदोऽश्रावयद्वेवानसितो देवलः पितृन् । गन्धर्वयत्तरत्तांशि श्रावयामास वै शुकः॥ १०६॥ श्राह्मिंस्तु मानुपे लोके वेशम्पायां, उक्तवान् । शिष्यो ब्यासस्य धर्मातमा सर्ववेदविदाम्बरः । एकं शतस् हस्त्रन्तु मयोक्तं वै निवोधत् ॥ १०७ ॥ दुर्व्योधनो मन्युमयो महाद्वर्म

रुक्तन्यः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः । दुःशासनः फलपुष्पे समुखे मृत राजा भृतराष्ट्रोऽमनीपी॥ १०=॥युचिद्विरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धो र्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः । माद्रीसुतौ पुष्पफले समुद्धे मुलं कृष्णे ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ १०६ ॥ पाणड्जित्वा बहुन् देशान् बुद्ध्या विक्रम रोन च। श्रराये मगयाशीलो न्यंवसन्मनिभिः सह ॥ ११० ॥ मगव्य

कहा करते थे ॥१०१॥ फिर वेदब्यासजीने पर्वो सहित ब्रत्तान्तीक श्रवक्रमणिकाका संविष्ठ श्रध्याय डेढसौ श्लोकोंका रचा॥१०२॥श्लौ उन ब्यासजीने पहिले यह महाभारत श्रपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाय किर उनकी समान ही गुणवान दूसरे शिष्योंको भी व्यास मुनि भारत पढ़ाया था, ॥१०३॥ तदनन्तर श्रीर भी साठ लाख ऋोकीव

महाभारत बनाया,उनमेंसे तीस लाख श्लोक देवलोकमें, पन्द्रह लार्ड पितृलोकमें श्रोर चौद्हलाख गन्धर्व लोकमें पहुँचगपहें श्रोर केवलप्व लाख श्लोकहो मज्ञष्यलोकमें रहे हैं॥१०४॥१०५॥वह भारत नारदमनि ने देवलोकको, देवल ऋषिने पितलोकको, ग्रकदेवजीने गन्धर्व, यह श्रीर राज्ञसाको सुनाया ॥१०६॥ श्रीर इस मनुष्यलोकको व्यासमुनिव परमशिष्य धर्मात्मा श्रीर सकल वेदवेत्ताश्रीमें श्रेष्ठ वैशम्पायनजीने

सुनाया है वह एक लाख स्होकोंका महाभारतहै,जो कि मैंने तुमसे कहा है ॥ १०७ ॥ कर्णरूपी स्कंघ शक्तिरूपी शाखा दःशासनरूपी फल पुष्पीकी सम्पदा और अल्पवृद्धि धृतराष्ट्रह्मपी मूल वाला दुर्यो धनरूपी कोधमय एक वड़ाभारी वृत्त है॥ १०=॥ श्रौर श्रर्जनरूपी स्कंब, भीमसेनरूपी शाखा और नकुल सहदेवरूपी फल पुष्पीकी सम्पदावाला तथा श्रीकृष्ण, ब्रह्म श्रीर ब्राह्मण यह जिसकी मूल हैं। पेसा एक युधिष्ठिररूपी धर्ममय वृत्त है ॥ १०८ ॥ बुद्धि और पराक्र-मसे वहुतसे देशों को जीतकर राजा पाएड शिकार खेलनेकी इच्छासे

एक वनमें जाकर मुनियोंके साथ वसे थे ॥ ११० ॥ तहां उन्होंने एक

* भाषानुवाद सहित * वायनिधनात् रूच्छ्रां प्राप स श्रापदम् । जन्मप्रभृति पार्धानां तत्राचार विधिक्रमः ॥ १११ ॥ मात्रोरभगपपत्तिश्च धर्मोपनिपदं प्रति । धर्मस्य वायोः राजस्य देवयोश्य तथारिवनोः ॥ ११२ ॥ तापसैः सह संबुद्धा मातृभ्यां परिरक्तिताः । मेध्यारएयेषु पुएयेषु महतामाश्रमेषु च ॥११३॥ ऋषिभिर्यत्तदा नीता धार्त्तराष्ट्रान् प्रति स्वयम् । शिशवश्चाभिरूपास्य जटिला ब्रह्मचारिणः ॥ ११४ ॥ पुत्राध्य भातराखेमे शिष्याध्य सुद्भवश्य वः । पाण्डवा एत इत्युत्कवा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः ॥ १६५ ॥ तांस्तैर्नि वेदिनान् इष्टा पाएडवान् फीरवास्तदा । शिष्टाश्च वर्णाः पीरा ये ते हर्राञ्क्युर्भृशेम्॥ ११६॥ श्राष्टुः केचित्र तस्यैते तस्यैत इति,चापरे । यदा चिरमुतः पाएडःकथन्तस्येति चापरे ॥ १९७ ॥ स्त्रागतं सर्वथा विष्या पार्वडोः पश्याम सन्ततिम् । उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रृ-मुगरूपधारी ऋषिको, मैथुनके समय मारकर श्रपने शिर पर बड़ी भारी श्रापत्ति लेली थी, जो श्रामेको पाग्डबाँके जीवन पर्यन्त उनके कुलाचारकी रीतिके लिये, एक चेतावनी रूप हुई थी॥ १११॥ तद-नन्तर राजा पाएडुको दोनी ख्रियोंने विचार किया, कि-प्राचीनकाल में राजाश्रोंकी कुलीन ख्रियोंने सन्तान के लिये मदात्मा पुरुपीकी प्रार्थना की है, तैसे ही उन दोनों रानियोंने श्रापत्तिकालमें स्वीधर्मको खीकार करके दुर्वासाके मंत्रका श्रव्रष्टान किया, तय धर्म, वायु,इन्द श्रीरदोनों श्रश्विनीकुमार उन रानियाँकेपास गए तथा उन्होंने रानियाँ में पत्र उत्पन्न किये॥ ११२॥ छोर जब बहु उन पवित्र बनोमें तथा वड़े भारी श्राश्रमोमें श्रवनी दोनों माताश्रीके श्रश्रीन रहकर तपखियों के रहा करने से यडे हुए ॥ ११३ ॥ तय उन जटाधारी शीर योग्य ब्रह्मचारी वालकोंको ऋषि स्वयं ही भ्रतराष्ट्र श्रौर उनके पत्रोंके पास लेखाये ॥ ११४ ॥ धृतराष्ट्रके पास आकर ऋषिमीने कहाँ, कि-यह तुम्हारे पुत्र, शिष्य, भाई तथा संबन्धी हैं, यह पाराडुके पुत्र हैं, ऐसा कहकर ऋषि तहांसे अन्तर्धान होगए ॥ ११५ ॥ ऋषियोंके वहायेहए पाएडवोंको देखकर उस समय कौरव श्रीर नगर के जो प्रतिष्ठित गृहस्थ थे वह हर्पकी गर्जना करने लगे॥ ११६ ॥ उनमेंसे किन्हीने कहा, कि-कदाचित् यह पाएडुराजाके पुत्र न हों ? तो दसरोंनेकहा कि-यह राजा पाएडके ही पुत्र हैं, कितने ही यह भी कहनेलगे,

है कि - राजा पाएडुको तो सर्हुष्य बहुत दिन होगए और यह तो वालक हैं फिर यह उनके पुत्र कैसे होसकते हैं ?॥ ११७॥ ऐसा होने पर भी चारी श्रोरसे नगरनिवासी वोलउठे, कि-इनका श्राना बडा ही श्रच्छा हुश्रा, हमारा वड़ा भाग्य है जो हम श्राज राजा पाएड की

(१३)

अध्याय]

 सहाभारत आदिपर्व * िपहिला (१४) यन्त सर्वशः॥ ११८॥ तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन्। इन्तर्हितानां भूनानां निःस्वनस्तुसुलोऽभवत् ॥ ११६ ॥ पुष्पवृष्टिःशुभा 🚽 गन्धाः प्राप्तवुत्वुभिनिस्वनाः।श्रासन् प्रवेशे पार्थानां तद्ञ्नुतमिवाभवत् ॥ १२० " तस्त्रीत्या चैव सर्वेषां पौराणां हर्षसम्भवः। शब्द श्रासीन्म हांन्त्य दिवन्युक्कीत्तिवर्द्धनः ॥ १२१ ॥ तेऽधीत्य निखिलान्वेदांश्छा-कार्ति विविधानि च । न्यवसन् पाएडवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः॥ ॥ १२२ ॥ युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन् । धृत्या च भीम-सेरस्य विक्रवेलार्जनस्य च ॥ १२३ गुरुशुश्रूपया कुन्त्या यमयोर्विनयेन च । नुदोप होकः सकलस्तेषां शौर्य्यगुरोन च ॥ १२४ ॥ समवाये ततो राहां इत्यां भक्त द्वयस्वराम् ।प्याप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्क रम् ॥ १२५ ॥ नंतःप्रसृति लोकेऽल्मिन् पूज्यः सर्वधनुष्मताम्। आदित्य इव दुष्टेच्यः समरेखिप चाभवत् ॥ १२६ ॥ स सर्वान् पार्थिवान् जि-त्दा सबोद्ध महतो गलाद् । आजहारार्जुनोहराको राजसूर्य महाकतुम् लन्तानको हेकरहे हैं. यह सुनकर पाएडव भी कहनेलगे, कि-कापके एक इनस्य, यह अच्छा हुआ, इस बातको भी सवने सुना ११= यह वातें हो चुक्ते पर न दीखनेवाले प्राणियोंका सव दिशाओंको गंजा-नेवाला बड़ायारी शब्द हुन्ना ॥ ११६ ॥ पाएडदें।ने नगरमें प्रवेश करा उस समय प्राकाशमें से सुन्दर गन्धवाले उत्तम पुण्योंकी वर्षा हुई श्रीर होता तथा बुद्धिये वजनेलगी यह देखकर सर्वीने बड्डा आश्चर्य नाना॥१२०॥ उस समय पाएडबोंके अपर प्रेम होनेकेकारण सकल पुर दासियोक्षी सन्तोपस्चक बड़ी हर्षध्वनि हुई जिससे स्वर्गपर्यन्त उन पार्डदें।की कीर्क्ति जागई॥ १२१॥ तदनन्तर पार्डव संपूर्णवेद तथ। और अनेकी जास्त्रीको पदकर सर्वथा निर्भय हो, सर्वसे आदर पातेहुए हस्तिनापुरमें रहनेत्रमे ॥ १२२ ॥ सज्जन मनुष्य-युधि-फिरके गौचले शीमसेनके धैर्यसे अर्जुनके पराक्रमसे, कुन्ती की गुरुसेवासे तथा नकुल और सहदेवके विनयसे परम आनन्द को गांस हुए, इतनाही नहीं, किन्तु सव लोग उनके गुण और श्रुताले वड़े प्रलब हुए ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ तदनन्तर स्वयंवरको मण्डय में इकट्टे हुए राजाओंके समुहमें महाकटिन (मत्स्यको वेधने-का) पार्श करके अर्जुनने द्र पदकी कन्या द्रौपदीको जो खयं ही वर-को ब्लोकोर करनेको तत्पर हुई थी, उसको वरा ॥ १२५ ॥ उस समय से झर्डुन इस लोकमें सकल धनुषधारियों में श्रेष्ठ और सूर्यकी समान संत्राममे भी अस्य होगया॥ १२६॥ तदनन्तर अर्जुनने आस पासके खब राजाओं को तथा दसरी कितनी ही प्रजाओंको जीता और वासु देरको न्यायको तथा भीमसोन श्रीर श्रर्जुनको वलसे, घमएडमें भरेहुए

 भापानुवाद सहित # ध्राध्याय ी . (१५. ॥ १२७ ॥ श्रन्नवान् दक्तिणावांश्यसर्वेः समुदितो गुर्णेः ॥ युधिष्टिरेण संप्राप्तो राजसूयो महाऋतुः ॥ १२= ॥ सुनयाद्वासुदेवस्य भीमाज्ञनव-लेन च । घातयित्वा जरासन्धं चैद्यञ्च वलगर्वितम् ॥ १२६ ॥ दुर्ग्यो-धनं समागच्छत्रईणानि,ततस्ततः।मिणकाञ्चनरत्नानि गोहस्त्यश्वधनाः नि च ॥ १३० ॥ विचित्राणि च वासांसि प्रावारावरणानि च । कम्ब-लाजिनरत्नानि राङ्गवास्तरगानि च ॥ १३१ ॥ समृद्धान्तां तथा रष्ट्रा पारडवानां तदा श्रियम् । ईर्प्यासमुत्थः सुमहांस्तर्य मन्युरजायत्॥ ॥ १३२ ॥ विमानव्रतिमान्तत्र मयेन सुरुत्ती सभाम् । पाराडवानासुप-हतो स हप्ना पर्व्यतप्यत ॥ १३३ ॥ तत्रायहसितश्चासात् प्रस्कन्द्रश्चिय सम्भ्रमात् । प्रत्यज्ञं वास्युदेवस्य भीमेनानभिजातवत्॥१३४॥ स भोगान् विविधान् भुञ्जन् रत्नानि विविधानि च। कथितो धृतराष्टस्य विवर्णो हरिएः रुशः ॥१३५ ॥ श्रन्वज्ञानात्ततो यृतं धृतराष्ट्रः सृतप्रियः।तच्छु-जरासन्ध श्रीर चेदिराज शिशुपालको मारकर, यहके योग्य श्रन्त, दक्षिणा श्रादि जो जो वस्तुएं श्रावश्यक थीं उन सबको इकट्टा कर राजस्य नामक महायद्मके करनेका उद्योग किया श्रर्थात् राजा युधि-ष्टिरने राजसूय महायद्य किया ॥ १२७—१२६ ॥ यद्यमें नानाप्रकारकी भेंट लेनेके लिये दुर्योधनको नियत किया था, यहके समय अनेको राजाश्रोंके यहाँसे मिए, सुवर्ण, रत, गी, हाथी, घोड़े श्रीर शनेकी प्रकारके धन ॥ १३० ॥ विचित्रप्रकारके वस्त्र, पहरनेकी साड़ियें छोड-नेके वस्त्र, उत्तम शालके जोड़े, वहुमृत्य मृगचर्म, रंकु नामक मृगके रुएंके वने गलीचे छादि भेटें दुर्योधनके पास छाई॥ १३१॥ इसबैकार पार्डवॉकी लक्ष्मीको बढ़तीहुई देखकर डाहके कारण दुर्योनको बड़ा-ही क्रोध श्राया ॥ १३२ ॥ तथा सहसा जलके स्थानपर धलका श्रीर थलमें जलका तथा द्वार न हो तहाँ द्वारका भ्रम डालनेवाली, विमान की समान श्रद्धत, मय दानवने वनाकर पाएडवाँको भेट की हुई पारडवों कीं सभाको देखकर दर्योधनको वड़ाही टःख हुन्ना ॥६३३॥ दर्योधनको फ्रोधजनित ज्ञोमके कारण सभामें, विदा होते समय जल

म थल श्रीर थलमें जलका भ्रम होनेलगा उस समय भीमसेनने श्रीकृष्णके सामने उसकी एक ग्रामीण पुरुषकी समान हँसी करी ॥१३था इसकारण नाना प्रकारके भोगोंको भोगता श्रीर नाना प्रकार के रजादि श्राभूपणों को धारण करताहुश्रा भी द्योघन प्रतिहिन पीले रंगका होता हुश्रा सुखनेलगा ॥१३५ ॥ यह वात जब धुतराष्ट्रके जान नेमें श्रार्ट्र तच उन्होंने पुत्रके ऊपर चड़ाभारी प्रेम होनेके कारण श्रुधि-ग्रिएके साथ जुश्रा खेलनेके लिये श्रपनी संगति दी, यह वात श्रीकृत्ल

पिहला (१६) # महाभारत श्रादिपर्व # त्वा वास्देवस्य कोपः समभवन्महान् ॥ १३६ ॥ नातिप्रीतमनाश्चासी-हिवादांश्चान्वमोदत। यतादीननयान् घोरान् विविधांशाप्युपैत्तत १३० निरस्य विदुरं भीषां द्रोणं शारद्वतं रूपम् । वित्रदे तुमुले तस्मिन् दह त् ज्ञञं परस्परम् ॥ १३= ॥ जयत्सुपाग्डपुत्रेषु श्रुत्या सुमहद्शियम् । द्धर्य्योधनमतं द्यात्वा कर्णस्य शक्तुनेस्तथा ॥१३६॥ घृतराष्ट्रक्षिरं ध्यात्वा सञ्जयं वायवमञ्ज्ञीत् । शुणु सञ्जय सर्वं मे न चास्वितुमहीस १४० श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्राप्तसम्मतः। न विश्रहे मम मनिर्न च प्रीये कुलक्तये ॥ १४१ ॥ न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पागदुसुनेषु वा । वृद्धं सामस्यस्यन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः ॥ १४२ ॥ श्रष्टं त्यचन्तः कार्पण्यात् पुत्रप्रीत्या सहामि तत् । मुखन्तं चानुमुखामि दुर्ग्याधनमचतनम् १४३ राजसूचे श्रियं रुप्ता पाएडवस्य महीजसः। तथावहसनं प्राप्य सभारो-हरादर्शने ॥ १४४ ॥ श्रमर्पणः स्वयं जेतुमशक्तः पार्डवान् रसे । निरु-के कानमें पड़ते ही उनको वड़ा कोध स्त्राया ॥ १३६ ॥ और वह मनमें श्रधिक प्रसन्त नहीं रहे तथा उन्होंने विवाद श्रीर जब श्रादि श्रनेकों भयानक श्रन्याय होने दिये ॥ १३० ॥ तथा तुमुल युद्धमें विदुर, भीष्म, झोए श्रीर शरहतके पुत्र रुपाचार्य का तिरस्कार करके दुर्योधन, चत्रियोका परस्पर संहार करनेलगा ॥ १२= ॥ विजय करनेको जातेहुए पाण्डुपुत्रोके, मन दुखानेवाले महा-विजयको लुनकर तथा चाहे प्राण चलेजायँ परन्तु श्राधा राज्य नहीं दंगे. ऐसी दुर्योधन कर्ण श्रीर शकुनिकी हठको जानकर ॥ १३८॥ वहत देर विचार करके राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे कहा, कि-हे संजय ! में जो कुछ कहताहूँ, उस सबको तू सुन, इस विपयम मुक्ते ब्राई नहीं देना चाहिये॥ १४०॥ वर्षीक-त् शास्त्रक्ष, बुद्धिमान्,

घारणाश्वकियाला श्रीर विद्वानोमें मतिष्ठित है, मेरी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी और कुलका नाश हो इसमें भी में कुछ प्रसन्न नहीं था ॥ १४१ ॥ भुमें अपने पृत्वोंमें और पाएडके पृत्वोंमें कुछ भेदमाव नहीं था ॥ १४१ ॥ भुमें अपने पृत्वोंमें और पाएडके पृत्वोंने के सम्भव नहीं था , तथापि मेरे पृत्र कोधमें होकर मुम्न पृत्वे की निन्दा करते हैं १४३ हे संजय ! में अन्या होनेसे लाचार हैं इसीसे पुत्रोंके प्रमक्ते कारण में यह सब सहरहा हैं, श्रीर श्रव्यवृद्धि दुर्योधन जैसे मोहबश मूर्णता करती पत्रती है १४३ राजस्य यह से से उसके साथ मुमें भी मूर्णता करती पत्रती है १४३ राजस्य यह से समय महावीर पाएडवांकी लक्ष्मीको देखकर तथासमा भवनामें चढ़ते समय और उसको देखते समय अपनी हँसीहर्र थी, इसकारण ॥ १४४ ॥ मेरे पुत्र दुर्योधनको बड़ा कोध श्राव, दह राज्वें पारवांकी जीत भी नहीं सकता है और सुन्त्र वित्र होने स्वा तर भी क्षार्य

अभाषानुवाद सहित श (१७) रसाद्य सम्प्राप्तुं सुश्रियं चित्रयोऽपि सन् ॥ १४५ ॥ नान्धारराजस-हितः छुन्नचृतममन्त्रयत्। तत्र यद्यद्यथा ज्ञातं मया संजय सच्छण् ॥ १४६ ॥ श्रुत्वा तु मम वापवानि वुद्धियुक्तानि तत्वतः । ततो प्रास्यसि मां सीते प्रजाचन्पमित्युत ॥ १४७ ॥ यदाश्रीपं धनुरायस्य चित्रं विद्धं लच्यं पातितं वै प्रथिवशाम् । कृष्णां हतां प्रेचतां सर्वरायाम तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४=॥ यदाश्रीपं द्वारकायां समद्रां प्रस-छोडां माध्यीमर्जनेन इन्द्रप्रस्थं वृष्णियीरी च याती तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४६ ॥ यदाश्रीपं देवराजं प्रविष्टं शरेदिंग्यैवंरितं चार्जनेन । अग्नि नदा तर्पितं खांडचे च तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५०॥ यदाश्रीपं जानुपाहरमनस्तान्मुकान् पार्थान् पंच फत्या समेतान् । युक्तं चैषां विदुरं स्वार्थसिद्धौ तदा नाग्रंसे विजयाय संजय ॥ १५१ ॥ यदाश्रीपं द्रीपदी रंगमध्ये लच्यं भित्वा निर्जितामर्ज्नेन । शरान्पाञ्चालान्पाएडवेयांख युक्तान् तदा नाशंसे धिजयाय संजय १५२ सामर्थ्यसे सम्पत्ति प्राप्त करनेमें उत्साह होन है॥ १४५ ॥ घतः उसने एकान्तमें गान्धारराजशकुनिसे कपटसे जुझा खेलनेका विचार किया. परन्त हे सब्जय उस विचारके पहिले और पीछे पाग्डबोंकोजीतनेकी श्राशा भंग करनेवाले जो २ यानक यने हैं, मैंने उनको जिस प्रकार जाना है सो तुमासे कहताहुं सुन ॥ १४६ ॥ हे सब्जय त् मेरे बुद्धियुक्त वाय्योको अञ्छीपकार सुनकर मुभको प्रशाचन जानेगा ॥१८०॥ जय घर्जुनने हाथमें धनुष लेकर खद्धन लच्यको वेध प्रधीमें गिरादिया और लंब राजाश्रोंके देखतेही राजा द्रपदकी कन्या द्रौपदीको हरितया, ऐसा मैंने सुना तबसे मुभी विजयकी प्राशा नहीं रही ॥१४=॥ मधुवंशमें उत्पन्न हुई सुभद्राको यलात्कारसे हरकर श्रज्ञ उसके साथ द्वारिकामें विवाहा गया तो भी वृष्णिवंत्रके दो शर्बीर हेपको त्याग मित्रभावसे इन्द्रप्रस्थमें आये जब मैंने ऐसा सना तबसे हे सञ्जय में विजयकी आशा नहीं रखता जॅब मैंने सनाकि-श्रर्जुनने वृष्टि करतेहुए देवराज इन्द्रको दिब्य वाणींसे रोकॅदिया और खाएडव वनकी विल देकर अग्निको तप्तकरा तबसे हे सब्जय में विजयकी आशा नहीं करता ॥ १५० " व मैने सुनाकि-लाखके घरमें छुन्तीके साथ पाँची पागडर आशा नहीं रही विदूर पाएडवीके हितकारीकार्यमें ही लगे हुए हैं तसे घोपयावामें जाते मर्के विजयकी आशा नहीं है॥१५१॥रंगभूमिमें स्नको अर्ज नने छुडाया पदीको चिनाहा होर पाञ्चालदेशुक्त पर गरी ॥१६५ ॥ हे सत जब ्रिक्या तबस क्ष्येष्ट्रप धारणकर गुजिष्करके समीप ्त्रगये हैं युधिष्ठिरते उनका प्रत्युत्तर दिया हे तुमको विजयकी श्राशा नहीं रही॥१६६॥ हे संजय जब

ः महाभारत श्रादिपर्घ # पहिल ववाधीपं मागधानास्वरिष्ठं स्रमध्ये जरासम्धं उच*संतं* वोभ्या व्रतं भीमसेनेन गत्वा तका माशंसे विजयाय संजय ॥ १५३ ॥ यदाश्रीपं दिग्जये पाएडपशैर्वशीकृतान् भूमिपालान् प्रसद्य । महामातुं राजमयं कतं च तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५४ ॥ यदाशीप वौपदीस्थकार्या सभा नीतां वःखिनामेकवद्यां । रजस्वली माथप-तीमनाथवत्तवा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५५ ॥ यदाश्रीपं पाससी-तत्र राशि समाज्ञिपत फितवो मन्दयुद्धः । द्वःशासनो गतवान्नैव चान्तं तदा नाशंसे विजयाय० ॥ १५६ ॥ यदाश्रीपं हतराज्यं युधिष्ठरं पराजितं सीवलेनात्तवत्यां । अन्वागतं भातमिरप्रमेयैशतवा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५७ ॥ यदाश्रीपं विविधास्तव चेष्टा धर्मात्मनां प्रस्थितानां चनाय ॥ ज्येप्रप्रीत्या विलग्यतां पागञ्जवामां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५६ - यदाश्रौषं स्नातकानां सहस्रौ रन्वागतं भर्मराजं वनस्थं। भिज्ञाभजां ब्राह्मस्योनां महात्मनां तदा ज्ञत्रियोंमें श्रेष्ट मगधदेश के महाराज जरासंधको भीमलेनमे केवल दो भुजाओंसेही मारडाला जवमेने ऐसा सना तनसे हे सञ्जय मुसै विजयकी श्राशा नहींरही१५३पांडदोंने दिग्विषयमें प्रथ्वी के राजाश्रीको वलात्कारसे जीतकर राजस्य नामवाला महाचन करा। ऐसा मैने स ना तयसे हे संजय मभी विजयकी आशा नहीं रही १५४ हे सब्जय जो एकही बख्र पहिरे रजस्वला श्रर्थात ऋत्मती और श्रश-प्रवाहसे गद्भव कण्ठवाली तथा दुःखसे जिसका हृदय सन्तम होरहा था पेसी प्रतिमति दौपदीको अनाथ खीकी समान सभामें खेंचा और दःख दिया जब मैंने ऐसा सना तबसे सभी विजयकी आशा नहीं रही १५५ मन्यवृद्धि दुष्ट दुःशासनने एकवस्त्रधारिणी दौपदीका वस्त्र खेँचना प्रारम्भ किया परन्तु उसका श्रंत नहीं पाया श्रीरवर्लोंका देर लगगया. हे सम्बद्ध जब मैंने ऐसा सना तबसे मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १५६ ॥ शक्तिसे जपमें हारे हप तथा राज्यसे मुद्ध हप राजा यधि-क्रिरके पीछे श्रपार बलवाले उनके भाई जाते हैं हे सब्जय ! जब मैने पेसा खना तबसेही मुझै विजयकी आशा नहीं रही १५७ धर्मनिष्ठ पांदर वनको जाते समय अपने वडे भाईके दुःखको देखकर उनसे अधिक प्रीति होनेके कारण बहुतही खिन्न हुए और उन्होंने बाद आदि से बहुत ्रेड्युके श्रपना पराक्रम सुचित किया हे संजय। जब मैने ऐसा करता है तैसे ही उस-विजयकी श्राशा गहीं रही॥१५=॥ जब मैंने सुना कि-राजसूय यक्षके समय महे छ ब्रह्मचर्यावस्थामें विद्या पढ़कर उस विद्यावत भवनमें चढ़ते समय श्रीर स्नाप्तः श्रीर भिद्यासे श्राजीविका चलानेवाले इसकारण ॥ १४४ ॥ मेरे पुत्र दुर्योधन् 🚝 हेसंजय! 🛱 उसीसमयसे विजयकी पागडवोंको जीत भी नहीं सकता है श्रारकात्रय है ज्यान कर

 भाषानुवाद सहित (38) श्रध्याय ी नाणुंसे विजयाय संजय ॥ १५८ ॥ यदाश्रीपसर्ज्नं देवदेवं किरातरुएं इयम्बद्धं तोष्य युद्धे । अवासयन्तं पागुपतं महास्रां तदा मारांखे विजयाय ० ॥१६०॥ गदाश्रीपं जिहिबस्थं धनंत्रयं शुकारलाकायु विदय-मस्यं यथावत । छाषीयानं शंसितं स्तरमसंघं तदा नाशंसे विजयाय० ॥ १६१ ॥ यदाश्रीपं कालकेयास्ततस्ते पीलोशानो वरदानाद्य हताः देवैरजेया गिर्जिताञ्चार्जुनेन तदा नाम्संखे विजयाय संजय ॥ १६२ ॥ यदाश्रीपमसुराणां घघार्थं किरोटिन यातमभित्रपर्यगुर । इतार्थं चाऱ्यागतं शक्ततोकालदा गाशंसे विजयाय संजय ॥ १६३॥ यदा श्रीपं पैश्रवण् न सार्वं समागतं भीममन्यांक्ष पार्थान् । तस्मिन्देशे मानवाणामगम्पे तदा नाशंसे विजयाय जंजय ॥ १६४ ॥ यहाश्रीयं घोष-यात्रागतानां षंधं गन्धवैमीज्ञणं चार्जनेन । स्वेषां खुतानां कर्ण-बुद्धौ एताना तदा नाशंसे चिजयाय० ॥ १६५ ॥ यदाश्रीपं यत्तरूपेण धर्मं समागतेन धर्मराजेन स्त । प्रशान् फांश्वित् विव्वाण्ञ सम्यक् तदा नागले विजयाय संजय ॥ १६६ ॥ यदाधीपं न विदुर्मामकास्तानम-श्रामा नहीं रखता हूँ ॥ १५८ ॥ जब मैंने सना कि-श्रर्जनने किरात के पेपमें धायेष्ट्रप देवींके देव भगवान् शंकरको युद्धमें धतिप्रसन्त करके उनसे पाश्रपत नामवाला महास्त्र प्राप्तकर लिया, हे संजय! तह से मुभी धिजयकी आशा नहीं रही॥ १६०॥ मैने जिससमय सुना कि सत्यबादी फीलिमान धनव्ययने देवलोकमें जाकर लाहात इन्ट से दिन्य श्रस्त्रविद्याकाष्ट्रध्ययन करा है, हे संजय तवसे मुक्त दिजय की बाग्रानहीं रहीं १६१हें संजय जिस समय मैंने सुना कि-श्रज नने देवलोफर्म जानेके पथात वरदानके प्रभावसे देवताश्रीसेभी श्रातेय मदोन्सत फालकेय और पीलोम नामके राज्यसीको जीता है तपसे मुर्भे विजयकी श्राशा नहीं रही॥ १६२॥ जब मैंनेसुना कि शत्रश्रों के प्राणनाशक अर्जुन असरीका वध करनेके लिये रहलोकमें गये तदनंतरश्रनेको श्रसुरी को हराकर स्वर्गलोक से लौट श्राये हैं तबसे हे संजयसुभौ विजयकी घाशा नहीं रही॥१६३॥ जिस समय मैंने छुनाकि भीमसेन तथा परबुराजके दूसरे पुत्र, जहां मनुष्य नहीं जासके ऐसे देशमें फुवेरके साथ गये हैं, तबसे सुक्तको विजयकी श्राशा नहीं रही १६४ जिससमय मैंने सुना कि-कर्णकी सम्मतिसे घोषयात्रामें जाते हुए मेरे पुत्रोंका राधवीने बन्दी करितया श्रीर उनकी श्रर्ज नने छुडाया तवसे हे संजय मुर्फ विजयकी बाशा नहीं रही ॥१६५ ॥ हे सूर्त जव मैंने सुना कि-धर्मराजने यक्तका रूप धारणकर गुधिष्ठिरके समीप श्रा बहुतसे प्रश्न किये श्रीक युधिष्ठिरने उनका प्रत्युत्तर दिया हे संजय तवसे मुमको विजयकी श्राशा नहीं रही॥१६६॥ हे संजय जव

पिहिला ः महाभारत छादिपर्व 🕫 व्ह्वत्रस्पाद् इन्ततः पाएडवेयान् । विरादराष्ट्रे सह फ्रप्णया

033

(5.5)

धनंजयेर्देकरधेर रामण गन्दरिक्षान भग्नान इल्हा नहात्मना तदा नाशंसी विजयाय संजय ॥ १६⊏ यराञ्चरं करकृतः सन्स्यराजा सुनां दत्तामुत्तरामजुनाय । ताञ्चाजुनः प्रन्यपुर हि. सुनार्थे तदा नारांसे विजयाय सम्जय ॥ १६८ ॥ यटाशीपं हिर्ज्ञिनस्य धनस्य प्रज्ञाजितस्य स्वजनात्प्रच्युतस्य । श्रक्तीहिरायः सप्त-ं रुधिहिरस्य तहा नाशंके विजयाय संजय ॥ १७०॥ यदाश्रीपं माधवं बाल्दंदं सर्दात्नका पाएडवार्थं निविष्टम्।यस्ये**मां गां विक्रमसेकमाहुस्तदा** नातंत्रे विजयाय० ॥ १७१ ॥ यदाश्रीपं नरनारायणी तौ सुप्लार्जनी 🎖 ब्दनो तत्त्वस्य । आतं द्रष्टा ब्रह्मलोके च सम्यक्तदा नाणंक्षे विज-दाद 🔈 🖰 ३३२ ॥ यहाश्रीपं लोकहिताय कृष्णं शमार्थिनमुपयात क्रवरणन् । यसं कुर्वाणयक्तार्थञ्च यातन्तदा नागंसे विजयाय संजय ॥ १७२॥ पदार्श्वारं कर्णहुर्योधनाभ्यां दुर्द्धि छतां निब्रहे केशबस्य। तं र्मने लुकाकि—हीरकीके साथ राजा दिराटके नगरमें हुपकर रहते हुए पारुडवेंदों इंडदेने मेरे पुत्र सफल नहीं हुए तबसे मुसको विजयकी दान्ना नहीं रही ॥ १६७ ॥ जय मैंने चुनाकि—विराट नगर में रहते हुए लहेके नहारमा सर्जुनने ही घेनुओं के हरसके समय रथमें दैठ नेरी छोरके लरेको पोद्धार्थीको हरा दियाहे सञ्जय तबसे सुभी विकरकी प्राप्ता नहीं रही ॥ १६= ॥ जब मैंने सुनाकि-मत्स्यदेशके रोजाने धायनी लर्बग्रुखालंकत उत्तरा नामकी कन्या अर्जुनको े सत्कारके काथ देनेकी विनती करी और अर्जुनने वह कन्या अपने पुनके लिये हे ली तपसे हे सब्जय सुसी विजयकी आशा नहीं रही ॥ १६८ ॥ सैंने जय खुना कि—जुन्ना विलाकर जीते हुए धनहीन वन-को निकाले हुए छोर स्वजनोंसे घलग हुए राजा युधिष्ठिरने सात धजीहिणी जेना इकट्टी करली है, तबसे में विजयकी आशानहीं रखता १७०जर मेरे जुनाकि मधुवंशमें उत्पन्न हुए और जिनकेएकचरणमें सकल एक्टी समागई थी यह शास्त्र कहते हैं ऐसे श्रीकृष्ण चित्तसे पागडवी की भहाई चाहते हैं, तपसे सुमे विजयकी श्राशा नहीं रही॥१७१॥जव हैंने दुनाकि-नारदसुनि कहते थे कि श्रीकृष्ण श्रौर श्रर्जुन नरनारायगु हैं. जीर मैंने उनको ब्रह्मलोकमें भलेयकार देखा है तबसे हे सब्जय नुभौ दिजयका जाशा नहीं रही ॥ १७२ ॥ जब मैंने स्ना कि श्रीकृष्ण भगवाद लोकांके हितके लिये कौरवोंको समकाने आये थे परन्त रीरदोने छल नहीं माना श्रीर वह उनसे निराश होकर लौटगये

हे जब्बर तक्ते मुक्ते विजयकी आशा नहीं

विजयाय संजय

शस्त्राचार्याद सहित * ध्याय ी (२१) चातमानं यहचा दर्शयानं तदा नाशंसे विजयाय ।। श्रीपं वासदेवे प्रयाते रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठामानाम् । श्रासी प्रथां सा-हिन्त्यतां केशवेन तदा नाशंसे विजयाय ०॥ १७५ ॥ यदाशीपं मन्त्रिणं वासदेवं तथा भीष्मं शान्तनवञ्च तेपाम। भारहाजञ्चाशिपोऽनव्रवाणं तदा नाशंक्षे विजयाय सञ्जय ॥ १७६ ॥यदा फर्णो भीष्मम्याचवाष्यं नाहं योत्स्ये यद्भधमाने त्वयीति । हित्या सेनामपचन्नाम चापि तदा नार्शंसे विजयाय संजय ॥ १७७ ॥ यदाश्रीपं वासुदेवार्ज् नी ती तथा धतर्गावडीवम्बमयम् । जीवयम्बीर्याणि समागतानि तदा नारांसे वि-जयाय संजय ॥ १७= ॥ यदाश्रीयं कश्मलेनाभिपन्ने रथोपस्थे सीदमा-नेऽर्ज ने वै । कृष्णं लोकान्दर्शयानं शरीरे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०६ ॥ यदाशीयं भीष्मममित्रकर्पणं निघन्तमाजावयतं रधीनाम । नैयां कश्चिद्वध्यते ख्यातरूपस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १=०॥ दर्योधनने श्रीकृष्णको चंद्री करनेका विचार किया श्रीर श्रीकृष्णने उनको विश्वकृप दिखाया. हे सञ्जय जब मैंने ऐसा स ना तबसे मक्षे विजयकी शाशा नहीं रही।१७४॥जब श्रीक्रण्णजी जानेलगे तबदःखित हुई श्रकेली कन्ती उनके रथके सामने श्राकर खड़ी होगई श्रीर श्रीक-णाजीने उसको ढाढस दिया है सब्जय जब मैंने ऐसा सना तबसे मैं विजयकी श्राशा नहीं रखता ॥ १७५॥ श्रीकृष्णजी तथा शन्तसुके पत्र भाष्मिवितामहजी पागडवाँके मन्त्री हुए श्रीर भरहाजके पुत्र होणाचार्यने पागडवाँको श्राशीर्वाद दिया जब मैंने ऐसा सना तबसे मैं विजयकी श्राशा नहीं रखता ॥ १७६ ॥ जब कर्णने भीष्मपितामहस्रे फहा कि तम लड़ोगे तबतक में नहीं लड़ेगा श्रीरयह कहकर वह खेनाकी छोडकर चलागया है सञ्जय ऐसा सना हैतवसे मसे विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ १७७ ॥ श्रीकृष्ण श्राजन श्रीर महापराक्रमवाला गाएडीच धनुष यह तीनों परमपराक्रमी एकही स्थानमें इकट्टे हुए हैं हे सब्जय जबसे मैंने ऐसा सुना है तबसे मुक्ते, विजयकी आशा नहीं रहीं ॥ १०८ ॥ मोहको पाकर खिन्न होताहुन्रा श्रर्जुन रथके समीप खडा होगया और युद्ध न करनेका विचार करनेलगा तव भग-वान् आहुः एने उसको अपने शरीरमें चौदह लोक दिखलाए जब मैंने पेसा सना तबसे हे सब्जय मभी विजयकी श्राशा नहीं रही ॥१७८॥ जब

मैंने सुनाकि शत्रुमर्देन भीष्मिपितामह प्रतिदिन दशसहस्रा रिथयोंको बाणोंस मारडालतेथे तथभी पाएडयोंका एक भी मुख्य सुभट योद्धा नहीं मारागया तयसे हे सब्जयमें विजयकी श्राह्मानहीं रखताहूँ॥१=०॥

पहिला (२२) # महाभारत छादिपर्व # यदाश्रीपं चापगेयेन संख्ये स्वयं मत्यं विहितं धार्मिकेश । तधाकर्षः पाएडवेगाः प्रहरास्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १=१ ॥ यदाशौषं भीष्ममत्यन्तग्रं हतं पोर्थेनाहवेष्वप्रघृष्यम् । शिखरिडनं पुरतः स्थापियत्वा तदो नाग्नंसे विजयाय ० ॥ १=२॥ यदाश्रीपं गरतस्पे श्यानं पृद्धं वीरं सादितं चित्रपंखैः । भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेपां-स्तदा नागंखे विजयाय ०॥१=३॥यदाशौषं शान्तनवे शयाने पानीया**र्थे** चोदितेगार्ज नेन।अमि शित्वा तर्थित तत्र भीष्मं तदा नाशंसे विजयाय • १। १८४ ॥ यदा वायुः शकसूर्यो च युक्ती कीन्तेयानामदलोमा जयाय । निस्यं चोरुमान श्वापदा भीषयन्ति तदा नाग्रंखे विजयाय संजय १=५ पदा द्वोणो विविधानिस्त्रमार्गान् निदर्शयन् समरे चित्रयोधी।नपाएड-यान् श्रेष्ठतराखिहन्ति तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १=६ ॥ यदा-श्रीपं चार्मदीयान्तहारथान्वयवस्थितानर्ज् नस्यान्तकाय।संसप्तफान्नि-हितानर्जु नेन तदा गाशंसे विजयाय सम्जय ॥ १८७॥ यदाश्रीपं व्युहा मभेद्यमन्यैर्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम् । भित्वा सौभद्वं वीरमेकं प्रविष्टं धर्मातमा गङ्गापुत्र भीष्मने रणमें श्रपने सरणुका हार पाएडवींको दिखादिया और पाएडवींने उनको श्रानन्दले मारदिया ऐसा स्नाहि तवस्ोमुभौ हे सं जय विजयका श्रामा नहींरही ॥ १=१ ॥ शिखएडी को छानै करके अत्यन्त शुर बीर अजेय भाष्मिपतामहको अर्जुनने मार, विया जबसे ऐसा सुना है तवसे हे संजय में भी विजयकी छात्रा नहीं रही ॥ १८२ ॥ मैंने जवसे सुना है कि वृद्ध गुरवीर भीष्मिपता-मह वहतले सोमकवंशियोंको नए करके अनेको वाणीले विधकर शरश्य्यापर सोरहेहें तवसे है संजय सभी विजयकी शाशा नहीं रही ॥ १=३ शरश्च्यापर सोतेहुए शन्तनु के पुत्र भीष्मने पानी पीनेकी इच्छाका तब अर्जुनने वालसे पृथ्वीको फोड़जल निकालकर उनको तुन्त कियाजव पेता सुना तवसे हे संजयम् भै विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ १=४॥ जब पारडवीकी विजयके लिए पवन विश्वणकी और वहने लगा, चन्द्र सूर्य लाभस्थानमें आगए और चौपाये पशु हमको चारम्बार अय उत्पन्नकरनेलगे तवसे हे सम्जयमुक्ते विजयकी प्राणा नहीं रही ॥ १८५ ॥ जब ग्रह त युद्धकर्ताद्रोणांचार्यने ग्रहुतरीतिस ही बद्धिक्या तदभी पाएडवॉमेंसे अष्ठतर एककोभी न मारसके तबसे हैं सब्जय मुक्ते विजयको स्रांशा नहीं रही॥१=६॥ जय हमारी से नाके संसप्तक महारथी अर्जु नको मारनेके लिये आकरखड़े हुए तब अके लेही ष्यज्ञीनने सबको मारडाला जबसे ऐसा खुना तबसे हे संजय सुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १८७ ॥ दसरीसे अभेद्य व्यह कि-जिसमें भारहाजके पत्र द्रीण श्रस्त लेकर खडे थे उसकी सभद्राका

विजयाय सन्जय ॥ १=६॥ यदाश्रीपमभिमन्त्रं निद्त्य ६५/न सृद्रान् कोशतो धार्तराष्ट्रान् । कोधादुक्तं सैन्ध्रपे चार्ज नेन तदा नारांसेविक-याय सण्जय ॥ १६० ॥ यदाशीयं संन्यवार्थे प्रतिकां प्रतिकातां सहया-यार्ज्नेन । सत्यान्तीणी श्रामध्ये चतेन तदा नाशंसे विजयाय सन्जय १८१यदाश्रीपं श्रान्तह्ये धनेवज्ञेयं सुक्त्दा ह्यान् पायित्वीपस्तान् पुनर्य परवा वास देव प्रयान तदा नाग्नंसे विजयाय संजय॥ १६२॥ यदाधीयं चाहनेव्यन्तमेषु रथोपस्ये तिष्ठता पार्डवेगासर्वान्योधान्यारि. तानर्जु नेन नदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६३ ॥ यदाश्रीपं मागपर्लैः स् दुःसहं द्रोणानीकं युयुधानं प्रमध्य यातं वार्णीयं यत्र तौ कृष्णुराधौं तदा नाशंसे विजयाय संजय॥१६४॥यदाशीपं कर्णमासाय मुक्तं यथा-द्वीमं कुरसयित्वा वचोभिः।धनुःकोड्या तुच फर्णेन वीरं तदा नाशंसे पुत्रचीर श्रभिमन्यु केंद्रकर घुसगया जब ऐसा स्ना तब से दी है संजय मुभको विजय की खाशा नहीं रहा ॥ १== ॥ खेर्जुनको मारनेमें अस-मर्थ ऐसे हमारे सब महारथियाँने छात्र नके पालकपुत्र अभिमन्युको घेरकर मारडोला और प्रसन्न हुए,जब यह सुना तबसे हे स जयमुभको विजयको आशा नहीं रही ॥ १=८ ॥ श्रमिमन्यको मारफर हर्षित हो श्रास्यन्त कोलाहल करते हुए कीरचीकी श्रोर जाकर श्रज् नने जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञाकी ऐसा जब मैंने सुना तबसे है संजय मुक्तें विजय को भाशा गहीं रही ॥१६०॥ श्रज्ञानने संधिवराजको मारनेके लिए का हुई प्रतिहा, शत्रश्रीके मध्यमें स्वैधवराज (जयद्वथ) की मारकर सत्यकर दिशाई तबसे हे संजय मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १६१ ॥ बास्ट्रेव भगवान्ने छज्निक स्थके थकेतुए घोड़ी को खोल पानी पिला पुनः रथमें जोड़ दिया श्रीर पहलेकी समान हाकने लगे, जब मैंने ऐसा स्ना तबसे हे संजय मैंने विजयकी शाशा नहीं रक्खी ॥ १६२॥थके हुए घोड़ीको जल पिलाकर रथमें जोड़ा तब तक अजुन रथके आगे खड़ा होकर शबुबोंको रोके रहा यह छुना तबसे हे संजय मुभी विजयकी श्राशा नहीं रही १६३ हाथियोंकी वलसे भी न इट सके ऐसी युद्ध करतीहुई द्रोणकी सेनाको नष्टकर सात्यकी पाइस, जहां कृष्ण और अर्जुन थे तहां शामया जब धैने ऐसा खुना तबसे मुक्ते विजयकी खाशाँ नहीं रही ॥ १६४ ॥ कर्णने वशमें झापहुप भीमसेनका तिरस्कार कर उसको बहुतसे दुर्बचन कहे छोर धजुपकी

कोटिसे प्रहार करके छोडदिया ऐसा जब मैंने सना तबसे

श्रध्याय] ः भाषानुवाद सहित ः (२६) तदा नाशंसे विजयायः सन्जयः॥ १==॥ यदाशिसन्युं परिचार्थं वाहं सर्वे हत्याः ष्टष्टरूपा वसूनुः । महारथाः पार्थमशहुबन्तस्तदाः नाशंसे

विजयाय संजय ॥ १६५ ॥ यदाश्रीपं कृतवर्मा कृपश्च कर्णो द्रौणिर्म-दराजश्च शरः। श्रमर्थयन् सैन्धवं वध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६६ ॥ यदाश्रीपं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिव्यंसितां माध-वेन । घटोत्कचे राजसे घोरकपे तदा नाशंसे विजयाय संजय ११८० । यदाश्रीपं कर्णघटोत्कचाभ्यां युद्धे मुक्तां सतपूत्रेण शक्ति। यया वृष्यः समरे सब्यसाची तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६=॥ यदाश्रीषं द्रोणमाचार्यमेक धृष्टदारनेनाभ्यतिकस्य धर्मम् । रथोपस्ये प्रायगते वि-शस्त्रे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८६॥ यदाश्रीपं दौशिनाहै रथ-स्थं माडीस तं नकलं लोकमध्ये । समं यद्धे मगडलशब्दरन्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २०० ॥ यदा द्वीले निहते दोलपत्री नारायलं दिव्यमस्त्रं विकर्वन् । नैषामन्तं गतवान् पारखवानां तदा नाशंस् विजयाय संजय ॥ २०१ ॥ यदाश्रीयं भीमसेनेन पीतं रक्तं भातर्यधि षुःशासनस्यानिवारितं नान्यतमेन भीमं तदा नाशंसे विजयाय संजय मक्ते जीतनेकी आशा नहीं रही॥ १६५॥ अर्जनने जयद्रथको मारु ला उसको द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण कृतवर्मा, और शरवीर शल्य इत्यादिने सहन करा जब मैंने ऐसा सना तवसे मुभको विजयकी अशा नहीं रही ॥ १८६ कर्णने अर्जनके मोरनेके लिए जो दिव्यशक्ति वन्ताने पाकर रख छोडी थी वह शक्ति कृष्णने चतुराईसे घोरहण घटोत्क-चर्को ऊपर छडवादी ऐसा जब मैंने सुना तबसे म भौविजयकी बाहार नहीं रही॥ १६७॥ कर्ण तथा घटोत्कच युद्ध करते थे उस समय जिस शक्तिसे यद्धमें अर्जुनको मारना था वह शक्ति कर्णने घटोत्कचके ऊपर छोड़दी ऐसा जब मेरे सुननेमें श्राया तबसे हे संजय मभी विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ १८= ॥ जव ऐसा सुनाकि रथके सभीप शत्रत्रोंके मारनेके लिए निश्चल खड़े हुए द्रोणाचार्यको धृष्टयम्नने अधर्मासे मारडाला तबसे हे स जय मुझै विजयकी आशानहीं रही ॥ १६६ ॥ जब मैंने सुनाकि मादीके पुत्र नकुलने सम्पर्णसेनाके मध्यमें द्रोणके पुत्र अश्वत्थामांके साथ अकेलेही युद्ध करना प्रारम्भ किया और मंडलाकार फिरनेमें उसके वरावर उतरा तवसे हे

स जय मुक्ते विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ २००॥ जय द्रोणाचार्ये मारेगए तव उनके पुत्र श्रवस्थामाने नारायणनामका ।दिव्य श्रव्स क्लोडा तव पाएडवीमेंसे एकभी नहीं मारागया जव ऐसा सुना तका रेस्ट सुन्म स्वार्थ हें सुन्म के विजयकी श्राशा नहीं रही २०१ जव युद्धभूमिमें श्रपने भा देवा सुन्म तका है एसे एसे सुन्म तका है सुन्म के स्वार्थ में सुन्म तका है सुन्म के स्वार्थ में सुन्म के असके भाइयोमेंसे किसी ने नहीं रोका जब ऐसा मैंने के नातवस्ते सुक्ते विजयकी श्राशा नहीं रही ने नहीं रोका जब ऐसा मैंने के नातवस्ते सुक्ते विजयकी श्राशा नहीं रही

महाभारत श्रादिपर्व

पहिला

(38)

श्रध्याय] * भापातुवाद सहित * (२५)

॥ २०२॥ यदाश्रीपं कर्णमत्यन्तशूरं हतं पार्येनाहृत्वेष्वप्रभृष्यम् ।तस्मिन्
श्रातृषां विष्रप्ते देवगुले तदा नाशंसे विजयाय सन्जय ॥ २०२ ॥
यदाश्रीपं द्रोणपुत्रश्च शूरं दुःशासनं कतवमांणमुत्रम् । युधिन्दिरं धर्म राजं जयन्तं तदा नाशंसे विजयाय सन्जय ॥ २०४॥ यदाश्रीपं निहतं
मद्गराजं रण्यां स्थापित सन्जय ॥ २०४॥ यदाश्रीपं निहतं
वद्गराजं रणे शर्र धर्मराजेन स्त्रा । सदा संग्रामे स्पर्वते यस्तु कृष्णं
तदा नाशंसे विजयाय ०॥ २०५॥ यदाश्रीपं कताहृष्यतमृत्तं मायावलं
सीसत् पाएवयेन । एतं संप्रामे सहरेवेन पार्णं तदा नाशंसे विज

याय ०॥ २०६॥ यदाश्रीपं धान्तमेकं श्रयान ह्रद् गत्यास्तंभियत्या तदम्मः। दुर्योधनं विर्ध्य भन्नशिंक तद्दा नाशंसे विजयाय ०॥२००॥ यदाश्रीपं पाएडवान्तिष्ठमानान् गत्या ह्रदे वासुदेनेन सार्थः। शामर्पणं धर्पयतः सुतं मे तदा नाशंसे विजयाय ० २००॥ यदाश्रीपं विविधां- क्रियानार्गन् गदायुद्धे मण्डलशुष्टरन्तीमिण्याहतं वासुदेवस्य ग्रुद्धाः।
॥ २०२ महाशूर्धीर युद्धमे श्रक्ति कर्णं, जिसको देयता भी नहीं सम-भक्तके श्रयांन् एर्णं युद्धाः। सुत्र महाशूर्द्धार पुद्धाः। सुत्र महाशूर्द्धार पुद्धाः सुद्धाः। सुत्र महाशूर्द्धार पुद्धाः। सुत्र महाशूर्द्धार सुद्धाः। सुद्धाः सुद्धाः। सुद्धाः। सुत्र महाशूर्द्धाः सुद्धाः। सुद्धाः। सुद्धाः सुद्धाः। स

पुसा सुनित स्वार्य मुभी विजयकी आशा नहीं रही ॥ २०३ ॥ जम्म मैंने सुना कि—राजा युधिष्टिरने द्रोणके पुत्र अश्वरवामाको श्रूर- थीर हु।शास्त्रको श्रीर उत्र फतवमिको जीतिलिया तवत्ते हे संजय मुभी जीतिलेश आशा नहीं रही ॥ २०४ ॥ ऐ स्त जव मेंने सुना कि—संप्राममें श्रीरुण्णकी स्वर्धा करोने से स्वर्ध करोने से स्वर्ध करोने से स्वर्ध कराजी से स्वर्ध करोने से स्वर्ध कराजी से स्वर्ध करोने से स्वर्ध कराजा श्रूर्व में प्रधान प्रदेश राजा श्रूर्व में प्रधान प्रधान मुक्त विजय की श्रास महीं रही ॥ २०५ ॥ पापी, मायाके बलवाले तथा कलह श्रीर सुप्त मारा स्वर्ध में ने जव पेसा सुनी स्वर्ध के संस्था सुनी जीतिलेशी आशा नहीं रही ॥ २०६ ॥ जिस समय मुभी जीतिलेशी आशा नहीं रही ॥ २०६ ॥ जिस समय मुभी स्वर्ध कराजी हु श्रीर वह पानीको रोक कर पानीकी भूमिमें चैटनाया है तव से हे संजय मुभी विजयकी आशा नहीं रही ॥ २०६ ॥ हुयोंपन जिस

पानीकी पृथ्वीमें (सरोवरमें) बैठगवा था वहां श्रीकृत्युके साथ पाएडव गए श्रीर मेरे पुत्रसे तिरस्कारके वचन कहनेत्रने जवसे मैंने ऐसा सुना तबसे हे संजय मुक्तै जीतनेकी ख्राशा नहीं रही॥२००॥ युद्धके तिये विविधयकारसे श्रनेक रीतिके चकाकारसे घूमतेहुए मेरे वटे दुर्योधनको भीमसेनने श्रीकृत्युकी संमतिसे कपट करके नीचेके

भागमें जंबाके ऊपर गदाका प्रहार कर मारदियाऐसा मैने सुना तबसे है

पहिला # महाभारत श्रादिपर्व # (२६) तदा नाशंसे विजयाय०॥ २०६॥ यदाश्रीषं द्रोणपुत्रादिभिस्तैर्हतान्पा-ञ्चालान्द्रीपदेयांश्च साप्तान्। कृतं वीभत्समयशस्यञ्च कर्म तदा नाशंसे विजयायः ॥ २१० ॥ यदाश्रीषम्भीमसेनानुयातेनाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम् । कुद्धेनैवीकमवधद्येनगर्भे तदा नाशंसे विजयाय ० ॥ २११ ॥ यदाश्रीपम् ब्रह्मशिरोऽर्जनेन स्वस्तीत्युक्तवास्त्रमस्त्रेणः शान्तम्। श्रश्व-त्थाम्ना म ग्रुत्तम् च दत्तम् तदा नारांसे विजयाय ० ॥ २१२ ॥ यदा-श्रीपम् द्रोणपुत्रेण गर्भे वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रैः । द्वैपायनः केशवो द्रोलपुत्रम् परस्परेलाभिशापैः शशाप ॥ २१३॥ शोच्या गांधारी पुत्रपौत्रैविहीना तथा वन्धमिर्वितमिर्भातमिश्च। कृतम् कार्ये दुष्करं पारडवेयैः प्राप्तम् राज्यमसंपत्नम् पुनस्तैः ॥ २१४ ॥ कष्टं युद्धे दश-शेषाः श्रत्वा मे त्रयोऽस्माकम् पाएडवानाञ्च सप्त। चुना विशंतिराहता-जौहिणानां तस्मिन्संग्रामे भैरवे चत्रियाणाम् ॥ २१५॥ तमस्त्वतीय-विस्तीर्णं मोह श्राविशतीव माम् । संद्यां नोपलभे सूत मनो विद्वल-संजय मभौ विजयकी श्राशा नहीं रही २०८ जब मैंने सनाकि-द्रोणके पुत्र श्रश्यत्थामा श्रादिने पाञ्चाल देशके राजाश्रीको तथा द्वीपदीके पुत्रोंको स्रोते में ही मारडाला ऐसा भयंकर श्रीर श्रपयश देनेवाला कर्म करा तबसे हे संजय मैं जीतकी श्राशा नहीं रखताहूँ ॥ २१० ॥ भीमसे नको श्रपने पीछे लगाहुश्रा देखकर श्रश्वत्थामाने ऐपीक नामका परम श्रस्त छोड़कर गर्भको नष्ट करनेका विचार किया ऐसा मैने सुना तवसे हे संजय मुक्त विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ २११ ॥ जब मैने लनाकि--श्रश्वतथामाने छोड़े हुए ब्रह्माख नामक श्रखको श्रर्ज नने स्वस्ति कहकर श्रीर सामने दूसरा श्रस्त छोड़कर रोकदिया तथा श्रश्वत्थामाने श्रपने

मस्तकर्में की मिंख अर्जुनको देदी तवसे हे संजय मुझे जीतकी आशा नहीं रही ॥ २१२ ॥ हे संजय जब मैंने सुनाकि—अश्वरायमाने विराद् राजाकी पुत्री उत्तराका गर्भ निरानेको ब्रह्माख झोड़ाहे उससम्म वेदस्यासको श्री उत्तराका गर्भ निरानेको ब्रह्माख झोड़ाहे उससम्म वेदस्यासको श्रीर श्रीकृष्णकी दोनोंने उसको श्राप दिया तवसे मैं विजयको श्राया नहीं रखताहूँ ॥ २१३ ॥ श्रहाहा पुत्र, पौत्र, पितृ, और सगेस्नेहियोंसे रहित हुई विचारी गांधारीको दशा कैसी द्याजनक होरही हुं आर बहाही हुक्कर कर्म करके पायखनेंने निष्करत्यक राज्य होरही हुक्कर कर्म करके पायखनेंने निष्करत्यक राज्य होरही हुक्कर कर्म करके पायखनें कि स्वात पायखनें के एक सामित्र विचारी स्वात पायखनों के पायखनें स्वात पायखनों स्वात पायखनों के पायखने स्वात पायखनों के पायखने स्वात पायखनों के पायखने स्वात पायखनों के पायखने स्वात स्वात स्वात पायखनों के पायखने स्वात स्वात स्वात पायखनों के पायखने स्वात पायखनों के पायखने स्वात पायखनों स्वात पायखनों स्वात पायखनों के पायखनें स्वात पायखनों स्वात पायख

तीच मे ॥ ११६ ॥ सौतिरुवाच । इत्युक्त्या धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य वहु-दुःखितः । मृर्छितः पुनराश्वरतः संजयं वाक्यमप्रवीत् ॥ २१० ॥ धृत-राष्ट्र उवाच । सञ्जयेवं गते प्राणांस्यक् मिच्छामि मा चिरं । स्तोकं हापि न पश्यामि फलं जीवितधार्णे ॥ २१= ॥ सौतिरुवाच । तं तथा षादिनं दीनं विलयनां मेहीपति । निश्वसन्तं यथा नागं मुहामानं पुनः पुनः । गावलगिणिरिदं घीमान् महाधँ वायवमग्रवीत् २१६सण्जयउवाच श्रुतवानसि वै राजन्महोत्साहान्महावलान्। हृपायनस्य वदती नारदस्य च घोमतः॥ २२०॥ महत्त्नु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च। जातान्दि-ब्यास्त्रविद्यः शक्तप्रतिमतेज्ञसः॥ २२१ ॥ धर्मेण् पृथ्वी जिन्वा यद्ये-रिष्टा स दक्षिणै: । श्रार्रिमहोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गतान् ॥ २२२॥ शैवं महारथं वीरं खंजयं जयताम्बरम् । स होत्रं रन्तिदेवञ्च काक्तीयन्तं महायुति ॥ २२३ ॥ यारुदीकं दमनं चेंय शर्यातिमजितं नलम् । विश्वामित्रममित्रग्रमस्वरीपं महायुतिम् ॥ २२४ ॥ महन्तम-नुमिद्याकं गयं भरतमेव च । रागं दाशरथिञ्जैय शशिविन्दं भगी-र्धम् ॥ २२५ ॥ कृतवीर्यं महाभागं तथैव जनमेजयम् । ययाति अभ धिराहुआ मेरा मन घवडाताहै तथा व्याफुल होताहै २१५-२१६ सुतजी कहते हैं कि इसप्रकार संजयसे कहकर बहुतही हु: खित हुए धृतराष्ट्र मुर्छित होगए, संजयने पवन करके उन्हें सावधान किया और मुर्छी दूर होनेके छनन्तर वर कहने लगे ॥२१०॥ घृतराष्ट्रने कहा कि हे संजय पेसा परिणाम निकलनेसे शव मै जीनेमें कुछ भी फल नहीं देखता श्रीर कुछही समयमें भें श्रपने प्राण् त्यागना चाहता हूँ ॥ २१=॥ सीति कहते हैं कि इसप्रकार कहकर दीनतासे विलाप करते. सर्पकी समान श्वास लेते और वारम्वार मोह पाते हुए राजा धृतराष्ट्र से गावलगणीका चतुर पुत्र संजय गंभीर विषयसेभरे वाक्य कहने लगा ॥ २१६ ॥ संजयने कहा कि—हे राजन् ! ब्यासजी श्रीर बुद्धिमान् नारदजीके मुखसे श्रापने सुनाहै कि-यड़े उत्साही महावली ग्रणींसे उज्ज्वल यहेँ राजवंशमें उत्पन्नहुए दिव्य श्रस्नोंको जानने वाले श्रीर इन्द्रकी समान तेजस्वी, धर्मसे इस पृथ्वीको जीत यह याग करकी वड़ी २ दक्षिणाएँ दे इस संसारमं कीर्त्ति पानेवाले राजाश्रोंको भी श्रन्तमं कालके वशमं होना पड़ा है, देखो पहिले महारथी श्रीर शरबीर राजा शैन्य, जीतनेवालोंमें श्रेण्ड स जय, फीर्त्तिवालोंमें श्रेष्ठ सुहोत्र, रंतिदेव, कालीवंत, श्रौशिज, वाल्हीक, दमन, चैच, शर्याति, श्रजित नल, राष्ट्रश्रोंके मारनेवाले विश्वामित्र, महावलवान् श्रावरीप, मस्त्र. मनु,इच्वाकु, गय, भरत, दशरथके पुत्र रामचन्द्र,शशिविन्ह्,भगीरथ

महाभाग्यशाली कृतवीर्य. श्रीर जनमेजय, शुभकर्म करनेवाले ययाति.

भाषानुवाद सहित ॥

श्चायी

(২৩)

[पहिला # महाभारत आदिपर्व # (२=.) कर्माणं देवैयों याजितः स्वयम्॥ २२६॥ चैत्ययूपाङ्किता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा । इति राज्ञां चतुर्विशं नारदेन स्रेपींगा ॥ २२० ॥ पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा शैव्याय कीर्त्तितम् ॥ २२= ॥ तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्वं राजानो यलवत्तराः ॥ २२६ ॥ महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः । पुरुः कुरुर्यदुः श्रो विश्वगश्वो महायतिः । अणुहो युवनाश्वश्च कक्रत्स्थो विक्रमी रघः ॥ २३० ॥ विजयो वीतिहोत्रोऽगो भवः श्वेती वृत्दगुरुः। उशीनरः शतरथः कंको दुलिदुही द्रमः ॥ २३१ ॥ दुम्भोद्भवः परो वेणः सगरः सं कृतिनिर्मिः । अजेयः परशुः पुगड्ः ग्रमहें वावृधोऽनवः ॥२३२॥ देयाह्यः स प्रतिमः सुप्रतीको वृहद्वथः । महोत्साहो विनीतात्मा स्कतुर्नैपधो नतः॥ २३३ ॥ सत्धवतः शान्तभयः स् मित्रः स् बलः प्रभुः । जानुजंघोऽनरएयोऽर्कः प्रियमृत्यः शचिवतः ॥ रहेश ॥ वलवन्धुर्निरामर्दः केतुशृक्को बृहद्वलः । धृष्टकेतु र्व हत्केतुर्दीतकेतुर्निरामयः २३५ श्रविक्षिच्चपलो धूर्तः कृतबन्धुर्द दे पुधिः। महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यक्षः परहा श्रुतिः॥ २३६ ॥ पते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः। श्रयन्ते शतश्चान्ये संख्याताश्चैव पद्मशः॥२३०॥हित्वा स विपुलान् भोगान् बुद्धिमन्तो महावलाः।राजानो जिनको देवताश्रीने यह कराया था श्रीर जिनके यहस्तम्भीसे श्राधी

प्रथ्वी घिरगई थी, ऐसे इन चौवीस राजाश्रोंकी कथा, पुत्रशोकसे सन्तप्तहप श्वैत्यराजसे उसका शोकको दर करनेके लिए नारदजीने कहीथी।। २२०--२२=॥ और इन राजाओं से पहिले भी महारथी. महात्मा, सर्वगुण्युक्त ऊपर कहे राजाश्रीसे भी श्रधिक बलवान राजे होगए हैं, जिनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं॥ २२६॥ पुरु, कुरु शरवीर महाचिति, विश्वगश्व, श्राणुह, युवनाश्व, कुकुत्स्थ, पराक्रमी रघु ॥ २३० ॥ विजय, वीतिहोत्र, श्रंग, भव, श्वेत, वृहद्गुड, उशीनर, शतरथ, कंक, बुलिवुह, द्रम ॥२३१॥ दंभोद्भव, पर, चेन, संगर, संकृति निमि, श्रजय, परशु, पुरुडू शंभु, पुरायवान्, देववृद्ध ॥ २३२ ॥ देवाह्य, सुप्रतिम, स्प्रतीक, बृहद्वथ, यड़े उत्साहवाले और विनयवान् स्फल निषधदेशका राजा नल ॥ २३३ ॥ सत्यवत,शान्तभय, सुमित्र, सुयल, राजाजंघ, अनरएय, अर्क, प्रियमृत्य, ग्रुचिव्रत ॥ २३४ ॥ बलवंध, निरा-मर्द, केतुशह, बुहबल, धृष्टकेतु, बुहत्केतु, दीसकेतु, निरामय, अविक्तित चपत, धूर्त, कतवंधु, बढेषुधि, महापुराण, संभाव्य, प्रत्यंग, परहा, श्रीर श्रुति, हे राजन इनके सिवाय दूसरे लाखों श्रीर पद्मीतककी स ख्याके तथा महावली बुद्धिमान राजे बहुतसा भीग भोगकर, है प्रभो आपके पुत्रोंकी समान ही कासके बशमें होगए हैं अर्थात् मृत्युको

भ्रध्याय] ः भाषानुवाद सहित 🕸 (38) निधनम् प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभा ॥ २३= ॥ येपां दिव्यानि कर्माणि विकासस्याग एव च । माहात्म्यमपि चारितय्यं सत्यं शीचं वयार्ज-वम् ॥२३६॥ विद्वन्निः फथ्यते लोके पुराणे कवि सत्तमैः । सर्वर्ज्ञिगु-णुसम्पन्नास्ते चापि निधनं गताः ॥२४०॥ तव पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ता-श्चैव मन्यना । लब्धा दर्व सभियष्टा न ताम्होचित्मईसि ॥ २४१ ॥ श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्रावसम्मतः येषां । शास्त्रानुगा बुद्धिनं ते मुखन्ति भारत॥२४२॥निव्रहानुव्रही चापिधिदिती ते नराधिप।नात्य न्तमेवानुवृत्तिः पार्या ते पुत्ररज्ञे ॥२४३॥ भवितव्यं तथा तवा नानु-शोचितमहीस । हैवं प्रशाविशेषेणको निवक्तित्महीत ॥२४४॥ विधात विहितं मार्गं न कश्चिद्तिवर्त्तते । कालम्लमिदं सर्वं भावाभावी स कासके ॥ २४५ ॥ कालः खजति भृतानि कालः संपुरते प्रजाः। निर्वहित प्रजाः फालः फालः शमयते पुनः ॥ २४६ ॥ कालो हि फुक्ते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान् । कालः सं क्षिपते सर्वाः प्रजा विख्जते पुनः २४७ ॥ फालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि हुरतिकामः। कालः सर्वेषु

प्राप्त पुर हैं ॥ २३५—२३= ॥ इतने ही नहीं परन्तु वली दिच्यकर्मवाले पराफ्रमी, दानशील, यड़े माहात्म्यवाले आहितक, सत्यवादी, पविज्ञ, द्यावीर, सरल, यड़े र क्षियों और विद्याने पुराणोंमें जिनका वर्णन क्यावीर, सरल, यड़े र क्षियों और विद्याने प्रीर गुण्युक, अनेकों राजे मरणहीं शरण पुर हैं तो फिर दुराना,फ्रोपसे तम,लोभी श्रीर अत्यन्त दुराचारी तुझारे पुत्र मरणकी शरण हों तो उनके लिए श्रोक करना आपको शोभा नहीं देवा ॥ २३६—२४१ ॥ विद्याना हो, जिनकी दुर्श शास्त्र आत्म दुर्हिमान और विद्याना हो, जिनकी दुर्श शास्त्र अत्राक्ष आता दुर्हिमान और विद्याना हो, जिनकी दुर्श शास्त्र अनुसार होती है पह शोभको नहीं शास होते हैं श्रद्ध शास्त्र अनुसार होती है पह शोभ भो श्रापन पुत्रों के स्वान होती है पह शाम को श्रपने पुत्रों तो त्वाते लिए वहुत व्याकुल नहीं होना चाहिये ॥२२३॥ श्रीर जो होनेवालाहे उसकेलिए शोककरना श्रापकोयोग्य नहीं है वर्ग शिक्षों के कि मिनमा महुष्य दुद्धिवल है देवने फेरसवता है? कोई नहीं ॥२४३॥ विकाता है दिखायेहुए मार्गका कोई भी उन्नुवन नहीं करसकता जनम,

कालही सव भूतोंको उत्पन्न करता है और कालही सव प्राणियोंका संहार भी करता है, हतनाहीं नहीं किंतु प्रजाओंका संहारकरनेवाले कालको भी कालही किर शांत करता है। २४६ ॥ कालही सम्पूर्ण लोकमें ग्रुम तथा श्रुगुभ भावकों उत्पन्न करता है कालही सव प्रजा-ग्रुम तथा श्रुगुभ भावकों उत्पन्न करता है कालही सव प्रजा-ग्रुमका नाश करता है और फिर उसको उत्पन्न करता है। २४७॥ ॥ जब सव सुपुति श्रवस्थामें होते हैं तबभी कालही जागता रहता है

मरण, सुख श्रीर दुःख इन सब का कारण काल ही है ॥ २४५ ॥

और कालही सब लोकोंमें अलङ्गनीय है, बली काल सब प्राणियोंमें वेरोकटोक फिरता है और वह सबका आत्मा है ॥२४८॥ यह कालही बीता हुआ, होने वाला और श्रोजकल होरहा है अर्थात भत भविष्य श्रीर वर्तमान कालमें जो कुछ है वह सबही कालने बनाया है यह जानते हुए आपको ज्ञाननिष्ठा नहीं त्यागनी चाहिये व्योकि शोकको हरने वाला ज्ञानके सिवाय दूसरा नहीं है ॥ २४६ ॥ सतजी कहते हैं कि पुत्रशोकसे व्याकुल हुए राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार गावल्गण के पुत्र संजयने आश्वासन देकर स्वस्थ करा॥ २५०॥ इस ब्रुत्तांतका श्रापार लेकर ब्यासजीने शोकातुरका शोक शांत करने के लिए पराय-दायक उपनिषदों का ज्ञान वर्णन किया है कि जो विद्वानों और प्रसिद्ध कवियोंकी परानी रचनामें श्राकर जगत् में प्रसिद्ध हुआ है ॥ २५१ ॥ इस महाभारतके एक स्होकका एक पादभी श्रद्धासे पढाजाय तो सम्पूर्ण पाप पूर्णक्षप से नए होजाते हैं तो सम्पूर्ण महाभारतका पढना पुरायकारी होगा इसमें आश्चर्य ही क्या है? इस महाभारतमें देवता देवपि पवित्र ब्रह्मपि, ग्रुभकर्म करनेवाले यद्य श्रीरवडेर सपीकावसात कहा है।। २,१२ । २५३ ॥ श्रीर इस भारतमें सनातन भगवान् श्री कृष्णजोका चरित्रभी कहा है, वहही स्वयं संत्य, ऋत, पवित्र और पुरायस्वरूप हैं ॥ २५४॥ यहही शाश्वत. ब्रह्म, परम, ध्रव, सनातन श्रीर ज्योतिक प हैं जिनके दिव्य कमोंको चतुर श्रीर विद्वान पुरुष गाते हैं ॥ २५५ ॥ जिनसे असत् श्रीर सत्हर जगत्, सन्तति, यहादिकी प्रवृत्ति, जनम, मरण, पुनर्जन्म श्रादि होता है ॥ २५६ ॥ जो शरीर में रहनेवाले पश्चभूतोंका गुणात्मक सुना जाता है वह यह ही हैं और जो

महाभारत श्रादिपर्व # भृतेषु चरत्यविधृतः समः॥२४=॥ श्रतीतानागता भावा ये च वर्त्तन्ति सोंप्रतम् । तान् कालनिर्मितान् बुद्ध्वा न संशां होतुर्महिसि ॥ २४८ ॥ सौतिरुवाच । इत्येवं पुत्रशोकार्त्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् । श्राश्वास्य स्य-स्थमकरोत् सुतो गावलगणिस्तदा ॥ २५० ॥ श्रत्रोपनिषदं पुरायां कृष्ण-द्वैपायनोऽब्रवीत् । विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराखे कविसत्तमैः ॥ २५१॥ भारताध्ययनं पुरुवमपि पादमधीयतः । श्रद्धधानस्य पुयन्ते सर्वपापा-न्यशेपतः ॥ १५२ ॥ देवा देवर्पयो छत्र तथा ब्रह्मर्पयोऽमेलाः । कीर्र्यन्ते श्रमकर्माणस्तथा यक्ता महोरगाः ॥ २५३ ॥ भगवान वाल देवश्र कीर्त्य तेऽत्र सनातनः। स हि सत्यमृतञ्जीय पवित्रं पुरायमेव च ॥ २५४ ॥ शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम् । यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीपिणः ॥ २५५ ॥ श्रसच सदसचैव यस्माहिश्वं प्रवर्त्तते सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः ॥ २५६ ॥ श्रध्यातमं श्रुयते यञ्च

(30)

पहिला

 भाषानुबाद सहित । (३१) श्रध्याय] पञ्चभृतगुणात्मकम् । श्रव्यक्तादिषरं यद्य स एव परिगीयते ॥ २५७ ॥ यत्तद्यतिवरा मक्ता ध्यानयोगवलान्विताः । प्रतिविस्वमिवादशं पश्य-हत्यातमन्यवस्थितम् ॥ २५=॥श्रद्धधानः सदायुक्तः सदा धर्मपरायसः। श्चास विश्वममध्यायं नरः पापात प्रमुच्यते ॥ २५६ ॥ प्रानुक्रमणिका-ध्यायं भारतस्येममादितः । शास्तिकः सनतं शुगुबच कृच्छेप्यवसी-दति ॥२६०॥ उभे मध्यं जपन् किञ्चित्सयो मुच्येत किरियपात् । शहर-क्रमत्या यावत स्यांदहा राज्या च सञ्चितम् ॥ २६१ ॥ भारतस्य चपु-र्धे तत्सत्यं चामनमेव च । नवनीतं यथा दुष्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ २६२ ॥ प्रारग्यकं च चेदेभ्यश्चीपधीभ्योऽमृतं यथा । हृदानामृद्धिः श्रेष्ठो गीर्बरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ २६३ ॥ यथैतानीतिहासानां तथा भार तमुच्यते । यधौनं श्रावयेच्छाद्धे बाह्मणान् पादमन्ततः । श्रज्ञस्यमञ-पानं वै पितंस्तस्योपतिष्ठते ॥२६४ ॥ इतिहासपराणाभ्यां वेदं समप-इंहचेन् । विभेत्यरपश्चनाहेदो मामयं प्रहरिष्यनि ॥ २६५॥ काप्णै चेट-मिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमञ्जूते । भूग्रह्न्यादिकं चापि पापं दहााद-श्रव्यक्तादि है जो परम निर्विशेष रूप कहा जाना है वह भी यह ही हैं ॥ २५७ ॥ ध्यान योगके वलवाले जो योगीइवर मुक्त होगए 👸 उनके हृदय में रहनेवाले उन भगवान श्रीकृष्णको दर्पण में दीसनेवाले प्रति विस्वकी समान देखते हैं ॥ २५= ॥ सर्वदा धर्ममें दत्तचित्त, अद्वाल श्रीर सर्वदा उद्योगी जोपुरुप,सर्वदा इस श्रव्यायका पाठ'करता है वह सक्त होजाता है ॥ २५६ ॥ जो श्रास्तिक पूरुप श्रद्धाले इस महाभारत के श्रवक्रमणिका श्रध्यायको प्रारम्भको संगाप्ति पर्यन्त सनता है । यह कदापि सङ्घटमें नही पड़ता है।।२६०॥ इस श्रद्धक्रमिकापर्वके एक श्राधे श्लोकको भी जो कोई मनसे प्रातःकाल वा सन्ध्याकालको पढ़ता है तो वह तत्काल दिन या रात्रिमें किए हुए सब पापीसे छूट जाता है।। २६१।। यह श्रध्याय महाभारतका शरीररूप सत्य श्रीर श्रमत की समान है, दहीमें जैसे मक्खन मनुष्यों में जैसे ब्राह्मण वेदोंमें जैसे श्रारएयक, श्रीपिधयों में जैसे श्रमत सरोबरों में जैसे समुद्र और पशुश्रोमें जैसे गी श्रेण्ठ है उसीवकार यह महाभारत इतिहासोंमें श्रेष्ठ कहाजाताहै जो कोई इसका एक चरण भी ब्राह्मणोंको श्राद्धके समय श्रन्तमें सुनाता है तो उसके पितरोंको श्रवश्य श्रज्ञय श्रज्ञपान मिलताहै इतिहास श्रीर गुराखोंकी सहायता से वेदोंकी वृद्धि करनी चाहिये॥ २६२--२६५ ॥ परन्तु देद, श्रहपत

पुरुप हमारा नाश करेंगे ऐसा विचार कर उनसे डरतेहैं । व्यासजी के रचेहर इस सम्पर्ण वेदको जो पुरुप सुनता है वह पुरुपार्थको पाना

पहिला # महाभारत श्रादिपर्व #

संग्रयम् ॥ २६६ ॥ य इमं ग्रुचिरध्यायं पठेत पर्वणि पर्वणि। श्रधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः ॥ २६७ ॥ यधैनं शरायान्नित्य-मार्पं श्रद्धासमन्वितः। स दीर्घमायः कीत्तिञ्च स्वर्गति चाप्त्रयाद्यरः ॥ २६= ॥ एकतश्चत्रो वेदान भारतं चतदेकतः । परा किल स् रैः सर्वैः समेत्य तुल्या धृतम् ॥२६८ ॥ चतुभ्यैः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो हा-धिकं यदा। तदाधभृति सोकेऽस्मिन्महाभारतमुच्यते ॥ २७० ॥ महस्वे च गरुत्वे च भियमाणं यतोऽधिकम्। महत्त्वाद्भारवस्त्राच महाभारत-मुच्यते । निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०१ ॥ तपा न क-ल्कोऽध्ययनं न कलकः स्वामाविको चेदविधिनं कलकः। प्रसद्य वित्ताह-

(३२)

रतां न करकम्तारयेव भावोपहतानि करकः ॥ २७२ ॥ इति श्रीमहाभारतेशतसाहस्रयां संहितायां चैयासिक्यां श्राद्विपर्याग्यनक्रमणिकाध्याखो नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

है और गर्भपात (बालहत्या) श्रादि पाप भी महाभारतको स ननेस श्रवश्य नप्ट होजातेहैं, इसमें संशय नहीं है जो पुच्य पवित्र होकर इस अध्यायका पर्व २ में पाठ करताहै उसको सम्पूर्ण महाभारतको पढनेका पराय फल मिलताहै ऐसा मेरा मत है, जो पुरुष इस महाभा-रतको श्रद्धासे स् नेंगे ॥ २६०॥२६=॥ वह वड़ी त्रायु श्रोर की ति पाकर श्चन्तमं स्वर्ग जायंगे पहिले सव देवताओंने एक श्रोर चारोवेदोंको श्रीर

दसरी और अनेले महाभारतमात्र को रखकर तोलाथा, तव रहस्य सहित चारो वेदोको अपेचा भी भारत अधिक हुआथा॥ २६८॥ २७०॥ तबसे संसारमें यह महाभारत कहाता है क्योंकि यह अन्थ महत्त्व श्रीर गरुत्व इन दोनोपकारसे उत्तम हुकाथा, यह प्रन्थ सब प्रन्थी की श्रपेता वड़ा होनेसे और श्रथमेंभी गंभीरहोनेसे महाभारत कहाता

है. जिन प्रवीने इसका ठीक २ अर्थसमका है वह सब पापीस मक्त होगए हैं ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ तप निर्मल साधन गिना जाता है, वेदा-ध्ययन निर्मल साधन गिनाजाता है, स्वाआविक वेदोक्तविधि भी

निमंत गिनीजाती है हडांत् शिलोञ्छवृत्ति भी निर्मल साधन गिनी जाती है परन्त ऊपर करे हुए यह तप श्रादिक यदि शुद्ध भावरहित किये हो तो वह शृद्धसाधन नहीं गिनेजापँगे किन्तु पापपद होते हैं ॥ २७३ ॥ # ॥ अथम अध्याय समात ॥ # ॥ # ॥ # ॥ # ॥

 भाषानुबाद सहित । (३३) श्रद्भाय े भूषय ऊच्छः । समन्तपञ्चकमिति यदुक्तं सृतनन्द्न । एतत् सर्व यथातःवं श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥ १॥ सीतिक्याच । शण्ध्यं मम भो विश्रा ब्रवतक्ष कथाः शभाः । समन्तपञ्चकाल्यञ्च श्रात्महेथ सत्तमाः ॥ २ ॥ तंताहापरयोः सन्धी रामः शस्त्रभृतां वरः । श्रासक्र-त्वार्थिवं स्तरं जवानामर्पचादितः ॥ ३ ॥ स सर्वं स्वमुरसाय स्ववीर्ये-गानलयतिः । समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान् हदान् ॥ ४॥ स तेषु विधराम्भःसु हुरेषु फोधमूर्छितः । पितृन् सन्तर्पयामास विध-रेणेति नः अनम्॥ ५॥ श्रेयचीकाद्योऽभ्येत्य पितरो राममञ्चन्। राम राम महाभाग प्रीताः स्म तब भागव ॥ ६ ॥ प्रनया पितुमत्तवा च विक्रमेण तव प्रभो । घरं वृणीष्य भद्रं ते यमिच्छिस महायते॥७॥ राम उवाचे । यदि में पितरः प्रीता यद्यनुप्राहाता मथि । यद्य रोपाभि भृतेन स्वमुख्यादितं मया ॥ = ॥ शतस्य पापान्तुच्येऽर मेप मे प्राधितो वरः। हुराह्य तीर्थभृता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥ १॥ एवं भविष्य-मृपिप्छुनेलगे कि-हे स्वपुत्र !श्रापने जो समंतपंचक नामका तीर्थ फहा उसके विषयमें हम सर्वोको यथार्थरूपसे पुनने की इच्छा है।१। सृतने कहा कि-हे ब्राह्मणी में वह शुभकारी कथाएं कहताहूँ तुम सनो हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ !समंतपंचक नामक चेत्रके निषयमें जो कुछ कहा जाय उसको सननेके तुम योग्य हो ॥२॥ घेतायुग और द्वापरयुग के संधिकालमें चित्रयोंने परशुरामजीके पिताको मारडालाथा श्रतः उत्पन्न हुए फ्रोथसे उसकाए हुए श्रक्तिकी समान तेजस्वी श्रीर सब शस्त्रधारि-योंमे श्रेष्ठ ऐसे जमद्भिके पुत्र परशुरामने श्रंपने पराक्रमसे बारम्बार बहतसे चित्रवीको गर करफेसंमंतर्पचकनामकतीर्थमें चित्रवीकेरक से भरेहुएपांच तालाव बनायेथे॥३-४॥ श्रापने सुना है कि कोधसे सृर्छित हुए परशुरामने रक्तसे पूर्ण पांच हदों के रक्तसे पितरीका तर्पण कराथा ॥ ५ ॥ तथा इस तर्पणसे तुप्त हुए ऋ बीकादि पितरीने प्रत्यक्त दर्शन देकर परशुरामजीसे इस प्रकार कहा था कि-हे राम है राम हे महाभाग हे भगुकुलोत्पन्न तुम्हारी इस पित्भक्तिसे और पराक्रमसे हम प्रसन्त हुए हैं है विभी तुम्हारा कल्यांण हो है महा प्रतापी ! तुम्हारी इच्छामें श्रावे वह वर हमसे मांगलो ॥ ६॥ ७॥

परशुरामकहनेलने किन्हें पितरों ! खाप जो मेरे ऊपर प्रस्ता हुए हैं ज़ीर मुभ्रे क्रतार्थ करनेको इच्छा करतेहें तो मैने जो कोघनश होकर सृत्रियों के कुलका नाश करा है मैं इस पापसे लूट्ट खारयह मेरे सरोबर पृथ्वी में प्रसिद्ध श्रीर तीर्थकर होयें ऐसा वर मुभी दीजिए ॥=— ६॥ तव पित रीने कहा कि खुच्छा पैसाही होगा श्रीर तमभी खुन समाकरी ऐसा (२७) # महाभारत आदिपर्व # [पिहला

ह्यांत्र्वह वितायस्तमधात्रुवन् । तं स्नास्वेति निपिपिशुस्ततः स विर-तान ह ॥ १० ॥ तेयां समीपे यो देशो हृदानां रुधिराम्मसाम् । सम-स्टपक्षण मिति हुत्यं तत्परिकीर्तितम् ॥ ११ ॥ येन स्तिगेन यो देशो सुनाः नसुप्तत्रपति । तेनैद नाम्ना तं देशं वाच्यमहिमेनीषिणः ॥१२ ॥ हात्तरे सेव स्त्याप्ते स्विद्वापरयोरमृत् । समन्तपञ्चके युद्धं कुष्पा-

त्तर देव क्षारी राज्यस्य स्वात्तर स्वा

्री हुएयम्य रमर्शियस्थ स द्या वः प्रकास्तितः। तद्यत् कथित स्वयं स्वयं स्वाधितः।
﴿ होत्र्यस्यम्यासः॥ १६॥ वया देशः स विष्यातस्त्रिष्ठं लोकेषु स्वव्रतः।
﴿ हार्य छहुः। प्रज्ञीहिएय इति प्रोक्तं यस्यया सूतनन्त्रन। प्रतीस्त्राः
﴿ होत्रे होर्ग् सर्वमेष्ट यथातथम्॥ १७॥ श्रव्जीहिएयाः परीमाणं नरा﴿ ह्यूर्थर्भितास्। यथावयैव नो मृहि सर्वं हि विद्तं तव॥ १८॥
﴿ स्वर्थर्भितास्। यथावयैव नो मृहि सर्वं हि विद्तं तव॥ १८॥

कहकर उनको हिंसा करनेका निषेध किया तब परशुराम हिंसा करनेसे रुके छोर रितर श्री छपने लोकको चलेगपा।श्लाउसके छनन्तर दिधर के करोवरोंने कमीपमें को पवित्र प्रदेश था यह समंतपञ्चक इस नामसे

प्रसिद्ध हुआ। ११॥ जो देश जिस तक्षणसे पिक्ष्याना जाय वस्ही उस देश का वान कहना चाहिये ऐसा चतुर मनुष्य कहते हैं ॥१२॥ किल और हापरके लंधिकालमें समतपंचक नामके चेत्रमें कौरवीं और पागडवीं की सेनाका महाभयंकर गुद्ध हुआ था॥१३॥ उस समय परम पविष

ह्योर भृतोप (कांटा छादि) से रहित प्रदेशमें युद्धकरनेकी इच्छा करने हाली अठारह छाज़ौहिणी सेनांप इकट्ठी हुई थीं ॥१४॥ और हे औष्ठ ब्रा-छाणों! बहलेनांपंडल प्रदेशमें इकट्ठी होकर परस्पर कटमरी हे ब्राह्मणों तक्ले डल देगुका लमंतपञ्चक नाम पड़ा है ॥१५॥ और हे सदाचारी ब्राह्मणों! वह पिंचन और रमणीयप्रदेश जिसमकार तीनों लोकोंमें

कह हुन है हैं ॥ १६ ॥ ऋषि पंजनेल गे कि हे स्तात्मज आपने जो असीहिणी सेनाके विषयमें कहा है उस विषयमें हम पूर्णरीति से जुनता चाहते हैं ॥ १७ ॥ आप सर्वत्न हैं अतः असीहिणीका परिमाण तथा उसमें कितने पैदल, घोड़े, हाथी और रथ होते हैं वह हमसे यथार्थ रीतिसे कहियेगा ॥१८ ॥ स्त कहनेलगे जिसमें एकरण एक हाथी, पांच पैदल, और तीन घोड़े होते हैं उस को

प्रसिद्ध हुला वह जानने योग्य सम्पूर्ण वार्ते मैंने तुमको अञ्जी प्रकार

रस यु द में वड़े अस्पवेत्ता भीष्मपितामहजीने दश दिनतक युद्ध फराधा, **पांच** दिनतक द्वोराचार्यने कीरवीकी सेनाकी रक्ताकी थी, श्रर्थात द्वोराा- (६६) # महासारत श्रादिपर्य # [दूसरा इस है परनाक्टिक । श्रहानि पञ्च द्रोणस्तु रस्त् इनुवाहिनीम् ३०

हाहती गुगुष्ठं हे तु कर्णः परवलाईनः । शहरोऽर्द्धिवसञ्चे व गदायु-हाहतः एरम् । दुष्योधनस्य भीमस्य दिनार्द्धममवस्योः॥३१॥ तस्यैव १५ जनः । इत्योधनस्य भीमस्य दिनार्द्धममवस्योः॥३१॥ तस्यैव १५ जनः । ३२॥ यस्तु शीनकस्रवे ते भारताख्यानस्रस्तमम् । जनः तरस्य नग्स्य व्यास्तिश्चिण् धीमता ॥३३॥ कथितं विस्तरा-र्थञ्च यस्त्रो वीर्च्य महीस्तिताम् । पौष्यं तत्र चपौलोममास्तीकं चादितः स्नृहस् ॥३६॥ विस्त्रार्थण्दाख्यानमनेकसमयान्वितम् । प्रतिपस्तं नर्तः न्नार्वर्षरान्यभित् सोस्तिभः ॥३५॥ ज्ञारमेव वेदित्वयेषु प्रियेषिव

नरें: प्राहें वेंरान्यिय गोलिमिः ।। ३५॥ ज्ञारमेव वेदितस्येषु प्रियेषिव हि जीवितम् । इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्टः सर्वागमेष्ययम् ॥ ३६ ॥ प्रकारित्येदमस्यानं कथा भृषि न विद्यते । आहारमनपाश्चित्यश्ररीयत्ये अप्रतान्यार्थः ॥ ३०॥ तदेतद्वारतं नाम क वेभिस्तूपजीव्यते । उद्य- एकेन्द्रान्युं त्ये दिसकात इदेश्वरः ॥ ३०॥ इतिहासोचमे स्वस्मित्रपिता व्याप्ते पांच दिनतक युद्ध किया था ॥३०॥ शमुसेना केपीडक कर्युने शे दिनतक युद्ध किया था ॥३०॥ शमुसेना केपीडक कर्युने शे दिनतक युद्ध किया था, आधे दिन शस्यने युद्ध कराथा, और वाकी

का द्वादा दिन. सामलेन श्रीर दुर्योधनके चले हुए गदायुद्धमें पूरा हुझ था ॥ २१ ॥ उसही दिन रातको द्वोएके पुत्र श्रयस्थामा, कृतवर्मा सीर कृपाचारने मिलकर निर्मयहो सोती हुई युधिष्ठिरकी सेनाका नाश करा था ॥ ३६ ॥ हे शौक । इस उक्तम महामारतका जो मैंने तुम्हारे दर्शने दिखेन किया है उसको ही भगवान वेद्व्यासके शिष्य युद्धिमान् देशमण्डातमा की कम्मेजय राजाके सर्पयक्षमें वर्णन किया था महाभारत का बहुतका विस्तार है उसमें राजाशोके यशश्रीर पराक्रमका विस्तार से वर्णन करते हुए पाल्य, पोलोम श्रीर श्रास्तीकपूर्व प्रारम्भमें कहे हैं

॥ २२ ॥ २४॥ मोलाधियोंने जैसे पैराण्यप्रहण करा है, तैसेही विद्वानीने विस्वित्त्रमारके प्रथं और प्रनेकों कथाओंसे पूर्ण तथा प्रनेक प्रकारकी भित्रमातिके प्रस्तु ऐसे इस महाभारतकोही स्वीकार कराहे ॥ ३५॥ जाननेयोग्य विषयोंमें जैसे आत्मवान श्रेष्ठ है, और प्रिय वस्तुओंमें जैसे जीवन श्रेष्ठ है, तेसे ब्रह्मकान करनेवाला यह महाभारत सव शास्त्रों में केसे खेर कि सामातिक स्वाप्ता से शास्त्रों से के श्रेष्ठ विनाजाता है॥३६॥ श्राह्मके विना जैसे श्रारीर नहीं उद्दरसकता

जें शेष्ठ गिनाजाता है ॥३६॥ श्राहारके विना जैसे शरीर नहीं ठहरसकता केंद्रे हैं। स्व जगत्में ऐसी कोई कथा नहीं है जो महामारतके श्रश्रीन नहीं॥३आश्रानी वढ़ती चाहने वाला सेवक जैसे साकुलमें उत्पन्न हुए स्यामीकी दिनन्से सेवा करताहै, तैसे हा सम्पूर्ण किव श्रद्धतकाव्यकी रन्ना करते के लिए इस महाभारतका ही श्राश्रय लेते हैं। ॥३८॥ जैसे संसारको ग्रेन्स्य श्रीर व्यक्तका संसारको ग्रेन्स्य श्रीर व्यक्तका

श्रध्याय] # भाषानुवाद सहित # (३७) बुद्धिरत्तमा । स्वरव्यंजनयोः कृत्स्नां लोकवेदाश्रयेव वाक् ॥ ३६ ॥ तस्य प्रशामिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः । सृत्मार्थन्याययुक्तस्य चेवार्थे-र्भृतितस्य च ॥ ४० ॥ भारतस्येतिहासस्य श्र्यतां पर्वसंत्रहः । पर्वानु-क्रमणीप्यं हितीयः पर्वसंब्रहः ॥ ४१ ॥ पीप्यं पीलोगमास्तीकमादिवं शावतारेणम् । ततः सम्भवपर्वोक्तमञ्जतं रोमहर्पणम् ॥ ४२ ॥ दाहो जनगृहस्यात्र है डिम्बं पर्व चोच्यते । ततो वकवधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः ॥ ४३ ॥ ततः स्वयम्बरो देव्याः पाञ्चात्याः पर्व घोच्यते । ज्ञात्र-धर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिङ स्मृतम् ॥ ६४ ॥ विदुरागमनं पर्व राज्य-लाभस्तर्थेव च । प्रज्ञनस्य वने वासः सुभद्राहरणं ततः ॥ ४५ ॥ स्भद्राहरणादृद्धवै ग्रेये हरण्हारिकम् । ततः लाग्डवदाहास्वयं नथव भयदर्शनम् ॥ ४६ ॥ समापर्व ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्व ततः परम्। जरास-म्ध्रवयः पर्व पर्व दिग्विजयं तथा ॥ ४० ॥ पर्व दिग्विजयाद्ध्ये राज-स्थिकम्च्यते । ततक्षार्घाभिहरणं शिशुपालवधस्ततः ॥ ४= ॥ ध्तपर्व में रहती है, तैसेही दितकारिणी बुद्धि इसही सर्वोत्तम इतिहास-यन्थ में रहती है ॥ ३६ ॥ ध्राप्त नम सकल प्रहाके भग्डाररूप विचित्र-पद और पर्ववाले सुदम अर्थऔर न्यायों से भरेहूप तथा वेदोंके अहाँ से शोभायमान इस महाभारत नामक इतिहासके विचित्र पदवाले पर्वेकी अनुक्रमिण्हाको सुनो ॥४०॥ प्रथमपूर्व अनुक्रमिण्हापूर्व है दूसरापूर्व संब्रहपर्व है उसके अनन्तर पीप्य, पीलोग और आस्तीक पर्व हैं ४१ उसके श्रनन्तर श्रादिवंशायतार पर्व है, उसके पीछे, श्रद्भुत श्रीर रोमां बजनक संभवपर्व कहाहै॥४२॥उसके पीछे जतुगृहदाह पर्व है डिम्ब षघपर्व, वकवधपर्व ग्रोर उसके पीछे चैत्ररथ पर्व श्राताहै॥४३॥ फिर जिसमें देवी पांचालीने वर प्राप्त कराहै वह स्वयम्बरपर्व कहाताहै, उसके अनन्तर चत्रियधर्मसे सबको जीतकर द्रीपदीको विवाहा वह षैवाहिकपर्व आताहै॥ ४४॥ उसके अनन्तर विद्वरागमनपर्व और राज्यलाभपर्व श्राताहै उसके श्रनन्तर श्रर्जनवनवासपर्व सुभद्राहरस-पर्व ॥ ४२ ॥ श्रीर उसके श्रमन्तर हरलाहरलपर्व श्राता है, उसके श्रम-न्तर खाएडवदाह नामका पर्व कि जिसमें मयदानवका दर्शन हुआ है।। ४६ ॥ उसके पीछे जो पर्व श्राता है वह सभापर्व कहाता है, उसके भीतर मंत्रपर्व, जरासंधवधपर्व, दिग्विजयपर्व ॥ ४७ ॥ श्रीर दिन्वि जयके अनन्तर राजस्यिकपर्व आताहै, उसके अनन्तर अर्घाभिहरण-

पर्व, शिक्षुपालवधपर्व, ॥ ४= ॥ यूतपर्व और किर श्रनु यूतपर्व श्राता है, उसके पीछे श्रारएयक (वन) पर्वका प्रारम्भ होताहै उसके भीतर

पहिला # महाभारत श्रादिपर्व # (==) हतः प्रोक्तम्बुध्तमतः परम् । तत ब्रारएयकं पर्व किर्मीरवध एव च ॥ ५६ ॥ छाहुन्स्याभिगसनं पर्व होयमतः अरम् । ईश्वरोर्जुनयोर्युद्ध पर्द कैरानसंक्षितस् ॥ ५०॥ इन्द्रलोकाभिगमनं पर्व क्षेयमतः परम् । महोराज्यानमदि च वार्मिकं करुणोद्यम्॥ ५१ ॥ तीर्थयात्रा ततः न्दो हुनुराज्ञस्य धीमतः । जटाखुरचयः पर्दे यस्त्युद्धमतः परम् ५२ निदात करके पुढ़ि पर्व चाजगर ततः। सार्क एडेयस मस्या च पर्वान-न्तरनुच्यते ॥ पूरे ॥ संवादश्च ततः पर्व द्वीपदीसत्यभामयोः । घोष-यात्रा ततः प्रं सृगस्वमोद्भवस्ततः ॥ पृष्ठ ॥ ब्रीहिद्दीणिकमाखयान-मैन्द्रपुन्नं तर्येव द । द्रीपदीहरण् पर्व जयद्रथविमोक्त्यम् ॥ ५५ ॥ पतिव्रताया मोहारम्य लाविज्याध्येवमञ्जूतम्।रामोपाखधानमञ्जेव पर्व क्षेत्रमतः परम् ॥ ५६ ॥ कुर्डलाहरणं पर्व ततः परमिहोच्यते। श्रार-ल्दितः पर्दोद्द राष्टं तदनन्तरम्। पागडवानां प्रवेशश्च समयस्य च पाहरम् ॥ ५०॥ कीचकानां वधः पर्व पर्व गोग्रहण् ततः। श्रामम-क्रिकीट्यध्यर्व द्याता है ॥ ४<u>२ ॥ उसके अनन्तर श्रर्जुनाभिगमननामका</u> एचे जाता है, एसके प्रमन्तर जिसमें महादेव और अर्जुनका युद्ध हुआ है वह कैरात नामका एवं आता है॥५०॥ और उसके पाँछे इन्द्रलोका-भिगमन पर्दे झाता है और उसके झनंतर धार्मिक और करणारससे पूर्ण नहाच्यान पर्न झाता है ११ उसके री छे बुदिसान् कुरुराजकी तीर्थयात्रा का पर्व दाता है उसके भीतर ही जटासुरवधपर्व कहा है, उसके अनन्तर यक्तयुद्धपर्व झाता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे निवातकवर्षीके साथ युद्ध हुआ वह पर्व, उसके अनन्तर आजगरपर्व, और उसके पीछे मार्क्तरङ्ग्यसमस्यापम् सहनेमं जाता है॥५३॥ उसके पीछे द्रौपदी सत्य-श्रासास-वादपर्व और उसके अनंतर घोषयात्रा पर्व आता है उसमें ही मृगस्वमोङ्खपर्व और ब्रीहिट्रौणिकपर्वकी कथा कही है, उसके इनंतर ऍद्रधुस्तका श्राख्यान श्राता है, उसके श्रनंतर द्रौपदी-हरणपर्व झाता है, उसमें जयहथ विमोक्तण है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तथा रासीपांख्यान ग्रीर पतिवता साविशीके महात्म्यरूपी पर्वेकी कथारं जाती हैं॥ ५६ ॥ उसके अनन्तर कुंडलाहरण नामकापर्य कहतेमें जाता है, उसके पीछे जारखेय पर्व हैं जीर उसके अनन्तर दैराद्पर्वका झारम्थ होता है इस पर्वके भीतर पागडवन्न वेशपर्व तथा एक वर्षपर्यन्त गुत रहना अर्थात् तहचना सुसार समय पालन पर्वर्की कया आती है ॥ ५७॥ उसके अनन्तर की चकवध पर्व है. जलके पीछे गोहरण पर्व आता है, उसके पीछे अभिमन्यु और विराद् राजाकी पुनोक्षे विवाहका वैवाहिकपर्व श्राता है, उसके अनन्तर परम प्रजागरस्तथा पर्वे धृतराष्ट्रस्य चिन्तया। पर्वे सानत्सु जातं वे गुछ-मध्यात्मदर्शनम् ॥ ६० ॥ यानसन्धिस्ततः पर्वे शगवधानमेव च । मातलीयमुपाव्यानं चरितं गालवस्य च ॥ ६१ ॥ सावित्रवामदेवन्च षौर योषा ब्यानमें ब च। जामद्रम्यमुवाल्यानं पर्व पोड़शराजिकम् ६२ सभाप्रवेशः रूप्णस्य विद्वतापुत्रशासनम् । उद्योगः सैन्यनिर्याणं र्वे-तोपाल्यानमेव ॥ ६३ ॥ होयं विवादपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः । निर्वाण्य्य ततः पर्वः क्रुरुपार्डबसेनयोः ॥ ६४ ॥ रथातिरथसं ^{स्}या च पृथोंक तदनन्तरम्। उल्कदृतागमनं पर्यामपैविवर्द्धनम् ॥ ६५ ॥ श्रम्बोपाखयानमञ्जेव पर्वा यमतः परम । भीष्माभिषेचनं पर्व तत-श्रद्धत उद्योग पर्वका श्रारम्भ होता है ॥ ५= ॥ उसके भीतर संजय-यान पर्वे श्रातादै॥ ५६॥ उसके श्रनन्तर भ्रतराष्ट्रकी चिन्तासे भरा गुत्रा प्रजागर पर्व श्राताहै, तदनन्तर जिसमें गुहाँ श्रध्यात्मदर्शनका समावेश द्वश्रा है पैसा सनत्सुजात पर्व जानो ॥ ६० ॥ उसके पीहे पानसंधिपर्व, उसके अनन्तर भगवद्यावपर्वश्राता है उसमें मातली का उपाख्यान, गालवका चरित्र, सावित्र, घामदेव और वैएय का श्राख्यान जमद्रभ्तका श्राख्यान, पोडशराज नामका श्राख्यांन ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्णजीका समाप्रवेश, विद्युताकापुत्रको उपदेश, उसका

॥ ६२ ॥ श्रीष्ठण्यांका समाप्रवेश, विद्वलाकापुत्रको उपहेंचा, उत्तका कराहुआ उद्योग, आदि परोंकी कथाएं श्राती हैं उसके पीछे संन्या निर्माण नामका पर्वे हैं, उसके श्राता हैं ॥ ६३ ॥ उसके पोछे संन्या क्षाता है ॥ ६३ ॥ उसके पोछे सोर्ट्या श्रीर महातम कर्णका वादानुवाद पर्वे श्राता है, उसके पीछे सोर्ट्या श्रीर पाएडवीकी सेनाका निर्याण पर्वे हैं, तदनंतर स्थातिस्थ संख्या कि सामका पर्वे हैं। १६॥ १६॥ १५॥ उसके पीछे श्रम्योपाच्यानपर्वे श्राता है, पेसा जानो, उसके श्रमक्ति स्था से स्थानिय स्थान स्थान

न्तर भगवद्गीतापर्व श्राता है, तद्गन्तर भीष्मवधपर्व है, तद्गन्तर द्रोषाचार्यका सेनाधिपतिके पद्मर प्रतिष्टित करनेका जिसमें वर्षक हैप्पेका द्रोषाभिषेकपर्व है,तद्गन्तर संशप्तकवघपर्य है,तद्गन्तर श्रीम-मन्युवध है, तद्ग्तर प्रतिज्ञापर्व श्राता है, उसके श्रनन्तर जयद्रथनघ

दूसरा # महाभारत श्रादिपर्व # (80) श्चाद्भतम्ब्यते ॥ ६६॥ जम्बृख्यस्विनिर्माणं पर्वोक्तं तदनन्तरमः। भमिपूर्व ततः प्रोक्तं द्वीपविस्तारकी र्चनम्॥ ६७ ॥पर्वोक्तं भगवद्गीता पूर्व भीषमवधस्ततः । द्रोणाभिषेचनं पूर्व संशतकवधरततः॥ ६८॥ श्रभिमन्युवधः पर्व प्रतिकापर्व चोच्यते । जयद्रथवधः पर्व घटोत्व--वधस्ततः ॥ ६८ ॥ ततो द्रोणवधः पर्व विक्षेयं लोमहर्पणम् । मोक्तो नारायगास्त्रस्य पूर्वानन्तरम्च्यते ॥ ७०" वर्णपूर्व ततो होयं शत्यपूर्व ततः परम् । हदप्रवेशनं पर्व गदाश्च सतः परम् ॥ ७१ ॥ सारस्वतं ततः पर्व तीर्थव शानुकीर्त्तनम् । अत ऊर्ध्व सुदीभत्स पर्व सौप्तिक-मच्यते ॥ ७२ ॥ ऐपीकं पर्व चोहिष्टमत ऊर्ध्व सदारुगम। जलप्रदानिकं पर्व स्त्रीविलापस्ततः परम्॥ ७३ ॥ श्राद्धपर्व ततो होयं करू लामी धर्वनै-द्विकम् । चार्वाकस्य वधः पर्व रक्तसो ब्रह्मरूपिणः ॥ ७४ ॥ श्राभिपैच-निकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः। प्रविभागो गृहाणाञ्च पर्वोक्तं तदन-न्तरम् ॥ ७५ ॥ शान्तिपर्वं ततोयत्र राज्यमानुशासनम् । श्रापद्धर्म-श्च पर्वोक्तं मोक्तधर्मस्ततः परम् ॥ ७६ ॥ शुक्रप्रश्नाभिगमनं ब्रह्माप्र-श्नानशासनम् । प्राद्वभविधा दुर्वासाःसवादश्चमायया ॥ ७७ ॥ ततः पर्व परिक्षेयमानुशासनिकं परम् । स्वर्गारोहण्यि इचैव ततो पर्व. तदनन्तर घटोत्कचवधपर्व. तदनन्तर रोमांच खडे करनेवाला द्वीर्णवंधपर्व है, तदनन्तर नारायणास्त्रमोत्तपर्व कहनेमें ह्याता है, ६६ ७०॥ तदनन्तर कर्णपर्व का श्रारम्भ होता है, उसके पीछेशल्यपर्व का म्रारम्म होता है, उसके भीतर हुद्यवेशपर्व है, तदनन्तर गदायद्ध-पर्व है ॥ ७१ ॥ उसके अनन्तर सारस्वतपर्व है, उसमें तीथोंका और वंशोंका वर्णन कियागया है, तदनन्तर वीमत्सरससे पर्ण सौप्ति कपव कहा जाताहै॥ ७२॥ तदनन्तर जो श्रतिदारुण है ऐसा ऐपीक पर्व श्राताहै, तदनन्तर जलप्रदानिकपर्व है, उसके पीछे स्त्रीविलापपर्व श्राताहै ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जिसमें मरे हुए कौरवोंकी उत्तरक्रियांका वर्णन है ऐसा श्राद्धपर्व श्राताहै, तदनन्तर जिसमें ब्राह्मणके वेपसे आएंहए चार्वाक राज्ञसका वध करना रूपी जिसमें कथा है ऐसा चार्वाकराज्ञस वधपर्व है, तदनन्तर वृद्धिमान धर्मराजको राज्याभि-षेकपर्व है, तदनन्तर प्रहप्रविभाग नामका पर्व कहा है॥७४॥ ७५॥ तदनन्तर शांतिपर्वका आरम्भ कियाजाताहै. उसके भीतर प्रथम राज-धर्मादुरासन पर्व है तिसके अनन्तर आपद्धर्मपर्व है, तदनन्तर मोज-

धर्मपर्वे है ॥ ७६ ॥ उसमें ग्रुकप्रश्नाभिगमनपर्वे ब्रह्मप्रश्नुशासनपर्वे, दुर्वासा प्रादुर्भावप० श्रीर मायासम्वाद इत्यादि पर्व श्राजाते हें॥ ७॥ तदनन्तर श्रानुशासिकप० श्राताहै उसमें बुद्धिमान भीप्मजीका स्वर्गा-

श्रध्याय भीष्तस्य धीसतः॥ ७=॥ ततोऽर्यमेधिकं पर्व । सर्वपापप्रणाशनम् । श्रनुगीता ततः पर्व ग्रेयमध्यात्मवाचकम् ॥ ७६ ॥ पर्व चाश्रमवासा-सायं पुत्रवर्शनमेय च । नारवागमनं पर्य ततः परमिहोध्यते ॥ =० ॥ मीसलं पर्व चोद्विष्टं ततो घोरं स्दारुणम्। मदाप्रस्थानिकं पर्व स्व-र्गारोहिण्डितं नतः ॥ =१ ॥ हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंकितम विष्णुपर्च शिरोध्यर्था विष्णोः कंसवधस्तधा ॥ दे ॥ भविष्यंपर्वचा ण्युक्तं खिले चैवाइतं महत्। भेन् पर्यशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महा-रत्रेना ॥ =३ ॥ यथायत् सुतपुषेशं लीमदर्पणिमा ततः । उक्तानि मैमि-पारग्ये पर्वाग्यष्टाद्दीय तु ॥ =४ ॥ समासो भारतस्यायमत्रोत्तः पर्व-संग्रहः । पीरयं पीलोममास्तीकमादियंशायतारणम् ॥ = ॥ सम्भयो जतवेशमाल्यं दिजिम्बबक्योर्वधः । तथा धैमरथं देव्याः पाञ्चाल्याध र्युपम्बरः ॥ =६ ॥ ज्ञात्रधर्मेण निर्जित्य ततो चैवाहिकं स्मृतम् ।चिदु-रागमनञ्जीय राज्यलम्भस्तथैश च ॥ =७ ॥ वनवासोऽर्जुनस्यापिसुभ-हाहरणं ततः। हरणाहरणञ्चै देधानं काग्डवस्य च ॥ मम ॥ मयस्य दर्शनक्षीय शादिपर्वेणि कथ्यते । पीप्ये पर्वेणि माहात्म्यमुतहस्योपय-र्शितम्॥ ८१ ॥ पौलोमे भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्त्तितः । ग्रास्तीके राटिशाकप० भी आजाताहै ॥ ७= ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण पापाका नाश-करनेवाला शायवमेधिकप० का शारम्म होताहै, उसमें जात्मकान करानेवाला श्रमुगीताप॰ श्राताहै ॥ ७६॥ उसके पीछे श्राश्रमवासी प॰ का आरम्भ किया जाताहै उसके मध्यमें पुत्रदर्शनप० है, तदनन्तर नारदागमनप० कहा है ॥=०॥ तदनन्तर जिसमें भयानक घर्णन है ऐसा मीसलप० फहाहै, तदनन्तर महाप्रस्थान श्रीरस्वर्गारोहणिकप० श्राता है ॥ 📭 ॥ तयनन्तर हरिवंशप० है जो जिलपुराण कहाता है, इसमें विष्णुय० विष्णुको वाल्यक्रीडाप०, और फंसवधप०का समावेश किया गया है॥।=२॥ उसके पीछे सर्वीमें श्रत्यन्त श्रद्भुत श्रीर वडा सविष्यप० भी थोड़े से भागमें कहा है, इसप्रकार महात्मा व्यासजी ने सी (१००) प० कहे हैं ॥ =३ ॥ उनको सृतके पुत्रने घटारह पर्वामें वाँघकर नैमिपाएयमें सुनियोंके लामने यथावत सुनाया था॥ =४॥ में श्चय तुमले महाभारतके पवाका संग्रह संज्ञेपसे कहताहूँ उसको सुनो, पीव्य, पोलीम, शास्तीक, श्रादिवंशाघतारणप०, संभव,लाद्यागु-हदहन, हिडम्बवध, वकवध, चैत्ररथप०, द्वापदी स्वयम्यरप० ज्ञात्र-धर्मसे विजय करनेके पीछे वैवाद्यिकप० विदुरागमनप०, उनका ही राज्यलाभप०, श्रज् नवनवासप०, सुभद्राहरणप० हरलाहरलप० तथा खारहववनदाहप०, श्रीर मयदानवदर्शनप०, इतने पर्व श्रादिपर्व में कहे हैं पौष्यप० में उत्तंकका माहात्म्य वर्णन किया है ॥ =५

.

रीहोसर०में मृतुर्वासका विस्तार कहा है,आस्तीकप**ंगे सव नागोंकी** क्षका तथा गरुँउकी उत्पत्ति, सनुद्रमधन, उद्येश्ववा नामक घोड़ेका इन्स, भीर सन्तमें जनमेजय राजाके वर्णयसमें कहेहूर महात्मा भर-तरंदी राजागीका चरिर और वृत्तान्त कहा है, संभवपर्य में बहुतसे हुपतियोका प्रवेको चीतियोके जन्म यहा है ॥ ६०—६२ ॥उनही वर्ली हीर पराक्रमी तथा घटवीर राजवंशियोंका वंश और महामुनि छप्ण-हेराचनकीका जन्म आदि कहा है, श्रंशावतारण नामके पर्व में देव. ्रि महावतराही दैत्य, दानद, यत्त, नाग,सर्प, गंधर्य, पत्ती तथा बहुतसे प्राणियोकी उत्पति कही है । तपस्वी करवनामक महर्पिके आश्रममें दुप्यन्त तथा राजुन्तकासे भरत नामके एक कुमारका जनम हुआथा, जिसके नामले उसका कुल भारतके नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ है जलका करिक भी इसमें वर्णन करा है, और इसपर्वमें शन्तनुके घर रंगाजीसे सहात्मा यसुग्रीका फिर जन्म श्रीर उनकास्वर्ण जाना दर्गन किया है ॥ ६३—६७ ॥ वसुर्घोके तेजके स्रंशभृत भीषापितामह का जनम, उनकी राज्यसे निवृत्ति, ब्रह्मचर्यवतका पालन, प्रतिका-पालन, चित्रांगदकी रक्षा, चित्रांगदका मरण तदनन्तर उसके छोटे भाईनी रत्ता, विचित्रवीर्यको राज्य देकर राज्याभिषेक, श्रीर माग्डव्यके शापसे महत्यजातिमें धर्मराज (यम) की उत्पत्ति, तथा श्रीकृष्ण् है-पायतके बरदानसे भृतराष्ट्र पाएडु तथा पांची पाएडवीकी उत्पक्ति

(£3) अभाषानुबाद सहित राष्ट्रस्य पाराडोश्च पाराडवानाञ्च सम्भवः ॥ १०१ ॥ वाराह्यावतयात्रायां मन्त्री दर्ग्याधनस्य च । कटस्य धार्त्तराष्ट्रेण प्रेयणं पोगडवान प्रति ॥ १०२ ॥ हितोपटेशस्य पथि धर्मराजस्य धीमनः । विदरेण फतो यद्य हितार्थं म्लेच्छमापया ॥ १०३ ॥ विट्रास्य च दाक्येन सरहोपक्रम-क्षियाः। निपाद्याः पञ्चपुत्रायाः सुप्ताया जनुवेश्मनि ॥ १०४ ॥ पुरोचन-स्य चात्रेव वहनं संप्रकीतिंतम् । पाग्डवानां वने घोरं दिडिम्बायाख दर्शनम् ॥ १०५ ॥ तत्रैव च हिडिम्बस्य वधो भीमान्महायलात् । घटो-त्कचस्य चोत्पत्तिरप्रेय परिक्रीर्त्तिता ॥ १०६ ॥ महर्पेर्दर्शनश्चे च व्यास-स्यामिततेज्ञसः । तदाप्रयैकचकायां ब्राप्तग्रस्य निवेशने ॥ १०७ ॥ छ-शातचर्य्या वासो यत्र तेषां प्रकीर्त्तितः । वकस्य निधने चेव नागरा-णाञ्च विस्मयः ॥ १०= ॥ सम्भवश्चेव कृष्णाया भ्रष्टवम्नस्य चैव हि । ब्राह्मणात्समुपश्रत्य व्यासचायग्रज्ञोदिताः ॥ १०६ ॥ द्रोपदी प्रार्थय-न्तस्ते स्वयम्बरिष्टलया । पाञ्चालानभितो जग्मर्यत्र कीव्हलान्विताः ॥ ११० ॥ झहारपर्यं निर्जित्य गङ्गाकुलेऽर्जुनस्तव् । सर्व्यं कृत्वा तत-फही है ॥६=-१०१॥ लाज्ञा-गृहदाहप०में दुर्योधनसे हुपे रहनेके विचार से पाएडवीका यारणावतको जाना, तहां दुर्योधनका पुरुषोको भेजना ।१०२।श्रीर बुद्धिमान् युधिष्टिरको उनके हितके लिए विदुरका कराहुश्रा

म्लेच्छभाषामें उपदेश १०३ तथा विद्वरजीके कहनेसे सुरंग खुदवानेका आरम्भ,पांच पुत्रीके साथ सोती हुई एक भीलकी खीका और पुरोचनका लाजागृहमें जल कर मरजाना इत्यादि विषय वर्णन करे हैं हिडम्ब षभप०में घोरवनमें पाएडव छोर हिटम्याका दर्शन ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ महावलवान् भीमसेनकृत हिडम्ब राज्ञसका वध श्रीर घटोत्कचका जन्म वर्णन करा है॥१०६॥तथा महातेजस्वी महर्षि ज्यासका पारुडवी को दर्शन होना भी वर्णन करा है। तदनन्तर बकबधप में व्यासजीके सिखानेसेही पकाचकानगरीमें ब्राह्मणुके घर पाग्डवी का गप्तकपसे रहना वर्णन करा है। यहाँही बकासुरका बध और उससे लोगोंके मनमें उत्पन्नहम्रा चंमत्कार वर्षित है ॥ १०७॥ १०=॥ द्रौपदीका जन्म, धृष्ट्यम्नकी उत्पत्ति, ब्राह्मणींसे स्वयम्बरकी वार्ता सनकर और ब्यासजीके कहनेसे द्रौपदीको विवाहनेकी इच्छाकरनेवाले पाँगडवींका स्वयम्बरमें जानेके निमित्त, श्राश्चर्यसे पांचालदेशमें जाना इत्यादि विषय वर्णन कियेहैं॥१०८॥११०॥चैत्ररथवधप०में ग्रर्जन ने गंगातरपर अंगारपर्ण नामक गंधर्वको जीतकर उसके साथ मित्रता की श्रीर उससेही तापत्य. वासिष्ठ तथा श्रीर्वनामक उत्तम श्राख्यानीको

सनने श्रादिकी कथाएं वर्णन करी हैं. तदनन्तर द्वौपदी स्वयम्बरप०

महाभारत श्रादिपर्व # दूसरा (88) रुतेन तस्मादेव च ग्रुश्र्वे ॥ १११ ॥ तापत्यमथ वाशिष्टमीर्वं चाखमा-नमुत्तमम् । भ्रातुभिः सहितः सर्वैः पाञ्चालानभितो यथौ ॥ ११२ ॥ पाञ्चालनगरे चापि ताद्यं भित्वा धनञ्जयः । द्रौपदी तब्धवानञ मध्ये सर्वमहीकिताम् ॥ ११३ ॥ भीमसेनार्जुनी यत्र संरब्धान् पृथि-बीपतीन । शस्यक्षणीं च तरसा जितवन्ती महामधे ॥ ११४ ॥ हप्ना तयोश्च तद्वीर्यमप्रमेयममानुषम् । शङ्कमानौ पाएउवास्तान् रामञ्च ष्णी महामती ॥ ११९ ॥ जन्मतुस्तैः समागन्तुं शालाञ्भागीयवेश्मनि । पञ्चानामेकपलीत्वे विमर्षो प्रपदस्य च ॥ ११६ ॥ पञ्चेन्द्राणासपा-खवानमञ्ज्ञेवावभूतमुख्यते । द्रीपद्या देवविहितो विवाहव्याप्यमानुषः ॥ ११७॥ ज्ञास्त्र धार्त्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाएडवान् प्रति । विदुरस्य च सम्प्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च ॥ ११= ॥ खाएडवप्रस्थवासश्च तथा रा-ज्यार्अशासनम् । नारदस्याशया चैव द्रीपद्याः समयकिया ॥ ११८ ॥ सुन्दोपसुन्दयोस्तद्भदाखधानं परिक्रीतितम् । अनन्तरञ्च द्रौपद्या सहासीनं यधिष्ठिरम् ॥ १२० ॥ अनुप्रविश्य विप्रार्थे फाल्मनो गृह्य श्राताहै उसमें सब भाइयोंके साथ श्रर्जुन पांचाल देशमें गए हैं १११ ॥११२॥ श्रीर तहाँ वहुतसे राजाश्रीके मध्यमें मत्स्यवेध करके श्रर्जुन ने दौपदीको प्राप्त किया वह कथा तथा इन महावलवान भीमस्रोन श्रीर श्रर्जुनने कोधमें भरेहुएराजाश्रीको तथा शस्य श्रीर कर्ण को युद्ध में

के घरमें उहरेहुए पागडवों के साथ मिलने को खाना तथा पाँच जाने है साथ अपनी एक कन्याके विवाह के समये प्रमें दूपदराजका विचाह में अपनी एक कन्याके विवाह के समये प्रमें दूपदराजका विचाह में अपनी एक क्यां के विवाह हतनी कथाएँ खाती हैं॥११-११आतदननतर विदुरानमन पर्य है उसमें राजा खुतराष्ट्रके पुत्रोंका विदुरज्ञीको पागडवों के पास में जाना, विदुरानों का स्थाप क्यां के स्थाप में स्थाप मार्ग प्राथम के स्थाप के स्थाप के स्थाप मार्ग प्राथम मार्ग प्राथम के स्थाप के स्थाप के स्थाप मार्ग प्राथम मार्ग प्राथम के स्थाप के स्थाप

जीतिसियां यह कथाएं हैं ॥ १२३ ॥ १२४॥ तदनन्तर वैवाहिकप० ब्राता है उसमें दोनोंका अमानुषिक अनन्त पराक्रम देखकर यह पाएउच हैं ऐसी ग्रंकासे वडे बुद्धिमान् श्रीकृष्ण तथा वसदेवजीका कुम्हार

सङ्गः॥ १२२ ॥ पुग्यतीर्धानुसंयानं वसूवाहनजनम च । तेत्रीय मोस-यामास पञ्च सोऽन्तरसः ग्रभाः ॥ १२३ ॥ शापाद्वाद्वत्वमापना ब्राहा-णस्य तपस्थिनः । प्रभासतीर्थे पार्थेन कृष्णस्य च समानमः ॥ १२४॥ हारकार्या सभदो च कामयानेन कामिनी । यासदेवस्यानमते प्राप्ता चीव किरीटना ॥ १२५ ॥ पूर्तात्वा हरणुं प्राप्ते कृष्णे देविकनन्दने । श्रमिमन्योः सभद्रायां जनगः चोत्तमतेजसः ॥ १२६ ॥ द्वीपधारतन-वानाञ्च सम्पर्वोऽन प्रकाशितः। विद्वारार्थञ्च गतयोः कृष्णपोर्धमृता-मन्नु॥१२०॥ सम्प्रातिश्रक्षञ्जापोः स्वात्ववस्य च दाहनम्। मयस्य मोनोऽचलनाङ्गकरस्य च मोन्नुसम्। १२=॥ महर्षेमस्यपालस्य शा-मोक्तो ज्यलनाव्ह जहुन्य च मोक्तगुम् ॥ १२= ॥ महर्षेमीन्द्रपालस्य शा-क्षुंचां तनयसम्भवः ॥ १२६ ॥ इत्येतदादिपयांकां प्रथमम्बगुविस्तरम। श्राच्यायानां शते हे त संख्याते परमर्पिणा । सप्तविशतिरध्याया च्या-से नोत्तमतेजसा ॥ १३० ॥ अष्टी श्लोकसङ्ग्लाणि अष्टी श्लोकशतानि च । स्होकाश्च चतुरशीतिम्निनोक्का महात्मना ॥ १३१ ॥ हितीयन्त् प्रार्जनका नियम तोड़गेफे फारण धनको जाना धौर इस बनवासमें उलवी नामकी एक नागकत्याके साथ मार्गमें समागम होगार २०-१२२ इसके उपरान्त पवित्रतीथींमें अर्ज नका जाना, फिर बस बाहनका जन्म होना श्रीर एक ब्राह्मणके शापसे मच्छी होकर उत्पन्न हुई पांच श्रन्स रात्री का शर्ज नरूत मोच, प्रभास नीर्थमें अर्ज नका श्रीरूप्णजी के साथ मिलना इस्योदि कथाएं वर्णित हैं ॥१२३ ॥ १२४॥ फिर छुभ-द्राहरणपर्य प्राता है। उसमें श्रीकृष्ण भगवान् की संमतिसे सुभद्रा के उत्तर धासक हुए धर्मनका होरिकाले सुमदाका हरण फरना बर्जन किया है ॥ १२५ ॥ तर्नन्तर एरणहारिकपर्व श्राता है, उसमें र्ष् श्रीहण्णको श्रद्धमतिसे श्रर्जुनने सुमद्रोके साथ विवाद किया श्रीर सुभद्रासे महापराक्षमी और तेजस्वी ग्रभियन्यकी उत्पत्ति तथा द्रीप-योको पुत्रोंका जन्म इत्यादि कथाये श्रांती हैं ॥ १२६ ॥ सदनन्तर छा-एडवयनदाहपर्व श्राता है—उसमें श्रीकृष्णजी श्रीर श्रज्ञेन विहार करने को गमुनाके किनारेके प्रदेशोंमें गए, चक्र श्रीर धनुषदी प्राप्ति खाएडवचनका दाह, जलती हुई दावाग्निमेंसे मयदानव और एक नागकी रज्ञा करना, श्रौर महर्षि संद्रपालकी शार्क्षीनामक पर्चीसे उत्पत्ति

कही है। इस प्रकार बहुत से निस्तार वाला खादिपर्व प्रथम कहा है १२= ॥१२६॥ इस छादिपर्वमें महातेजस्वो परमर्थि भगवान व्यास्काने दोस्तो कार्ताहैस झध्याय रचे हैं॥ १३०॥ तथा इन महास्मा मुनिने ही इस-में फ़ाठहजार झाठसी चौरासी क्योकोंको रचना की है॥ १३१॥

प्रथ्याय] श्रमहाभारत आदिपर्व * (४५)
चाजुधम् । गोज्ञयित्वा गृहे गत्वा विद्यार्थ एतिमध्यः ॥ १२१॥समर्थ पालयन्धीरो वनं यद्य जगाम ए । पार्थस्य वनवासे च उल्लुप्या पि

वेद्न्दाकजीने सभापर्वमें वर्णन करा है॥१४०॥हे द्विजोत्तमीं।इस सभा--एर्स्से अस्टी अध्याय हैं तथा दो हजार पांच सौ भ्यारह श्रोक हैं १४१ ।

(80) श्रध्याय] * भाषानुवाद सहित * रहोकाश्चेकादश जेयाः पर्वेणयस्मिन् द्विजोत्तमाः । श्रतः परं तृतीयन्तु रायमारत्यकं महत् ॥ १४२ ॥ वनवासं प्रयातेषु पाग्डवेषु महात्मसु । पौरानुगमनञ्जे'व धर्मपुषस्य धीमतः ॥ २४३॥ श्रत्रौपधीनाञ्च रुते पार्वंदेन महात्मना । द्विजानां भरणार्थक्ष कृतमाराधनं रघेः ॥१४४॥ भौम्योपदेशात्तिग्मांशुप्रसादादन्नसम्भयः । दितञ्च ब्र्चतः सत्तुः परि त्यागोऽस्विकासुतात्॥ १४५ ॥ त्यक्तस्य पागडपुत्राणां समीपगमनं तथा । पुनरागमनञ्जेष धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १४६ ॥ कर्णशेत्साह-नाचैव धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । चनस्थान् पागडवान् हन्तुं मन्त्रो दुर्ग्यो-धनस्य च ॥ १४७ ॥ तं दुष्टभावं विषाय व्यासस्यागमनं इतम् । नि-र्व्याणुप्रतिषेत्रह्य सुरभ्याख्यानमेव च ॥ १४८ ॥ मैत्रेयागेमनं चात्र राज्ञश्चेवानुशासनम् । शापोत्सर्गध्य तेनैव राग्नो दुर्क्योधनस्य च १४६ किर्मारस्य वधश्रात्र भीमसेनेन संयुगे । तृष्णीनामागमश्रात्र पाञ्चा-लानाञ्च सर्वशः ॥ १५० ॥ श्रुत्वा शकुनिना यते निकृत्या निर्जितांश्च तान्। कुद्धस्यानुप्रशमनं हरेध्येय किरीटिना ॥ १५१ ॥ परिदेवनञ्च पाञ्चाल्या वासुदेवस्य सन्निधी । श्राश्वासनञ्च कृष्णेन दुःखार्त्ताचाः ह । तदनन्तर श्रारएयक नामक बड़े पर्यका प्रारम्भ होता है ॥ १४२॥ महात्मा पाग्डव जब बनवासको गए तब धर्मकेषुत्र विद्वान् धर्मराज के पीछे नगरवासी गए, ब्राह्मर्गीके भरण पोपणके लिए द्यन तथा श्रीपधीके निमित्त महात्मा पाएडवीका सूर्याराधन,करना॥१४३॥१४४॥ धीम्यऋषिके कहनेके श्रनुसार सूर्यकी श्राराधना करने पर सूर्यके प्रसादसे ग्रन्नके ग्रह्मय पात्रकी प्राप्ति होना, सर्वदा स्वाभीके हित्रके लिए वोलनेवाले विदुरजीको धृतराष्ट्रका त्यागना, तद्गन्तर विदुरका पा-ग्डुपुत्रोंके पास जाना फिर ।धृतराष्ट्रकी श्राधासे विदुर का हस्तिना-पुरमें श्राना ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ कर्णकी उत्तेजनासे दुर्मति धृतराष्टके पुत्र हुर्योधनका बनमें रहते हुए पाएडवाँके मारडालनेका विचार करना॥१४७॥उसके द्वप्र श्रभिप्रायको जानकर व्यासजीका तत्काल तहां श्रानाश्रीरपेसा करनेसे दुर्योधनको रोकना, सुरभिकी कथा॥ १८=॥ मैंत्रेयका श्रावगमन, उनका धृतराएको उपदेश देना, राजा दुर्योधनको उनकाही शाप देना, युद्धमें भीमसनका विभीरको मारना यादवी और पाञ्चालीका पांगडवीके पास श्राना ॥ १४६ ॥ १५० ॥ शकुनिने जुएसे कपटके जुपसे पाएडवीका पराजय करा ऐसा सुनकर श्रीकृष्णका कोध करना और अर्जुनके द्वाराही उनके कोधका शान्त होना ॥ १५१॥ श्रीकृष्णजीके सामने द्रौपदीका रोना, श्रीकृष्णजीका उस दुःखित श्रव-लाको श्रारवासन देना तथा महर्षिका कहा हुश्रा सौभवधका श्राख्यान,

महाभारत श्रादिपर्व * (오=) प्रकीर्त्तितम् ॥ १५२ ॥ तथा सौभवधाख्यानमञ्जैदोक्तं महर्षिणा । स्रभ-द्वायाः सपुत्रायाः कृष्णेन द्वारका पुरीम् ॥ १५३ ॥ नयनं द्रौपदेयाना भूष्टयुक्तेन चव हि । प्रवेशः पाएडवेयानां रक्ये द्वैतवने ततः ॥ १५४॥ धर्मराजस्य चानैव संवादः कृष्णया सह । संवादश्च तथा राज्ञा भी-मस्यापि प्रकीर्त्तितः॥ १५५ ॥ समीपं पार्ड्पुत्रार्णा व्यासस्यागमनं तथा। प्रतिस्मत्याथ विद्याया दानं राज्ञो महर्षिणा ॥ १५६॥ गमनं काम्बद्धे चापि व्यासे प्रतिगते ततः । श्रस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामि-ततेजसः॥ १५७॥ महादेवेन युद्धश्च किरातवपुषा सह । दर्शनं लोक-पालानामस्बद्राप्तिस्तथैव च ॥ १५= ॥ महेन्द्रलोकगमनमस्त्रार्धे च किरीटिनेः । यत्र चिन्ता समुत्यका धृतराष्ट्रस्य भूयकी ॥ १५६ ॥ दर्शनं वृहदश्वस्य महर्पेर्भावितात्मनः। युधिष्ठिरस्य चार्त्तस्य व्यसनं परिदेवनम् ॥ १६० ॥ नलोपाख्यानमञ्जेव धर्मिष्ठं करुणोदयम् । दमयन्त्याः स्थितिर्यंत्र नलस्य चरितं तथा॥१६१॥तथाचहृदयप्राप्तिस्त-स्मादेवमहर्पितः। लोमशस्यागमस्तत्र स्वर्गात् पारहुसुतान् प्रति।१६२। वनवासगतानाञ्च पारडवानां महात्मनाम् । स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता सुभद्राका पूर्वीसहित श्रीकृष्णुके साथ हारिकाकोजाना तथा घष्ट्यस्न के साथ दौपदाके पुत्रोंका पांचालको जाना तदनन्तर पाएँडवीका रम्य हैतवनमें प्रवेश, तहांही द्रौपदीके साथ युधिष्टिरका सम्बाद और भीमसेनका युधिष्टिरके साथ सम्वाद वर्णन करा है १५२-१५५ महर्षिव्यासजीका पाएडवोंके पांस आना तहां व्यासजीका राजा युधिष्टिएको प्रतिस्मृति नामकी मंत्रविद्या सिखाना ॥ १५६॥ व्यास-जीके चले जानेपर पाएडवोका काम्यकवनमें जाना तहांसे परस तेज-स्वी श्रर्जनका श्रस्त प्राप्त करनेफे लिये जाना, वहां किरातके रूपमें श्राप हए महादेवजीके लाथ अर्जुनका युद्ध और दिव्य अख्नकी प्राप्ति होना तदनन्तर छर्जुनको लोकपालोका दर्शन और छर्खोकी प्राप्ति होना (वर्णन किया है) ॥ १५७ ॥ १५= ॥ और ऋलों को प्राप्त करनेके लिए अर्जुन का इंद्रलोकमें जाना, उससे धृतराएको वडी चिता होना ॥ १५६ ॥ तदनन्तर शुद्धात्मा महर्षि बृहप्रवका पांडवी को दर्शन होना, उदास हुए युधिष्ठिर का दुःख तथा विलाप, उनको शोक तथा दुःखसे छुडाने के लिए ऋषिका करुणा रसपूर्ण धर्मवोधक नलाख्यान कहना, जिसमें दमयन्तीका धैर्य तथा नलका चरित्र श्राताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥ श्रीर पांडवोंको उनही महर्षि से यूतविद्याके रहस्यका लाभ होना, खर्गसे लोमश ऋषिका पांडवींके समीप पंचारना ॥ १६२ ॥ वनवासमें फिरते हुए पांडवींसे लोमश

श्रध्याय] # भाषानुवाद सहित श (38) लोमशेनार्जनस्य वै ॥ १६३ ॥ सन्देशादर्ज्नस्यात्र तीर्थाभिगमनिकया तीर्थानाञ्च फलवाप्तिः प्रयत्वञ्चापि कीर्तितम् ॥ १६४ ॥ पुलस्त्यनी-र्धयात्रा च नारदेन महिष्णा । तीर्थयात्रा च तत्रेव पांत्रवानां महात्म-नाम ॥ १६५ ॥ कर्णस्य परिमोद्योऽत्र कुंडलाभ्यां पुरन्दरात् । नथा यहविभविश्व गयस्यात्र प्रक्षीतिता ॥ १६६ ॥ श्रागस्त्यमपि चाष्यानं यत्र वातापिभन्नणम् । लोपामद्राभिगमनमपत्यार्थमपेस्तथा ॥ १६७॥ व्याप्यशहस्य चरितं कीमारब्रहाचारिणः । जामवस्यस्य रामस्य चरितं भरिनेजसः॥ १६= ॥ कार्त्तवीर्श्यवधो यत्र हैहयानाञ्च वर्ष्यते। प्रभा-सतीर्थे पांडवानां बुष्णिभिक्ष समागमः ॥ १६८ ॥ सीकन्यमपि चा-स्यानं चयवतो यत्र भागवः । शर्यातियहो नासत्यौ यतवान सोमर्धाः तिनी ॥ १७० ॥ ताभ्याञ्च यत्र स मुनिर्योधनं प्रतिपादितः । मान्धा-तुक्षाप्यपाल्यानं राहोऽत्रेव प्रकीर्त्तितम् ॥ १७१ ॥ जन्तृपोरयानम-त्रैय यम पुत्रेण सोमकः । पुत्रार्थमयजदाजा लेभे पुत्रशतञ्च सः १७२ ततः श्येनकंपोतीयमपाष्यानमञ्जनम् । इन्द्राञ्ची यत्र धर्मश्चाप्यन्ति-ऋषिका खर्गमें श्रखविद्या सीखने के लिए शर्ज न के रहनेका सब समा चार फहना ॥१६३ ॥ श्रीर श्रर्जुनका संदेशा पानके श्रनन्तर पाँडवीका तीयोंमें फिरना, तीथोंमें यात्रा करनेसे प्रयक्तको प्राप्ति तथातीथों के पुरायका माहातम्य कहा है ॥ १६४ ॥ तदनन्तर नारवजीने पुलस्त्य तीर्थकी यात्रा करनेको कहा तव महात्मा पांडवोंने उधर ही तीर्थयात्रा करी ॥१६५॥ तहाँ इन्द्रने राजाकर्णके कंडल लिये यह, तथा गयराजाके यहकी वडीभारी विभित्त वर्णन फरी है ॥ १६६ ॥ तदनन्तर श्रगस्त्य की कथा है जिसमें वातापि नामवाले राजसको भन्नण करनेकी कथा है, तथा पुत्रप्राप्तिके लिए ऋपिके लोपामुद्राके पास गमनकी कथाहै, तदनन्तर वालकपने से ही ब्रह्मचर्य्य ब्रत्वाले ऋण्यशुद्धका चरित्र है फिर जमद्गिक पराक्रमी पुत्र परग्ररामजीका चरित्र है, जिसमें कार्त चीर्यकाश्रीर हैहय राजाश्रीका वध भी वर्णन कराहै।तदनन्तर प्रभास चेत्रमें यादवीके साथ पांडराजके पत्रीका मिलाप वर्णन कराहें१६७-१६८ तदनन्तर सुकन्याकी कथा है, जिसमें भुगुके पुत्र च्यवन, जिन्होंने शर्या तिराजाके यहमें अध्वनीक्रमारीको सोम पिलाया था और उससे प्रसन्त ोकर अधिवनीक्रमारीने ऋषिको यौवन दिया था उसकी कथा है। इसमें ही राजा मांधाता की कथा कही है॥ १७०॥ १७१॥ श्रीर इसमें ही सोमकराजाने पुत्रीके लिए एक पुत्रका वलिदान देकर

एकके वदले सी पुत्र प्राप्तकिये थे ऐसी कथा कही है ॥ १७२ ॥ तदन-

 महाभारत स्नादिपर्व * (ño) दूसरा 🖟 हालब्बिहुर्वि सूदः॥ १७३॥ घ्यटावकीयमञैव विवादो यत्र वन्दिना प्रदावरास्य विप्रयेजनकस्याध्वरेऽभवत् ॥ १७४॥ नैयायिकानां सु-ख्येत बन्नगुरुयात्मज्ञेन च । पराजितो यत्र वन्दी विवादेन महात्मना ॥ १९६ ॥ विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं सम्धवान्यिः । यवश्रीतस्य मारुवानं रेश्यन्य च मुहारमनः। गन्धमादनयात्रा च वासी नाराय-्राज्ये ॥ १७६ ॥ नियुक्तो भीमसेनश्च द्रौपद्या गम्धमादने । वजन् पधि महादाहुई प्रवान् पवनात्मजम् ॥ १०७ ॥ कव्लीपण्डमध्यस्थं हुनूमन्तं महावलम् । यद सौगन्धिकार्थेऽसौनलिनीं तामधर्पयत्१७= यदास्य युद्धमञ्चत् सुमहद्राज्ञसेः सह । यत्तेश्चेव महावीय्यै मीणमत प्रदुर्खस्तद्वः॥१७६॥ जटासुरस्य च वधो राज्ञसस्य वृकोदरात्। बुर्रेज्वंको राजर्वस्ततोऽभिगमनं स्मृतम् ॥ १=० ॥ श्रार्ष्टिपेखाश्रमे चैपां गमनं दान एव न । प्रोत्साहनश्च पाञ्चाल्या भीमस्यात्र महात्मनः ॥ १=१॥ केतालारोहणं प्रोक्तं यत्र यक्तेर्यलोत्कटैः । युद्धमासीन्महा-दोतं निकत्त्रमुक्तैः सह ॥ १=२ ॥ अवाष्य दिव्यान्यस्रांणि गुर्वधै जिलमें राजा दिविको इन्द्र, श्रवि श्रौर धर्मने परीक्वाकीथी वह कथा है ॥ १७३ ॥ तदनन्तर छष्टायककी कथा स्नाती है जिसमें न्यायशास्त्रि-यों में प्रधान दक्कृके पुत्र वंदीके साथ जनकराजाके यहमें विप्रिप घाटायकका जन्दाद तथा महात्मा घ्रष्टावकका वंदीको जीतना तथा सुनुद्रमें डाहोतुर वितासे साथ प्रष्टाबकका पुनः मिलाप इत्यादि कथाएं हैं, तदनन्तर यहकीत और महात्मा रेभ्यकी कथा कही है तदनन्तर पोराइदोंका र्यथलावनकी यात्राको जाना और तदनन्तर नारायख नामके बाधमने बनका रहना वर्णन करा है॥१७४-१७६॥तदनन्तर है। उन्हों करने से समल लेनेके लिए गंधमादन पर भीमसेनका जाना, मार्गमें जातेहर जहलोबनमें महावलवान पवनपुत्र हनुमान्जीका महा मृज शीमसेनके लोध समागम होनेकी कथा है, फिर सुगंधयुक्त कमली के लिए भीमलेनका कमलोंसे भरेडुए सरोवरमें नहानेको उतरना. जिससे उसमेंके बहुतसे कमलौके नष्ट होनेके कारण जिनमें मणि-मान खब्द या घेढे यव और रावसींके साथ भीमसेनका महायदा होनेकी कथा है ॥१०७-१७८॥ तदनन्तर भीमसेनके हाथसे जटासर नाम-वाले बडेभारी राजसका वध. और तदनन्तर राजिं वषपर्वाका **शागमन फहा है तदनन्तर आर्थिबेण नामक आश्रममें पाएडवीका गमन** तथा तहां रहना और द्रौपदीके महात्मा भीमसेनको उत्साहित करके की कथा है।।१८०॥१८१॥ तदनन्तर भीमसेनका कैलासपर्वतपर चढना श्रीर तहां दलले उन्मल हुए मिल्मान् श्रादि यन्तोंके साथ भीमसेनको राष्य्य यद्ध करना पडा ॥१=२॥वडे भाईके लिये दिव्य श्रस्त्रमिलनेके श्रन-

श्रध्याय] # भाषानुवाद चिहत # (५१)
सन्यसाचिता। निवातकवर्चे इं हिरण्यपुर्वासिमिः ॥ १=३॥ निवातकवर्चे वेर्रहितवेः सुरगुन्तिः। पौलागः कालकेयेश्च यत्र युद्धं
क्रिरीटिनः॥ १=४॥ वधश्चेषां समाच्यातो रातस्नेनेव श्रीमता। श्रस्तसन्दर्शतारम्भो धर्मराजस्य सन्निष्धे ॥ १=५॥ पार्थस्य प्रतिषेधश्च
नारहेन सर्रिष्णा। पुनश्चेवावरोत्त्रां पौड्नो गन्यमादनात् ॥ १=६॥

की कथा है, महाबोर निवातकवच नामक दानवाँ तथा देवोंक शहु पोलोम और कालिकेगेंके साथ अर्जुनका युद्ध करना नथा उसमें उनका मारा जाना, बुद्धिशाली अर्जुनके राजा बुधिष्टिरसे निवेदन करा वह कथा और तदनन्तर पुधिष्टिरको अपने दिव्य अर्कों के हिन् जानेके आरंभकी कथा आती है ॥१८६—१८५॥ परेता करते हुए देविर्य नारेके आरंभकी कथा आती है ॥१८६—१८५॥ परेता करते हुए देविर्य नारेके आरंभकी कथा आती है ॥१८६—१८५॥ परेता का नेपमादन पर्वतसे लौटना॥ १८६॥ लौटते समय एक वड़े वनमें पर्वतकी समान शरीरवाला महासर्व, भीमसेनको निगल गया परन्तु युधिष्टिरसे वहुत सार्वाके उत्तर पानेपर उसने भीमसेनको होड़ दिया यह कथा आती है। तदनन्तर महास्मा पाएडय फिर काम्यकनमें आए वह कथा है॥ १८०॥ १८८॥ ॥॥ अर्को क्षेत्र काम्यकनमें अर्थ पाएडुराजके पुनौसे मिलनेके लिए भगवान और्छ-एजजी उनके पास आर यह भी उसमेंही विश्वत है॥ १८॥ तदनन्तर महास्मा पाएडय मिलके स्वर्य मुनिके साथ

समागमकी कथा त्राती है, उसमें उन महर्षिकी कही हुई सम्पूर्ण कथा है । १६० ॥ त्रीर महात्मा ताह्य है जिनमें वेन राजाके पुत्रकी कथा है ॥ १६० ॥ त्रीर महात्मा ताह्य क्षित्रका सरस्वतीके साथ सम्वाद है, तदनन्तर मत्स्यका बुत्तान्त भी उसमें हो वर्षित है श्रीर भी यहुतकी मार्करडेयके साथ वेठतेमें हुई पुरार्षोकी कथाश्रोंका वर्षान है, जिनमें इन्द्रयुम्नकी कथा धुंसुमारका बुत्तान्त ॥ १६१॥ १६२ ॥ पतिव्रताका बुत्तान्त तथा श्रांगरसका उपा-

* महाभारत श्रादिपर्च * [दूसरा

(42)

होपद्याः कीर्कितव्यात्र संवादः सत्यभामया ॥ १.६३ ॥ पुनर्हेतवनश्चे व पायड्दाः समुपानताः । योपयात्रा च गन्धवेर्यत्र वद्यः सुयोधनः ॥ १.६४ ॥ द्वियमाणस्तु मन्दारमा मोक्तितेऽसी किरीटिना । धर्मराज-रच चार्षेत्र मृगस्यमिनदर्शनम् ॥ १.६५ ॥ काम्यके काननश्चेष्ठे पुनर्गम-तमुच्यते । सीहिहौषिकमाख्यानमधैव वहुविस्तरम् ॥ १.६६ ॥ दुर्वा-तस्त्रेत्र परिकीर्त्तितम् । जयद्वयेनापहारी द्वाराध्यानस्त्रेत्र परिकीर्तितम् । जयद्वयेनापहारी द्वाराध्यानस्त्रेत्र परिकीर्तितम् । जयद्वयेनापहारी द्वाराध्यान्ध्यान्ध्यान्यस्त्र । सहस्वत्र ॥ १.६६ ॥ वन्ने । चन्ने पर्वाराम्यस्त्र । सहस्वत्र परिकीर्तितम् । स्त्र । स्त्र । स्त्र । सहस्वत्र । सहस्वत्र । सहस्वत्र । स्वर्वाराम्यस्त्र । स्वर्वाराम्यस्ति । स्वर्वाराम्यस्त्र । स्वर्वाराम्यस्ति । स्वर्वाराम्यस्ति । स्वर्वाराम्यस्ति । स्वर्वाराम्यस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वार । स्वर्वारामस्ति । स्वर्वार । स्वर्वारमस्ति । स्वर्वार ।

हैद दहुविस्तरम् । यह रामेण विक्रस्य निहतो रावणो युषि ॥१६६ ॥ सारिज्याक्षारुप्रणावधानमजैद परिकीर्त्तितम् । कर्णस्य परिमोद्योऽन प्रेडकार्त्यां पुरन्दरात् ॥२०० ॥ यनास्य स्रक्ति तुष्टीऽस्तीवदादेकव-धान सः । स्रार्त्ये यतुष्ठाख्यानं यत्र भ्रमोऽन्वसात् सुतम् ॥ २०१ ॥ कार्युक्तंत्रवर्ता यत्र पाषड्वाः पश्चिमां दिशम् । पतदारष्यकं पर्व तृतीयं परिकीर्त्तितम्॥ २०२ ॥ स्रत्राध्यायस्यते हे तु संख्याप परिक्ता किते ॥ २०२ ॥ प्रजादस्य चहकाणि स्टोकानां पद्शतानि सः । चतुः ख्यान हे । तद्वनन्तर द्रीपदी ब्रोर सत्यभामाद्या मिलाप तथा जनका सम्बाह साता हे ॥ ६६२ ॥ तद्वनन्तर पाएडवीके कोडकर हैत्यनर्म

जानेकी कथा, घोरवाका करते हुए दुर्योधनको गंधवेंगि पकड़कर वाध किया था उससे तका पाए उस मंदद्दद्विको छठ्ठ नते. छुड़ाया तथा तहां धर्मराकको नुगका रुक्ष दीया, तहांसे चली सौर थेष्ठ पाएडवांका पार्वकवनमें पुनरागमन कहा है तथा प्रोहिद्दोशिकका श्रतिविक्तार (चुत कुक्तान्त भी उसमें कहा है। १.६४—१.६६॥ तथा पुवांकाकी कथा भी इसमें ही वर्शित है पाश्रममें जयद्रथने द्री ग्दीका हरण करा वायु वैसके भीमसेनने उसको पहाड़ा तथा महावकवान,भीमसेनने उसको पांच कोटीवाला करा (पांच स्थानोंसे वाल छोड़कर छोर सव शिर को सुड़िक्या) वह कथाभी इसमें होहै, तदनन्तर विस्तारसे रामचंद्र

जीका इतिहास भी इसमें ही कहा है जिसमें रामचन्द्रने पराक्षम करकें रावणको साराधा वह कथा है॥१८७-१८६॥तदनन्तर साविशीका उपा- विवास साराधा वह कथा है॥१८७-१८६॥तदनन्तर साविशीका उपा- विवास है कि हो है कि इन्द्रने कर्णके कुए उल्लोको से असका हो कर केवल एक कोध्ही मारे पेसी शक्ति उसको देकर छोड़ने की रीति वर्ता है तिसकी कथा आती है ॥ तदन्तर आरणेय नामका उपाच्यान है है जिसमें धर्मराजने अपने पुत्र युधिष्ठरको उपने द्वार दिया है २००-२०१ सहन्तर सर्वार पाकर पाएडवाके पश्चिम दिशाको जानेकी कथा है इस प्रकार कथाओं परिपूर्ण तीसरा आरए यक्षपने ने द्वारास जी है से कहा है ॥२०२॥ इस पर्वमें दीसो उनहत्तर अध्याय कहे हैं ॥ २०३॥

पष्टिस्तथा ऋोकाः पर्वपयस्मिन् प्रकीत्तिताः ॥ २०४ ॥ श्रतः परं नियो-

धेदं वैराटं पर्व विस्तरम् । विराटनगरं गत्वा रमशाने विपुलां शमीम् ॥ २०५ ॥ द्वष्टा सम्निद्धस्तन पापड्या गासुधान्युत । यत्र प्रविश्य नगरं छुपाना न्यवसंस्तु ते ॥ २०६ ॥ पाञ्चाली प्रार्थयानस्य कामोपए-तचेतसः । द्रष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात्॥ २०७॥ पांड-वान्वेषणार्थञ्च राज्ञो दुर्ग्योधनस्य च । चराः प्रस्थापिताधात्र निषुणाः सर्वतोविशम् ॥ २०= ॥ न च प्रवृत्तिस्तैर्लय्या पांडवानां महात्मनाम् गोत्रहस्य विराटस्य विगर्त्तः प्रथमं कृतः ॥ २०६ ॥ यशास्य युद्धं सुम-इत्तराखील्लोमहर्पणम् । हियमाण्ध्य यत्राखी भीमसेनेन मोक्तिः २१० गोधनञ्च विरादस्य मोन्नितं यत्र पांडपैः । श्रनन्तरञ्च कुरुभिस्तस्य गोबहुणुं कृतम् ॥ २११ ॥ समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः छुरघो युधि। प्रत्याद्वतं गोधनञ्च विक्रमेण किरीटिना ॥ २१२ ॥ विराटेनोत्तरा दत्ता स्तुषा यत्र फिरोद्रिनः। श्रभिमन्यं समहिष्य सौभद्रमरिघातिनम् २१३ चतुर्थमेति दिपुलं वैराटं पर्व वर्णितम् । अत्रापि परिसं च्याता अध्या-श्रीर ग्यारह सहस्र छः सी चौंसठ रहोक इस पर्वमें कहे हैं। र्रु०४॥ तद्नन्तर विस्तारयुक्त वैराद् पर्व श्राता है उसको श्रवण करो पागड-वांने विराद् नगरको जाते समय समशानमें एक वड शमीके धृचको देखकर उसके ऊपर श्रपने श्रायुध रखदिये तदनन्तर विराद नगरमें पहुँचे श्रीर तहां कपट वेपसे लुपकर रहे। तहां द्रष्टभायसे पांचाली की प्रार्थना करनेवाले श्रीर फोमवासनासे बुद्धिहीन हुए दुरात्मा फीचकको भीमसेनने मारडाला ॥ २०५---२०७ ॥ तदनन्तर दुर्योधनने परम चतुर गुप्तचर (जासूस) पाण्डवांको ढ्ढनेके लिए सम्पूर्ण दिशाश्रीम भेजे ॥ २०= ॥ परन्त उनको महात्मा पाएडवाँका कोई समाचार नहीं मिला, पहिले त्रिगतें।ने राजा विराटकी नौर्श्रीका हरण करा ॥ २०६ ॥ इसकारण उनके साथ रोमाञ्च खड़े करनेवाला युद्ध हुआ जिसमें शत्रुत्रोंने राजा विराद्को पकड़ लिया और

पदी करके लेजानलमें तय उसको भीमसेनने छुडाया ॥ २१० ॥ इतना ही नहीं किंतु राजा विराट्का वह गोधनभी पांडपाने छुडाया तदनन्तर किर छुक्बोंने राजा विराट्का वह गोधनभी पांडपाने छुडाया तदनन्तर किर छुक्बोंने राजा विराट्का वोधोंका हरण किया २११ जिस युद्ध में वहुतसे छुक्कोंको अर्थेल श्र्युंनने हराया श्रीर श्र्युंन पराफ्रम कर्मसे प्राच्या हो श्रेष्ठों लेशाया ॥ २१२ ॥ राजा विराट्ने उस क्रमेंसे प्रम्य होकर श्रयनों पुत्री उत्तरा छुमद्राके पुत्र श्रमित्रपुत्रे निमित्त श्रर्युंन को श्रपं करदी ॥ २१३ ॥ यह सव कथाएं विस्तारवाले इस चौथे पर्वम वर्णन करदी ॥ २१३ ॥ यह सव कथाएं विस्तारवाले इस चौथे पर्वम वर्णन करी हैं, परम श्रुपि वेदवेन्स व्यासजीने इस विराट्ण कर्म

याः परमपिंगा॥ २१४॥ सप्तपष्टिरथो पूर्णा स्होकानामिष मे छछ।
रहोकानां हे सहस्रो तु स्होकाः पञ्चाग्रदेष तु॥ २१५॥ उक्तानि वेद-विदुषा पर्वप्यस्मित्महपिंगा। उद्योगपर्व विहेषं ५६॥ उप्तानि वेद-॥ २१६॥ उप्तक्तस्य निविष्टेषु पापडवेषु किनोपया। दुर्व्योधनोऽक्

नाहीय वास्तु देवसुपादिथती ॥ २१७ ॥ साहाध्यमस्मिन् समरे अवाजी सस्यु वास्तु वासु वास्तु वास्तु

होता विकास विकास

प्रमन्तर पोचवें उद्योगपर्यका प्रारम्भ होताहै उपनी तथा सुनी, विजय चाहनेवोले पांडर उप उपन्तव नामक स्थानमें जाकर रहे तम , दुर्यो-धन और प्रत्नुन होनों श्रीक्षन्यजीकं यहाँ गय॥ २१६॥ २१७॥ और उनसे नहा कि प्रारको हक सुबमें हमारी सहायता करनी चाहिये, उन दोनोंको बचनको सुनकर गहासुद्धि श्रीकृष्णजीने उत्तर दिया कि है महा-पुजरें। वें सुद्ध तो नहीं करता प्रन्तु प्रकका मंत्री मात्र दनवाऊँगा

पुजरीं ! में युद्ध तो नहां करता परम्हु एकका संत्री साथ वनजाउँना तथा दूसरेको एक अकोहिएी जेनाकी सहायताहूँगा । इन दोनों वातों में से किलाओं एक हुं ! को तुम्हारे ध्यानमें आदे उसको मांगलो २१ मा ११६ ॥ एकपर संदानना सृद्धुखि दुर्मोधनने एक अलोहिएी स्नेना मांगी और अर्जुनने युद्ध न करनेवाले अगवान ओक्रण्यका मंत्रित्व एवीकार करा ॥ २२० ॥ सद्देशका राजा शस्य पांडवींके समीप आता

(५५) श्रध्याय] क भाषानुबाद सहित 🌣 पार्डवान् प्रति।यव दृतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥ २२५ ॥ शुरवा च पाण्डवान्यव बांस् वेवपुरोगमान् । प्रजागरं संप्रजमे धृतराप्ट-स्य चिन्तया॥ २२६ ॥ चिद्धरो यंत्र घाषवानि विचित्राणि हितानि च । श्रावयामास राजानं धूनराष्ट्रं मनीपिणम् ॥ २२७ ॥ तथा सनत्स् जा-तेन यत्राध्यात्ममनुत्तमम्। मनस्तापान्यितो राजा धायितः शोकला-लसः॥ २२=॥ प्रभाते राजसमिती सञ्जयोयत्र पा विभोः। पेकात्म्यं घा-सुदेवस्य प्रोक्तवानर्ज् नस्य च ॥ २२६॥ यत्र कृष्णोद्यापन्नः सन्धिमिच्छ-न्महामतिः । स्वयमागाच्छमहुर्त् प्रगरं नागसाह्यम् ॥ २३० ॥ प्रत्या-रुपानञ्च कृष्णुस्य राजा दुरुपीधर्नन वै।शमार्थे याचमानस्य पद्मयोग्स-योर्हितम् ॥२३१॥ दस्भोद्भवस्य चाल्यानमत्रीवपरिकार्त्तितम्। यरान्वे-पण्यत्रीय मातलेख महात्मनः॥ २३२ ॥ महर्पेखापि चरितं फियर्त गोलवस्ववै। विद्वलायाश्च प्त्रस्य प्रोक्तं चाष्यनुशासनम् ॥ २३३ ॥ कर्ण दुर्क्योधनादीनां दुष्टं विशाय मन्त्रितम् । योगेश्वरत्वं रूप्णोन यत्र राज्ञां प्रदर्शितम् ॥ २३४ ॥ रथमारोप्य कृष्णेन यत्र फर्णोऽनुम-महाराज धृतराष्ट्रने छूतकी रीतिसे सञ्जयकी पांडवीके समीप भेजा ॥ २२५ ॥ सञ्जयसे पायडवींका और वास्तुदेव हैं मुख्य जिनमें ऐसे दूसरे राजाश्रीका युद्धारंभ सुन राजा धृतराष्ट्रको चिन्तासे नीद भी नहीं श्राई ॥२२६॥ उस समय घिदुरजीने वुद्धिमान् राजा भृतराष्ट्रको जिसमें हित भरा था ऐसे धनेकों प्रकारके बचन सुनाए जिनको विद्वान् विदुरनीतिके नामसे कहतेहैं॥ २२७॥ श्रीर सनत्सुजातने खिद्यचित्त शोकमें लवलीन धृतराष्ट्रको उत्तम अध्यात्मधान कह सुनाया ॥ २२= ॥ हे व्यापकराजन् ! उसके पीछे प्रातःकाल संजयने भरी सभाके मध्यमें श्रोकृष्ण और अर्जुनकी एकता भी सुनाई॥ २२६॥ तदनन्तर दयालु महामित श्रीकृष्ण् परमात्मा सम्मतिकरनेकी इच्छासे समाधान करनेके लिए आपही हस्तिनापुरमें आए॥ २३०॥ जिलमें दोनों पत्तोंका हित होय ऐसे निवटाव के लिए श्रीकृष्णजीने प्रार्थना करी परन्त दुर्योधनने उसका स्पष्ट निपेध करदिया वह कथा है।। २३१ ॥ तदनन्तर दंभोद्भवका आख्यान कहा है, पुत्रीके लिए योग्यवरको ढुंढते हुए महात्मा मातलीका चरित्र भी इसमें ही श्राता है ॥ २३२ ॥ तद्नन्तर महर्षि गालवका चरित्र कहा गया है तथा उसके पीछे विद्वलाने श्रपने पुत्रसे हितकी शिह्ना कही है॥२३३॥ तदनन्तर कर्ण दुर्योधन तथा दूसरोंके दुष्ट विचारको जानकर श्रीक्र-प्राजीने वहां राजाश्रोंके वीसमेही श्रपना योगेश्वरपना विखाया२३४तद-नन्तर श्रीद्वप्णजीने कर्ण को अपने रथमें वैठा बहुतसी समकानेकी वार्ते

सहाभारत ज्ञादिपर्व # (પૃદ્) ित्रतः । उपायपूर्वं सौटीर्यात् प्रत्याख्यातश्च तेन सः ॥२३५ ॥ श्रागम्य हास्तिन्युराद्वपेस्तवसरिन्दमः। पांडवानां यथावृत्तं सर्वमाख्यातवान् हरिः ॥ रे३६ ॥ ते ठन्य बचनं श्रुत्वा मंत्रयित्वा च यद्धितम् । लात्रामिकं ततः सर्व जञ्जं चक्रः परन्तपाः ॥ २३७ ॥ ततो युद्धाय निर्याता नरा-इदर्यद्भितनः। नगरातास्तिनपुराहलसं ख्यानमेव च॥२३=॥ यत्र राजा हालुकस्य प्रेयणं पांडवान् प्रति । श्वोभाविनि महासुद्धे दौत्येन हातवान् प्रसुः ॥ २३८ ॥ रदाहिरथसं ख्यानमस्योपाख्यानमेव च । एतत् स् बहु-इत्तान्तं पञ्चमं पर्वे भारते ॥ २४० ॥ उद्योगपर्व निर्दिण्टं सन्धिविष्रह मिशितम । अध्यायानां रातं प्रोक्तं पडशीतिर्महर्पिणा॥ २४१॥ स्टोकानां पद्कतुन्त्राणि तावनत्येय शतानि च । स्रोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथै-इत्हीं सहात्मना ॥ २४२ ॥ व्यासे नोदारमतिना पर्वण्यार्देमस्तपोधनाः हातः परं विचित्रार्थं भीष्मपर्वे प्रचच्यते ॥ २४३ ॥ जम्बुखण्डविनि-क्रीलस रहीकं खब्जवेन ह । यत्र वीधिष्टिरं सैन्यं विपादमगमत्परम ॥ २४४ ॥ उद्य प्रसम्होरं दशाहनि स्दारुणम् । कश्मलं यत्र पार्धास्य कहीं तौभी कर्एने दर्वले तेला करनेका स्वष्ट निपेध किया ॥ २३५॥ तदनन्तर सम्बाद्यक श्रीहरि हस्तिनापुरले उपण्तव नामक स्थानमं पाउडबोंके जुनीप जाये और पाएडबोंके सब गाउँ जैसीको हैसी कहकर सुना ही । १२६६।। उनके वचनको सुन उनके साथ हितकरिक विचार करके प्रवृद्धीको दुःख देनेवाले पाएडवीने बहुतसी युद्धकी लामग्री तच्यार करना घारम्भ कर दी ॥ २३७॥ युद्धके लिए मनुष्य होहे एए और हाथियोंकी वड़ीमारी सेना हस्तिनापुरसे निकलने लगीवह कथा है तद्वन्तर सेनाकी संख्याका विचार आता है॥२३=॥ तबनन्तर दुर्योधनने बड़ाभारी युद्धहोनेके पहिले दिन उलकको पाएड-बोंकी शोर इत दनाकर भेजा, वह कथा आती है, तदनन्तर रथ द्यतिरथ इत्यदिकी गणनाकी कथा जाती है, और तदनन्तर अस्वो-ण्डवान घाताहै इन सर्वोका बहुत विस्तारसे महाभारतके पांचले उद्योगपर्दर्से दर्गन करा है॥ २३६॥ २४०॥ हे तपोधनो ! इस उद्यो-वपर्वमें महर्षि उदारपुद्धि व्यासजीने संधि और वित्रहका मिलाहज्ञा भाग वर्णन करा है तथा एकसौछियासी अध्याय रचे हैं तथा उन्ही महात्माने छःहजार छःसौ अठानवे श्लोक रचे हैं। अब मैं तुमसे वि-चित्र अर्धवाला भीष्मपर्वे कहताहूँ ॥ २४१—२४३ ॥ जिसमें संजयने जस्बद्धीपकी रचना कही है और उसके पीछे युधिष्ठिरकी सेनाने दुःख पाया घह जथा है, और जिसमें दशदिनपर्य्यन्त महादारुण श्रीर अयंकर युद्ध वर्णन किया है, जिसमें श्रर्जुनको परम क्लेश हुआ है,

 भाषानुवाद सहित । शध्याय] (v.v.) दास देवो महामतिः॥ २४५ ॥ मोहजं नाशयामास हेन्भिमीन् । शिभिः समीव्याधोज्ञजः जिप्नं यधिष्टिरहिते रतः ॥ २४६ ॥ रथादाष्त्रत्य वेगेन स्वयं कृष्ण उदारधीः । प्रतोदपाणिराधावद्गीपम हन्तं, व्यपेतमाः २४० वाक्वव्रतोदाभिहतो यत्र गृष्णेन पाएडवः । नाएडीवधन्वा समरे सर्वश्रसभुतास्वरः ॥ २४= ॥ शिखरिडनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थी महा-धनः । घिँनिन्ननिन्नितिर्वार्शेरथाङ्गीष्ममपातयत् ॥ २४६ ॥ शरतरूपग-तश्चैव भीष्मो यत्र वभव हु । पष्टमे तत्समाख्यातं भारते पर्व विस्तु-तम् ॥ २५० ॥ घ्रष्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्तदशापरे । पञ्चक्ष्ठोक-सहस्राणि संस्थयाष्ट्री शतानि च ॥ २५१ ॥ क्लोकास्य चतुरशीतिर-स्मिन् पर्वणि कार्त्तिताः । व्यासेन बेद्विदुपा संख्याता भीष्मपर्वणि ॥ २५२ ॥ द्रोलपर्व ततश्चित्रं बहुबुत्तान्तमुच्यते । संनापत्येऽभिविक्तो-ऽध यत्राचार्थः प्रतापवान् ॥ २५३ ॥ दुर्ख्योधनस्य प्रीत्यर्थे प्रतिज्ञाने महारूचिन् । त्रहर्णं धर्मराजस्य पार्ड्युवस्य धीमतः। यत्र संसप्तकाः पार्थमपनिन्यु रणाजिरात् ॥ २५७॥ भगदत्तो महाराजो यत्र शकसमो श्रवने स्ते ही और बांधवींको मारतेमें शोकजनित मोह होनेपर श्रस्त्रको फंककर टर खडा होगया, तब महामित बाख़देव भगवानूने मोचको दिखानेवाले सिद्धान्तोंसे उसकेमोहजनित खेदका नाशकरायह कथा है, इसके अनन्तर युधिष्ठिरके हितमें लगेट्टए उदारमति श्रीकृष्ण भट रथपरसे उतपडे श्रीर पाएडचींका सेनामें होनेवालीभागडको देखकर हाथमें चावक लेकर निर्भयतासे भीष्मिपतामहके मारनेको टौडे शौर उन्होंने हृदयको देधने वाली वाणीरूप हुरीसे अर्जुनका हृदय वेध डाला तव गागडीव धनपको धारण करनेवाले श्रीर सव शखधरीमें श्रेष्ट महाधनुर्थारी श्रर्जुनने शिखएडीको श्रपने श्रागेकरके तीद्यवार्योकी वर्षाकर भीष्मिपतामहको रथसे नीचे निरादिया ॥ २४५--२४६ ॥ श्रीर उससमय भीष्मपितामह वार्णीकी शय्यापर सोगप इतनी कथाएं इस पर्वमें हैं यह विस्तारवाला भीष्मपर्व महाभारतका छटापर्व कहाता है॥ २५० ॥ वेदवेत्ता भगवान् व्यासजीने इस भीष्मपर्व में १७० श्रध्याय तथा ५==४ श्लोक कहे हैं॥२५१-२५२॥तदनन्तर विचित्र श्लौर वहुतसे श्राख्यानोंबाला द्रोणपर्व श्राताहै इसमें प्रतापवान् द्रोणाचार्यका सेनापति के पदपर श्रभिषेक कियागयाहै॥२५३ तदनन्तर श्रख्नशङ्गी में निपुण द्रोणाचार्यने हुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिए पाएड्राजके पुत्र द्यदिमान् राजा युधिष्ठिरको पकडलानेके निमित्त करीहुई प्रतिहाकी कथा आती है इसमें ही संसप्तकनामवाले योदा, लड़ते २ अर्जुनको

रणभूमि में से दूर लेगए तिसकी कथा आती है, तदनन्तर इन्द्रकी

जुिश्व । सुप्रतीकेन नागेन स हि शान्तः (करीटिना ॥ २५५ ॥ यज्ञाभिमन्युं बहुवो जन्तुरेकं महारथाः । जयद्रथमुखा वालं शूरमप्राप्तयीवनम् ॥ २५६ ॥ हतेऽभिमन्यौ कुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे । अज्ञौहिणीः
स्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ २५७ ॥ यत्र भीमो महावाहुः सारयकिश्च महारथः।श्रन्वेपणार्थं पार्थस्य युश्विष्टिरसुपाश्वया।शिवद्यौ भारतीं
सेनासप्रश्रुत्यां सुरेरिष ॥ २५६ ॥ संसप्तकावश्रेपञ्च कृतं निःशोपमाह्वे ।
प्रतन्तुपः श्रुतायुख्य जलसन्ध्रश्च वीर्थ्यवान् ॥ २५६ ॥ सोमद्विर्विराद्रध्य द्रुपद्व्य सहार्थः । यटोत्कचाद्यश्चान्ये निहता द्रोणपर्वेणि २६०
प्रदन्त्रयामापि चात्रव द्रोणे युष्टि निपातिते । श्रस्तं प्रादुश्चकारोत्रं नारायण्तमर्थितः॥२६२॥द्यान्यः कित्यते यत्र कद्रमाहात्म्यमुत्तमम्। व्यासस्य
स्वायास्य महातम्यं कृष्णपार्थयोः ॥२६२॥ सत्तमं भारते पर्व महदेतदुहाहतम् । यत्र ते पृथिवीपात्ताः प्रायशो निष्कां गताः॥२६३॥ द्रोणपर्विण्
दे तृत्त दिविद्याः पुरुपपर्वमाः। प्रवशा निष्कां नथाध्यायाश्च सप्ततिः

समान पराममी महाराज भगदत्तको उसके सुप्रतीकनामके हाथी.के सहित अर्जुनने सारडाला, तदनन्तर जयद्रथ जिनमें मुख्य है ऐसे सहारिधयों ने, अभी युवावस्थाको नहीं प्राप्त हुए,वालक तथा अकेले शरबीर अभिमन्युको मारा, यह कथा आती है, अभिमन्युके सरण्से कुँद हुद छर्जुनरे संशाम में सात अज्ञौहिसीसेना को मार कर राजा जयतथ को भारताला ॥ २५४--२५७ ॥ तद्नन्तर सहाबाहु भीम-सेन और महार्ट्धा सात्यकी, राजा युधिष्ठिरकी प्राकासे प्रज्निको हंहने के लिए, जिलमें देवता भी न युस सकें ऐसी कौरवोंकी सेना से बुलगए ॥ २५= ॥ तदनन्तर उन परम उदारचित्त सकल लंसहरू योद्याओंको अर्जुन ने अतिदारुण युद्ध करकै यमलोक पहुँचा दिया और अलम्बुप, अतायु तथा वीर्यवान् जलसंध ॥ २५६ ॥ सोमदत्तका पुत्र सूरिश्रवा, विराट, महारथी राजा द्रपद्, तथा ें घटोत्ह्रचादि अन्य भी अनेकों वलवान् योद्धा इस द्रोगेपर्व में नाशको प्राप्तहुए यह वर्णन करा है ॥ २६० ॥ इस संप्राम में जब द्रोणाचार्च निरगए तय अपार को यक्ती प्राप्तहुए उनके पुत्र अश्व-त्यामाने वहा भयंतर नारायण नामक अलको शतुर्जीके विनाश के क्षिष प्रकट करके छोड़ा ॥२६१॥किर भगवान् रुद्की प्रश्निसम्बन्धी उत्तम कीर्त्तिका गान किया है, तदनन्तर व्यासजीका प्रधारना श्रीर श्रीकृष्ण तथा श्रर्जुनका महातम्य वर्णित है ॥ २६२॥ इसप्रकार यह महाभारतका स्नातवां द्रोणपर्व कहा है, जिन शूर और महापुरुष राजाओंका वर्णन कियाथा उन राजाओंने श्रधिकतर इस द्रोणपर्व

🕸 भाषानुवाद सहित 🌣 अध्याय वि ॥२६४॥ ग्रष्टी रहोकसहस्राणि तथा नवशनानि च।रहोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना । पाराशच्येण पुनिना सञ्चित्त्य द्रोणपर्वणि ॥ २६५ ॥ श्रतः परं कर्णपर्व प्रोच्यने परमाञ्चनम्। सारथ्ये विनियोगश्च मदराजस्य धीमतः॥२६६॥श्राख्यानं यत्र पौराणं विषुरस्य निर्धातनम् । प्रयाणे परुपक्षात्र संवादः कर्णशहपयोः।हंसकाकीयमारुयानं तथैवाले पसंहितम् ॥ २६७ ॥ वधः पाग्डयस्य च तथा श्रश्वत्थास्ना महात्मना। देवसेनस्य च ततो द्राडस्य च वधस्तथा ॥ २६= ॥ हैरथे यत्र कर्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः । संशयं गमितो युद्धे निपतां सर्वधन्विनाम् २६८ श्चन्योन्यं प्रति च फोधो युधिष्टिरिक्षरीटिनोः। यर्पवानुनयः प्रोक्तो माध्येनार्जनस्य हि ॥ २७० ॥ प्रतिष्ठापूर्वकञ्चापियको दुःशासनस्य च। भित्या वृक्तोदरो रक्तं पीतवान्यत्र संयुगे ॥ २७१ ॥ हेरथे यत्र पार्थंन हतः कर्णो महारथः। श्रष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तर्कः ॥ २७२ ॥ एकोनसप्तिः प्रोक्ता श्रध्यायाः कर्णपर्वणि । चत्वार्य्यंव सहस्राणि नव रहोकशतानि च ॥ २७३ ॥ चनःपष्टिस्तथा रहोकाः पर्वरयस्मिन प्रकी-र्त्तिताः । श्रतः परं विचित्रार्थं श्रत्यपर्वं प्रकीर्त्तितम् ॥ २७४ ॥ इतप्र-में ही मरण पायाहै, पराशरके पुत्र तत्वदशी भगवान् वेदव्यासजीने विचार करके इस द्रोणपर्वमें १७० श्रध्याय श्रीर == ६० श्रीक गिनाप हैं । २६३—२६५ ॥ तदनन्तर परमाद्भत कर्णपर्व करने में श्राता है जिलमें बुद्धिमान मद्रदेशके राजा कर्णको सारधी वनायागया वह कथा आती है। । २६६ ॥ तदनन्तर त्रिपुरासुरनिपात सम्बंधी पीराणिक कथा आती है फिर युद्धमें चढ़ाई करते समय कर्ण और राजा शल्यका कठोर सम्बाद श्राता है तदनन्तर श्राचेपके साथ कहनेमें श्रानेवाला हंस श्रीर कीपका श्राख्यान श्राता है ॥ २६७॥ तदनन्तर अध्वत्थामाके करे हुए पाएटव राजाके वधकी कथा आती है तदनन्तर देवसेन तथा दग्डॅका वध कहा गयाहै।। २६=।। तदनन्तर सब धनुषवारियोंके देखते हुए कर्ण और युधिष्ठिरके हुन्ह्युद्धमें युधिष्टिरके प्राालीपर भय श्राजानेकी कथा है ॥ २६८ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिर श्रौर श्रर्जुनके परस्पर संवादमें क्रोध श्राजानेकी कथा है तद्नन्तर श्रीरूप्णजीने श्रर्जुनको समभाया ॥२७०॥श्रीर पहिलेकी हुई प्रतिग्रापूर्वक जिस संप्राम में भीमसेनने दुःशासनका हृदय फाडकर रुधिर पिया ॥ २७१ ॥ तथा रएमें महारथी कर्एको प्रार्जुनने मारा इत्यादि सम्पूर्ण कथापं इस महाभारत के ब्राठवें कर्ण पर्वमें ब्राती हैं ऐसा महाभारतकी कथा विचारनेवाले कहते हैं ॥२७२॥ इसकर्णपर्वमें ६६ अध्याय श्रीर ४६६४ श्लोक हैं तदनन्तर विचित्र विपयों से भरा-हुन्रा शत्यपर्व कहाहै॥२७३-२७४॥त्रव जिस समय सेनाम से वहुतसे

 महाभारत आदिपर्व । (E0) वीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्यरोऽभवत् । वृत्तानि रथयुद्धानि कीर्त्यन्तेयत्र भागशः ॥ २७५॥ विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वणि कीर्त्यते । शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महात्मनः ॥ २७६ ॥ शकुनेश्च बधोऽत्रैव सहदे-वेन संयुरो । सैन्ये च हतभृयिष्ठे किञ्चिच्छिष्टे सुयोधनः ॥ २७७ ॥ हुदं प्रविष्य यत्रास्त्री संस्तभ्यापो व्यवस्थितः । प्रवृत्तिस्तत्र चाख्याता र्यत्र सीतस्य लुब्बकैः॥ २७=॥ च्रेपयुक्तैर्वचोभिश्च धर्मराजस्य धीमतः। हद्दात् समुत्थितो यत्र धार्त्तराष्ट्रोऽत्यमर्पणः ॥ २७६॥ भीमेन गदया युद्धं यत्रासौ इतवान् सह । समवाये च युद्धस्य रामस्यागमनं स्मृतम् ॥ २=० ॥ जरस्रत्याश्च तीर्थानां पुपयता परिकीर्त्तिता । गदायुद्धश्च तुसुलमजैव परिकीर्त्तितम् ॥ २=१॥ दुर्च्योधनस्य राज्ञोऽथ यत्र भीमेन् चंबुने । ऊरू सद्रौ प्रसङ्खाजी गद्या भीमवेगया ॥ २=२ ॥ नवमं पर्व निर्दिष्टमेतवद्भुतमर्थवत् । एकोनपष्टिरध्यायाः पर्वग्यत्र प्रकीर्त्तिताः ॥ २८३ ॥ संख्याता बहुबृद्धान्ताः स्ठोकसंख्यात्र कथ्यते । त्रीणि स्ठोक-सहस्राणि हे शते विश्वतिस्तथा ॥ २=४॥ मुनिना सम्प्रणीतानि कौर-बीर पुरुष सारेगण तब नद्भदेश के राजा शहयको सेनापति नियत किया। ग्रौर इस पर्दमें ही रथियों के युद्धका विभाग से वर्णन किया. है ॥ २७५ ॥ इस शत्यपर्वमें कौरबोंके मुख्य र पुरुपोंका नाश और नहात्मा धर्मराज से शल्यका नाश, तथा रणमें सहदेव के हाथसे शक्तिका वध भी इसमें ही वर्णन किया है जब वड़ी भारी सेना मारी गई और किञ्चिनमात्र ही बची तव दुर्योधन एक सरोवर में हुल पानीको स्थिर करके उसमें हुपगया लुब्बकों (लोभी जालुकों) से भीन हेन को इस वातकी खबर मिलते ही पापडच तहां गए और बुद्धिमान् धर्मराज के तिरस्कार भरे कठोर वचनी को न सहने से वड़े कोध में भरकर ध्रताष्ट्रका पुत्र दुर्योधन पानीमें से वाहर निकल आया और उसने वाहर निकलकर श्रीमसेन के लाथ गदायुद्धका आरम्भ किया गदायुद्ध होरहा थो, उसी समय वलरामजी तहाँ श्रागए ॥ २०६-२=० ॥ उन्होंने सरस्वती तथा इसरे तीथाँकी पविवताका वर्णन किया फिर राजा दुर्योधन श्रीर भीमसेन का वड़ा घोर गदायुद्ध कहा है, २=१ ॥जिसमें भीमलेन ने युद्धमें भयंकर देगवाली गदाके वलपूर्वक प्रहारसे दुर्योधन की जांघें तोड़दीं ॥ २=२ ॥ इसपकार अद्भत कथाओं से परिपूर्ण ।यह महा-भारतका नौवां पर्व कहा है कौरवों की कीर्त्तिको कहनेवाले मुनि वेद्व्यासजीने इस शस्यपर्व में बहुतसे वृत्तान्तीसे भरेहुए ५६ श्रध्याय

छौर ३२२० क्लोक रचे हैं इसके उपरान्त दारुण सौप्तिक पर्वको

ः यहाभारत ग्रादिपर्व * रोगमान्। पाञ्चालान् सपरीवारान्द्रौपदेयांश्च सर्वशः। कृतवर्मणा च सहितः कृषेण च विज्ञन्निवान् ॥ २६४ ॥ यत्रामुच्यन्त ते पार्थाः पञ्च कुन्सद्वाञ्चात्। सात्यकिश्च महेन्वासः शेपाश्च निधनं गताः॥२६५॥ पाञ्चलानां प्रसुप्तानां यत्र द्रोतासुताद्वधः । घृष्टयुद्धस्य स्तेन पाराड-देडु निवेदितः ॥ ८६६ ॥ होपदी पुत्रशोकात्ता पिरुमारवधार्दिता । कृता नरानसङ्ख्या यत्र भर्तृ नुपाविशत् ॥ २६७ ॥ द्रौपदीवचनाद्यत्र भीमो शीमपराक्रमः । वियं तैल्याश्चिकापैन् वै गदामादाय वीर्थ्यवान् । श्चन्व-धावत् सुलंकुद्दो भारहाजगुरोः सुतम् ॥ २६= ॥ भीमसेनभयाद्यत्र हैंबेनासिप्रकोदितः । घ्रपोर्डदायेति रुपा द्रौणिरस्त्रमवास्त्रजत्॥२८८॥ र्भवित्यद्रवीत कृष्णः शमयंस्तस्य तद्वचः । यत्रास्त्रमस्त्रेण् च तच्छ-नवासास फार्युनः ॥ ३०० ॥ दौरोश्च दोहबुद्धित्वं वीस्य पापात्मन-स्तदा : हौशिद्वैपायनाद्यीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः ॥ ३०१ ॥ मणि त्तिक्ष में निश्चिन्त सोते हुए, षृष्ठचुस्न जिन में मुख्य है ऐसे परिवार लहित पांचालोंको तथा द्रौपदीके सप पुत्रों को श्रश्वत्थामा ने मार-डाला।(२१४)। श्रीकृष्ण सगवान् के वलवान् आश्रयसे पांची पाडवधीर-शरदीर सात्यिक मात्र ही दचा और सब उस घोर रात्रि में अश्व-त्यासाठे हांधले सारेगण।।२६५॥तदनन्तर घृष्टयुम्नके लारथीने आकर पांडवों से कहाकि-दोलके पुत्र अरवत्थामाने सोते हप पांचालीको सारडाहा है।। २६६॥ इस बातको सुनकर पुत्रशोकले व्याकुल हुई तथा पिता फ्रांट माईयों के मरने से घति दुःखित हुई द्रौपदी, श्रपने वृद्योंके सारनेवाले को मरवादूंगी तवहीं भोजन कर्ह्नगी ऐसी प्रतिज्ञा कर जारने एटामिपोंके पास खावेठी ॥२६७॥द्रौपदीके इस चचनको सन कर भीमवराज्यो बोर्यवाद भीमखेनने द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिए ग्रत्यन्त कोधकर सीवही गदा लेकर, अपने श्रस्त शस्त्रकी विद्या के गुरु होलाचार्यके पुत्र प्रश्वत्थामांका पीछा किया ॥ २८८ ॥ भीससेनके भवले तथा देवने घेटला किये हुए और शत्यन्त कोधके आवेशमें हुए होलाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने पाराडवींके नाशके लिए रोपमें **आ** "ज्ञावारहवाय" ऐसा नंत्र पहुंकर महाभयंकर श्रस्त पारहवींकी श्रोर को छोड़ा, परन्तु श्रीछण्णजी ने "मैवं" ऐसानहीं होना चाहिये, यह कहकर उसके मन्त्रको शान्त करिदया तथा अर्जुनने उसके सामने छपना शल छोड़ कर उस के अलाको शान्त करिदया ॥ ३०० ॥

होत्तुके पुत्र पापात्मा श्रश्वत्थामा की द्रोहतुद्धि को जानकर भगवान् इत्त्वृहेदोदनने उसको शापदिया इसपर उसने भी उनको शाप दिया एकप्रकार परस्पर शापदियागया॥३०१॥तदनन्तर महारथी द्रोलपत्र

 भाषानुवाद सहित । (83) अध्याय तथा समादाय होणपुत्रान्महारथात् । पाग्डवाः प्रदृद्धि हौपधै जितकाशिनः ॥ ३०२ ॥ एतहै दशमं पर्व सौतिकं समदाहतम् । अष्टा-दशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्यका महात्मना ॥ ३०३ ॥ ऋोकानां कथिता-न्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया । श्होकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मनिना प्रशावा-दिना॥ ३०४॥ सीप्तिकैपीकसंबद्धे पर्वण्युत्तमतेजसा। यत अर्ध्वमिदं प्राप्तः स्त्रीपर्व करुणोद्यम् ॥ ३०५॥ पुत्रशौकाभित्तन्ततः प्रज्ञाचन्तरा-धिपः। कृष्णोपनीतां यत्रासावायसी प्रतिमां दृढाम्। भीमसेनद्रो हव-द्धिर्धातराष्ट्रो वसव्ज ह ॥ ३०६ ॥ तथा शोकाभितप्तस्य धृतराष्ट्रस्य धीमतः। संसारगहनं बुद्धा हेत्भिमींचदर्शनैः ॥ २०७ ॥ विदरेश च यत्रास्य राह श्राश्वासनं कृतम् । धृतराष्ट्रस्य चात्रैव कीर-वायोधनं तथा । सान्तःपुरस्य गमनं शोकार्त्तस्य प्रकीत्तितम् ॥३० ॥॥ विलापो वीरपत्नीनां यत्रातिकरुणः स्मतः। फ्रोधावेशः प्रमोद्ध्यं गान्धा-रीधृतराष्ट्रयोः ॥ ३०६ ॥ यत्र तान् चित्रयाः शुरान् संग्रामेष्वनिवर्त्तिनः पुत्रान् भातुन् पितुं धेव दरशुनिंहतान् रखे ॥ ३१० ॥ पुत्रपीत्रयधार्त्ता-श्रश्वत्थामाके मस्तकमें से मणि निकालकर हर्षको प्राप्त हुए और श्रपनी विजयसे शोभित हुए पाएडवीने प्रसन्न होकर वह मिण द्वीपदीके श्रापण करी ॥ ३०२ ॥ यह दशमांपर्व सीतिकपर्व कहाता है, ब्रह्मवादी महातमा व्यासजीने इस पर्वमें १० अध्याय रचे हैं और इस पर्वमें =90 क्रोक रचे हैं तथा इसपर्वमें उन महर्षिने उत्तम तेजवाले सीप्तिक और ऐपिक नामक दो पर्व जोड़ दिए हैं, श्रीर तदनन्तर फरुगा रसको उत्पन्नकरनेवाला स्त्रीपर्वकहा है ॥३०३--३०५ ॥ पुत्रशोकसे द्वः खित, श्रीर भीमसेन के ऊपर क्रोधमें भरेहुए प्रशाचनु राजा . धृतराष्ट्रने श्रतिदृढ श्रीर कृष्णने लाकर उनके सामने रक्ली हुई भीम सेनकी लोहेकी मर्त्तिको भीम जानकर कौलियामें भरकर चर्ण २ कर डाला, ॥ ३०६ ॥ तदनन्तर विद्वरजी ने अपनी वृद्धिमानी से मोत दिखानेवाले हेतुश्रों के द्वारा पुत्रशोकसे व्याकुल हुए बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्रको इन सांसारिक गहन विषयों की प्रीतिका विस्मरण कराकर श्रार्वासन दिया।३०अतदनन्तर शोकसे श्रांतुर हुए राजा धत-राष्ट्र अपने कुलकी सम्पूर्ण स्त्रियों के साथ कौरवों के रणदोनकी और गए. यह कथा कही है॥१०=॥तहां वीरपुरुपोंकी ख्रियोंका श्रत्यन्त करुणाज-नक विलाप तथा गांधारी श्रीर धृतराष्ट्रका क्रोधमें शाना एवं म-र्छित होना वर्णित है ॥३०६॥जहां चत्रियोंकी स्त्रियोंने उस रणभूमिमें पीछे को नहीं हटने वाले अपने वेटे भाई और पिताओं को रसेनेज में मरे हुए देखा ॥ ३१० ॥ तदनन्तर पुत्रपीत्रीके मरनेसे दु:खिल हुई

महाभारत श्रादिपर्व # (88) यास्तथात्रैव प्रकार्त्तिता । गान्धार्य्याश्चापि कृष्णेन कोधोपशमनक्रिया ॥ ३११ ॥ यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभताम्बरः । राज्ञां तानि शरी-राणि दाह्यामास ग्रास्त्रतः ॥ ३१२॥ तोर्यकमणि चारब्धे राज्ञामुदक-दानिके।गढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य प्रथयात्मनः ॥ ३१३ ॥ सत-स्येतदिह प्रोक्तं व्यासेन परमर्पिणा। पतदेकादशं पर्वशोकवैकलव्यका रकम् ॥ ३१४ ॥ प्रणीतं सज्जनमनीवैक्लब्याश्रप्रवर्त्तकम् । सप्तविश-तिरध्यायाः पर्वग्यस्मिन् प्रकीर्त्तिताः ॥ ३१५ ॥ क्लोकसत्रगती चापि पञ्चलप्ततिसंयता । संख्ययाभारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता ॥ ३१६॥ ग्रतः परं गान्तिपर्व द्वादशम्बद्धिवर्द्धनम् । यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो यधिष्ठिरः । धातियत्वा पितृन् भ्रातृन् पुत्रान् सम्बन्धिमातलान् ३१७ शान्तिपर्वणि धर्माश्च ब्यार्ख्याताः शारतिलपकाः । राजभिर्वेदितब्या-स्ते लम्यग्रानवुभृतस्त्रिः ॥ ३१८ ॥ श्रापद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतप्रद-र्शिनः । यान्युद्धवा प्रवयः सम्यक् सर्वज्ञत्वमवाम् यात् ॥३१८॥ मोत्तथ-मध्य कथिता विचित्रा बहुविस्तरोः । द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत प्रावज-गांधारी के कोधको भगवान श्रीइष्णजीने शान्त करा तिसकी कथा है। ३११॥ तदनन्तर सकल धर्मजों में श्रेष्ठ महाबुद्धिमान राजा धतराष्ट्रने तहां पड़ेहुए राजाश्रोंके शरीरोंका विधिपर्वक श्रम्निस-कार कराया तिस की कथा कही है ॥ ३१२ ॥ तदनन्तर जब मरेहए राजाञ्जोको दाहांजलि देनेके लिए तर्पणका आरम्भ हुआ. तव कन्ती ने बाल्यावस्थामें स्वयं गुप्तरीतिसे उत्पन्न करेहुए कर्णको भी श्रपना पन्न बताकर जलदान किया,इसन्यारहवें पर्वमें परमर्षि भगवान वेद-ब्यासजीने शोकित तथा विद्वल करनेवाला,श्रौर सत्प्रवांके चित्तको मोहमें डालकर रुलानेवाला,श्रनेकों विषयोंसे भरपूर ग्यारहवां पर्व रचा है, इस पूर्व में २७ श्रध्याय कहे हैं ॥३१३--३१५॥ श्रीर७७५ श्रोक रचे हैं इसप्रकार बुद्धिमान् व्यासजीने महाभारतका श्राख्यान कहा है३१६ इसके अनन्तर बुद्धिको बढ़ानेवाला वारहवां शान्ति पर्व है, जिसमें विता, भाई, पुत्र, संबंधी श्रीर मामाश्रीको मरवाकर धर्मराज यधि-ब्रिर खेदको जात हुए ॥ ३१७ ॥ तब शरशय्या पर सोयेहए भीष्मिष-नामहते. उत्तम प्रकारका झान पानेकी इच्छावाले राजाओं के जानते योग्य राजधर्म कहे ॥ ३१८ ॥ तथा तहां ही कालके हेत्य्रोंको हि-खानेवाले आपद्धर्म कहे, जिन धर्मीको भले प्रकार जानकर पुरुष सर्वज्ञपनेको पाता है ॥ ३१८ ॥ तदनन्तर अतिविस्तारवाले विचित्र मोलधर्म भी कहे, इसप्रकार विद्वानीके त्यारे इस वारहवे पर्वका

वर्णन करा है ॥ ३२० ॥ हे तपोधनो ! महातपस्वी भगवान व्यासजी

श्रध्याय ी निप्रयम् ॥ ३२०॥ श्रत्र पर्चेशि विद्ययमध्यायानां शतत्रयम् । त्रिशश्चैय तथाध्याया नव चैव तपोधनाः ॥ ३२१ ॥ चतुर्दशसहस्राणि नधा सप्त-शतानि च । सप्तरुशेकास्तर्थे बाज पञ्चिधिशतिसंख्यया ॥ ३२२ ॥ अत ऊर्द्ध विशेषमन्यासनम्त्रमम् । यत्र प्रकृतिमापनः श्रुत्वा धर्मवि-निध्ययम् । भीष्माद्धागीरधीपुत्रात् कुरुराजी सुधिष्टिरः ॥ ३२३॥ व्य-बहारोऽत्र कारस्न्यंन धर्मार्थीयः प्रकीत्तिनः । विधिधानाञ्च वानानां फलयोगाः प्रकीत्तिताः ॥ ३२४ ॥ तथा पात्रविशेषाश्च दानानाञ्च परो विधिः । श्राचारविधियोगश्च सत्यस्य च परा गतिः ॥ ३२५ ॥ महा-भाग्यं गवाञ्चेव ब्राह्मणानां तथे व च । रहस्यश्चे व धर्माणां देशकाली-पसंहितम् ॥ ३२६ ॥ पतत् सुवरुक्तान्तम्त्तमं चानुशासनम् । भीष्म-स्यात्रेय सम्प्राप्तिः स्वर्गस्य परिकीत्तिता॥ ३२०॥ पतत्त्रयोदशं पर्य धर्मनिश्चयकारकम् । अध्यायानां शतन्त्वच पर्चत्वारिशदेव त ३२= क्रीकानान्त् सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टी प्रसंख्यया । ततोऽश्यमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम् ॥ ३२६ ॥ तत् सम्बर्त्तमक्तीयं यशाख्यानमञ्ज मम् । सुवर्णकोपसम्प्राप्तिर्जनम चोक्तं परीचितः । दग्धस्यास्त्राधिना पर्व कृष्णात् सञ्जीवनं पुनः॥ ३३० ॥ चर्यार्या एयमनसप्टं पागउध-

ने इस शान्तिपर्व में तीनसी उनतालीस श्रध्याय रचे हैं॥३२१॥ तथा चीद्र सहस्र, सातसी वत्तीस क्लोफ फहे हैं॥३२२॥ तदनन्तर उत्तम अवशासन पर्य कहाहै, जिसमें गङ्गाके पुत्र भीष्मिपतामहके कहेहए धर्मितिश्चयको सुन कुरुराज युधिष्ठिरका शोक दूर होकर वह स्थिर चित्त हुए ॥ ३२३ ॥ इसमें धर्म ध्रार अर्थके सम्बन्धका व्यवदार भी परे विस्तारसे कहाहै श्रीर नानाप्रकारके दानोंके पाल कहेहैं ॥ ३२४ ॥ तथा दान देने योग्य पात्र,दानको मुख्य विधि, श्राचारका निर्णय श्रीर उसकी शास्त्रोक्त विधि तथा सत्यका स्वरूप कहाहै ॥ ३२५ ॥वाद्यणी का तथा गौश्रोका माहात्म्य, देशकालके श्रन्तसोर धर्मोका रहस्य ३२६ इत्यादि विपयोका इस अनुशासन पर्वमें विस्तारसे वर्णन है, इसमें ही भीष्मिपतामहका स्वर्गमें पहुँचना कहाई, इसकारण यह उत्तम है ३२७ यह तेरहवां पर्व धर्मका निध्वय करानेवाला है, इसमें एकसी छिया-लीस अध्याय हैं ॥ ३२= ॥ ग्रीर गणनामें ग्राट सहस्र श्लोक कहें हैं, इसके अनन्तर चौदहवां आर्वमेधिक पर्व कहाहै॥ ३२८॥ इसमें संवर्त्त श्रीर मरुत्तकी श्रति उत्तम कथा कही है, पाएडवोंको सुवर्णभएडार प्राप्त होनेकी कथा तथा अरवत्थामाके अखकी अग्निसे गर्भमें राजा परीजितका भरम होना और फिर उसका श्रीकृष्णजीके द्वारा सञ्जी-वन ॥ ३३० ॥ यज्ञके घोड़ेको पृथिवी पर विचरनेके लिये छोड़ा, पाराडव

महाभारत आदिपर्व # [दूसरा (६६) स्वानुगच्छ्तः। तूत्र तत्र च युद्धानि राजपुत्रैरमर्पर्योः॥ ३३१॥ चित्रा-हुदायाः दुनेस दुनिकाया धनव्जयः । लग्नामे वसुवाहेस संसर्य चात्र द्धितम् ॥ ३३२ ॥ घर्यमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च । इत्याख-मेधिक पर्व प्रोक्तमेतनमहाद्भृतम् ॥ ३३३ ॥ अध्यायानां शतव्येव त्रयो-ध्याय अमेर्तिताः। भीषि स्रोकसहसाणि तावन्त्येव शतानि च। किं्तिश्च तथा स्रोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ ३३४ ॥ ततश्चाश्रम-दास्तर्यं पर्व पञ्चदशं स्मृतम् । यत्र राज्यं समृत्यज्य गान्धार्या तहितो सुपः । धृतराष्ट्रोऽश्रमगदं विदुरश्च जगाम ह ॥ ३३५ ॥ यंद्यप्रा प्रस्थितं लाच्ची पृथाप्यसुययौ तद् । पुत्रराज्यं परित्यज्य शुरुशुश्रृपर्णे रता ॥ ३३६ ॥ यत्र राजा हतान् पुत्रान् पौत्रानन्यांश्च पार्थिदान् । लो-कान्टरगताच् जीरानपश्यत् पुनरागतान् ॥ १३३७ ॥ ऋषेः प्रसादात् कुरतस्य द्याख्यंमनुक्मम्। त्यक्त्वा शोकं सदारश्चसिद्धि परिमको उतः ॥ ३२ = ॥ यत्र धर्मे समाश्रित्य विदुरः सुगति गतः । सञ्जयश्र सहानात्यो विहान् गावलगिर्वशी ॥ ३३६ ॥ ददर्श नारद यत्र धर्म-रक्ता करनेको उसके पीछे २ गए, स्थानी २ पर कोशी राजपुत्रोंके साथ युद्धीकी कथा॥ ३३१॥ तदनन्तर (मिणिपुरके राजाकी द्त्तक पुन्नी) चिकाहवाके उदरमें अर्जुनसे उत्पन्नहुए वसुवाहन पुत्रके साथ युद्ध करतेहुए संग्रामयं शजुनके प्राणीपर श्रायनना, तदनन्तर श्राव-में मासक नहायहमें नकुलकी कथा कही है, इत्यादि बड़े अञ्चत विषयी हे भराहुण यह प्रार्थमधिक पर्य समाप्त होता है ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ तस्वदर्शी भगवान् वेद्व्यासजीने इस श्राश्वमेधिक पर्वमें, एक सौ तीन प्रभाष और तीन हजार तीन को बीस श्लोक रचे हैं ॥ ३३४ ॥ तद-नन्तर पन्द्रहदां आध्रमवासिक पर्व कहा है, इसमें राजा धृतराष्ट्र राज षाटको त्यांगकर गान्धारी और विदुरके लाथ आश्रमको चलेहें ३३५ सर्वदा गुरुक्रनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाली पतिव्रता कुन्ती भी उन को इसप्रकार जातेहुए देखकर, अपने पुत्रीके राज्यको त्यागकर उनके ही है २ गई है ॥ ३३६ ॥ तदनन्तर क जा है पाचन ऋषिके अनुप्रहसे राजा धतरापृते यह वड़े आअर्थकी वात देखी कि-मरणको प्राप्तहण उनके पुन, चौज, प्रन्य राजे तथा इस लोकसे ,चलेजानेवाले वीरोने फिर ब्राक्तर दर्शन दिया,यह देखकर उन्होंने अपने शोकको त्यागदिया और सी सहित परमगतिको प्राप्त होगए ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥ तथा धर्मका आश्रय करनेवाले विदुरजी भी तहाँ ही सद्गति को प्राप्त हुए, जितेन्द्रिय विद्वान् गावरगणिका पुत्र सञ्जय भी मंत्रियों संहित परमगतिको प्राप्त हुआ यह कथा कही है ॥ ३३८ ॥ तदनन्तर ध्रध्याय । 🕸 भाषानवाद सहित 🕫 राजो युधिष्टिरः । नारदाशैव शुश्राव वृष्णीनां कटनं सहत् ॥ ३४०॥ पतदाश्रमवासारुयं पर्वोक्तं सुमहाद्भृतम् । हिचत्वारिशद्भयायोः पर्वे-तद्भिलंख्यय। ॥ ३४१ ॥ सहस्रमेषं ऋं।कानां पञ्चऋं।करातानि च । पडेय च तथा क्षोकाः संख्यातास्त्रच्वदर्शिना ॥ ३४२ ॥ द्यतः परं नि-घोधेदं मीपलं पर्व दारुणुम् । यत्र ते पुरुषव्याद्याः शख्नस्पर्शसहा युधि। प्रसावग्रह्मिनिष्पिष्टाः समीपे लवलाम्भसः ॥ ३४३ ॥ श्रापाने पानक-लिता देवेनाभिष्रचोदिताः । एरकान्विभिर्वज्ञे भिजप्तरितरेतरम३४४ यत्र सर्वेत्तयं कृत्वा तावुभी राम्देशवी । नातिचक्रमतुः कालं प्राप्तं सर्वहरं सहत्॥ ३४५॥ यत्रार्जनो द्वारचतीमेत्य पृष्णिविनासताम्। टप्टा विपादमगमन् परां चात्तिं नरपंभः ॥ ३४६ ॥ स संस्कृत्य गर-शह मात्लं शीरिमात्मनः। ददर्शं यद्वीराणामापाने वैशलं मात् ॥ ३४७ ॥ शरीरं वास्तुदेवस्य रामस्य च महात्मनः । संस्कारं लम्भया धर्मराज युधिष्ठिरको नारदमुनिका दर्शन हुआ, और नारद मुनिने उनसे यादवकुल के महा पादन (विनाश) की कथा कही है ॥३४०॥ इसवकार महाश्रद्धत श्राश्रमवासिक नामक पन्द्रहवां पर्व कहा है थ्रौर उसमें तत्त्वदर्शा भगवान व्यासजीने चयालीस अध्याय श्रीर एक सहस्र पांच सौ छः श्रांक कहे ह ॥ ३४१ ॥३४२ ॥ हे तपो-धनो ! इसके अनन्तर दारुण मौसल पव है, उसको तुम सुनो, जिस में ब्राह्मण के शापसे श्रीर दैवकी ही बेरणा से, मदापान के स्थान में जा, मदिरा पीकर, हित श्रहित के विचारसे फिरे हुए, पुरुषों में व्याव समान वृष्णिवंश के शर, कि-जो बाह्मण केशापसे नष्ट होचुकेथे, वह चारी समुद्र के तटपर (प्रभास पट्टन से आगी) उसे हुए पतेल नामक घास रूपो वजने प्रहार से एक दूसरे को काटकर शापस में ही कटमरे, यह कथा वर्णन करी है ॥ ३४३॥ ३४४॥ इस प्रकारवलराम श्रीर कृष्ण दानों अपने वंशका नाश करके, सबका नाश करने वाला, हमारा भी प्रयाणकाल श्रापहुँचा है,इपेसाजानकर श्रापभी, सबको हरनेवा ले कालका उहांचन न करके उसके अधीन होगए ॥ ३४५ ॥ तदनन्तर पुरुपों में श्रेष्ठ अर्जुन द्वारका में गया, श्रीर उसकी यादवों से सनी देखकर वडा शोक किया एवं परम दुःखी हुक्रा ॥ ३४६ ॥ तदनन्तर यादवों में श्रेष्ठ श्रपने मामा वस्तुदेव का श्रक्षिसंस्कार किया, जहां मदिरा पान किया था, उस स्थान में यादव बीरों का जो श्रापस में महासंहार हुआ था, उसको अपनी दृष्टि से देखा और तदनन्तर श्रजनेने महात्मा कृष्ण श्रीर वलराम के श्रीरका तथा यादवकल के अन्य प्रधान प्रधान पुरुषों के शरीरों का भी अग्निसंस्कार

ः महाभारत श्रादिपर्व # (ಕ್ಷಾ) [दूसरा सास कृष्णीनां च प्रधानतः ॥ ३४= ॥ स वृद्धवालमादाय द्वारवत्या-रततो जनम् । ददर्शापदि कष्टायां गाण्डीवस्य पराभवम् ॥ ३४६ ॥ 🏸 सर्वेषाञ्चेव दिव्यानासस्त्राणासमसन्नताम् । नाशं वृष्णिकलत्राणां प्रभा-हास्यासितित्वताम् ॥ ३५० ॥ हष्टा निवेदसापन्नो व्यालवाक्यप्रचोदितः धर्मराजं समासाच सन्त्यासं समरोचयत् ॥ ३५१ ॥ इत्येतन्मीपलं पर्व पोइसं परिकीत्तितम् । अध्यायाष्टौ समाख्याताः श्रोकनाश्च शत-एवन् ॥ ३५२॥ऋोकानां विश्वतिश्चैव संख्याता**स्तत्वदर्शिना । महाप्रा**-एवानिकं तरमार्ट्ड सप्तद्रां समृतम् ३५३ यत्र राज्यं परित्यंज्य पाएडवाः पुनवर्षमाः । द्वापद्या सहिता देव्या महाप्रस्थानमास्थिताः ॥ ३५४ ॥ यह तेऽहि इहिरोरं लोहित्यं प्राप्य सागरम् ॥ यत्राग्निनाः ची-दितञ्ज पार्थस्तसमें महातमने । ददौ सम्पूज्य तद्दिव्यं गाराङ्गीवं धनुष-क्तमम् । ३५५ ॥ यत्र भावश्चिपतितान्द्रौपदी च युधिष्ठिरः। दृष्टाहित्वा जगारीं व वर्षानववलोक्यंन्॥ ३५६॥ पतत् सप्तदेशं पर्व महाप्रास्था निर्फं स्मृतम् । यबाध्यायास्त्रयः घोक्ताः स्रोकानाञ्च शतत्रयम् । विश-तिक्ष तथा ऋोकाः संख्यातास्तत्वदर्शिना ॥ ३५७ ॥ स्वर्गपर्व ततो किया ॥ २४० ॥ ३४= ॥ इसके पीछे अर्जुन, द्वारका में से यदुंवंश के बृद्ध पुरुषों को, छियोंको तथा वालकों को लेकर हस्तिनापुर की जातेहुँय नार्ग में बड़ी विपत्तिमें आपड़ा उससमय **गांडीव धनुष** से काम हेनेपर भी उसका निरस्कार हुआ, सक्क दिव्य असी की अप्रसम्मता, याद्यकुलकी खियोंकी अप्रता और महाप्रवल प्र-भावोंकी इतित्यताको देखकर वह वड़ाश्टु:खी।हुन्ना, छीर व्यासजीके वक्तोंका उपवस पाकर अर्जुन ने धर्मराज के पास जा संन्यास धारज कारेकी इच्छा प्रकट की, ऐसा सोलहवें मौसलपर्व में वर्णन किया है, इसमें तरबद्शी व्यासजाने आठ अध्याय और तीनसी बीस रहोक कहे हैं. रचके पीछैं कबहवां महाप्रस्थानिकपर्व प्राता है॥३४६-॥ ३५३ ॥ जिसमें पुरुष श्रेष्ठ पारडव श्रपना राजपाद छोड़कर देवी द्रौपदीको साथ लिये हुए हिमालयकी और महाप्रस्थान को चलदिये ॥३५७॥ लाल कट्टइके तटपर आनेपर उनको अन्तिकादरीन हुआ, जहा अन्तिक प्रार्थना करने से अर्जुनने उसकी पूजा करके अपना दिव्य गाएडीव नामक उत्तन धनुष महात्मा श्रमिदेवको अर्पण करदिया, एक के रीक्षे एक घवड़ाकर गिरतेहुए अपने भाइयों को तथा द्वीपदी को भी गिरीहुई छोड़कर, उनकी क्या दशो हुई, यह जानने को भी पीछे की कोर कोन देखकर राजा युधिष्ठिर आगैको चलेगए, इस प्रकार स्वत्वर्या यहाप्रस्थान पर्व समाप्त होताहै तत्वदर्शी भगवान् वेद्व्यासने इस पर्दर्वे तीन श्रध्याय श्रीर तीनसी वीस श्रोक कहे हैं ॥॥३५५-३५०॥

 भाषानुवाद सहित श्रध्याय] (33) होयं दिव्यं यत्तदमानुषम् । प्राप्तं वैदर्थं स्वर्गान्नेष्टवान् यत्र धर्मराट् । धारोहं सुमहाप्राप्त श्रानृशंस्याच्छुना विना॥ ३५=॥ तामस्याविच-लां हात्वो स्थिति धर्मेमहात्मनः । श्वरूपं यत्र तत्त्वकृत्वा धर्मेणासौ समन्वितः ॥ ३५८ ॥ स्वर्गं प्राप्तः स च तथा यातनां विवुलां भूशम् । देवदतेन नरकं यत्र व्याजेन दर्शितम् ॥ ३६० ॥ श्रुश्राच यत्र धर्मात्मा म्रातणां परुणा गिरः। निदेशे वर्त्तमानानां देशे तर्वव वर्त्तताम्॥३६१॥ श्चर्नुदर्शितक्ष धर्मेण देवरामा च पाराउवः । आप्नुत्याकाशगद्वायां देहं त्यक्त्वा स मानुषम् ॥ ३६२ ॥ स्वधर्मनिर्जितं स्थानं स्वगं प्राप्य स धर्मराट् । सुमुद्दे प्रजितः सवः सेन्द्रैः सुरग्ग्यैः सह ॥ ३६३ ॥ एतद-ष्टादशं पूर्व द्रोक्त द्यासेन धीमता । श्रध्यायाः पञ्च संख्याताः पूर्वएय-हिमन्महात्मना ॥ २६४ ॥ श्ठोकानां हे शने चैव प्रसंख्याते तपोधनाः । नव क्योकोस्तर्थेवान्ये संख्याताः परमधिला ॥ ३६५ ॥ अष्टादशैवस-क्तानि पर्वार्येतान्यश्चेताः । शिलेषु इरिवंशध्य भविष्यश्च प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६६ ॥ दशस्रोकसहस्राणि विशत् स्टोक्सतानि च । खिलेषु हरि-वंशे च संख्यातानि महर्षिणा ॥ ३६७ ॥ एतत्सवं समाख्यातं भारते तदनन्तर यालोकिक और आधर्य ग्रचान्तीयाला स्वर्गनामक ब्रहारहवाँ पर्व द्याताहै, उसको लुना, सुभौ भी स्वर्गमें लेजायँ, इस इच्छासे प्रपने पीछे लगे ब्रातेहर कुलेके विना द्याईचित्त महाबुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिरने देवरथ नामक विमानमें बैठनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ३५⊭ ॥ इसबकार उन महात्माकी धर्म पर श्रविचलश्रद्धाको देखकर यमराज ने क़त्तेके कपको त्यागकर तहाँ ही साजात् दर्शन दिया॥३५८॥ और यधिष्टिरको अपने साथ सर्गर्मे लेगप, तदनंतर देवदृतने छल करकै यिविष्टिर को बड़े २ कप्ट दिखाये, ॥ ३६० ॥ जहां आगे जाकर धर्मात्मा यधिप्ररने श्रपने वशमें रहनेवाले भाइयोकी दयाको उद्वीपन करने वाली चिल्लाहर सुनी, ॥ ३६१ ॥ तदनन्तर यमराज ने र्थीर इन्द्रने श्रपनी श्राज्ञामें रहनेवाले पापियों के स्थान दिखाये फिर धर्मराज श्राकाश गंगामें स्नानफरके श्रपने मन्त्रप्यदेहको त्याग देव-गर्णी तथा इन्द्रसे पजित हो श्रपार श्रानंद पाकर श्रपने धर्म कर्मसे प्राप्तहृष स्वर्गरूपी उत्तम स्थानमें चलेगष, ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ इसप्रकार बुद्धिमान् व्यासजीने श्रटारहवां पर्व कहाहै। हे तपोधनो! परमञ्जूषि महात्मा व्यासजीने इस पर्वमें पाँच श्रध्याय श्रोर दो सी नी श्लोक की रचना करी है, इसप्रकार श्रठारह पर्व श्रनुक्रमणिका सहित कहे हैं ग्रौर खिल नामक प्रकरणमें हरिवंश पर्व श्रौर भविष्य पर्व कहे हैं.

महर्षि व्यासजीने खिलपर्वेमें श्रायेहुपः हरिवंश पर्वेमें वारह सहस्र श्लोक कहे हैं, ॥३६४॥ ३६७॥ इसप्रकार महाभारतमें सव पर्वेका

महाभारत ऋदिपर्व # द्सरा (00) पर्वसंप्रहः । श्रष्टादश समाजग्मरज्ञौहिएयो युयुत्सया । तन्महोदारुणं युद्धमहान्यप्रादशाभवत् ॥ ३६=॥ यो विद्याचतुरो वेदान साङ्गापनि-पदो द्विजः। न चाल्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद्विचत्त्रणः ॥ ३६८ ॥ श्रर्थशास्त्रसिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रसिदं महत् । कामशास्त्रसिदं प्रोक्तं व्या-सेनामितवुद्धिना ॥ ३७० ॥ श्रत्वा त्विदमुपाख्यानं श्रव्यमन्यन्न रोचते। पुंस्कोकिलगिरःश्रुत्वा रूचा ध्वाङ्क्षस्य वागिव ॥ ३७१ ॥ इतिहासी-र्त्तमादस्माञ्जायन्ते कविवुद्धयः। पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसस्विध-यस्रयः ॥ ३७२ ॥ श्रस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्त्तते द्विजाः । श्रन्त-रीज्ञस्य विषये प्रजा इव चतुर्विधाः ॥ ३०३ ॥ कियागुणानां सर्वेषामि-दमाख्यानमाश्रयः । इन्द्रियाणा तमस्तानां चित्रा इच मनःक्रिया ३७४ श्चनांशित्येतदाख्यानं कथा भवि न विद्यते । श्चाहारमनपाश्चित्य शरी-रस्येव धारणम् ॥ ३७५ ॥ इदं कविचरैः सर्वेराख्यानमुपजीव्यते । उद-यप्रेप्तिभिर्द्धत्येरभिजात इवेश्वरः ॥ १७६ ॥ ग्रस्य काव्यस्य कवयो न संग्रह कहा है श्रठारह अज्ञौहिशी लेना कुरुवेशमें यद करनेको इकटी हुईथी, उसका महाघोर युद्ध बरावर श्रठारह दिनतक होतारहा था ॥ ३६= ॥ अंगों श्रोर उपनिषदों सहित चारों वेदोंका जाननेवाला भी यदि इस इतिहासको न जानता हाय तो उसको चतुर नहीं कहा जासकता ॥ ३६८ ॥ व्योंकि-परम बुद्धिमान् भगवान् वेद्व्यासजीने इस महाभारतकी रचनामें महान्, श्रर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र श्रौर कामशास्त्र कड़ा है अर्थात् इसमें सब ही विषय कहे हैं ॥ ३००॥ जिसने नर कोकिल के मधुर स्वरीको छनाहै उसको जैसे कौएकी कुछी वाणी श्रच्छी नहीं लगती, तैसे ही जिसने इस महाभारतको सन्तिया है. उसको श्रीर किसी भी कथाको सननेकी रुचि नहीं होती॥३७१॥ जैसे तीनो लोकोंको उत्पत्ति पञ्चमहाभतमेंसे होती है तैसे ही सकल कवियोंकी वृद्धि. इस उत्तम इतिहासको सुननेसे प्रफान्नित होतीहै ३७२ श्रीर हे बाह्मणो ! जैसे चार प्रकारकी सृष्टि श्रन्तरिक्तमें रहतीहै. तैसे ही सब पराणोंकी कथाएँ इस महाभारतके श्रन्तर्गत हैं ॥३७३॥ जैसे सव इन्द्रियोंकी विचित्र कियाएं मनके प्रधीन रहतीहैं, तैसे ही लौकिक तथा वैदिक सब कियाओं के फर्लों के उत्तम साधन इस महाभारतके श्राध्यमें रहतेहैं ॥ ३७४ ॥ श्रीर जैसे भोजनके विना शरीर नहीं टिक सकता तैसे ही इसके श्राथयके विना एक भीकथा इस अतल पर नहीं टिकसकती ॥ ३०५ ॥ उन्नति चाहनेवाले छेवक असे ऊलीन स्वामी पर थड़ा रखतेहें, तैसे ही सकल महा किन भी इस बडीभारी कथाके अपर श्रापना श्राजीवन रखते हैं ॥ ३७६ ॥ श्रीर जैसे उत्तम गृहस्थ श्राश्रम ------

ः भाषानुबाद् सहितः समर्था विशेषणे । साधोरिय गृहस्थस्य शेपास्त्रय द्वाधमाः ॥३७० ॥ धर्मे गतिर्भवतु वः सततोत्थितानां स (रोक्षणव परलोकगतस्य वन्धः श्चर्या व्वियक्ष निप्रारेषि लेब्यमाना नैवासभावसूपवान्ति न च स्थि-रत्वम् ॥ ३७= ॥ हैपायनौष्ठवृद्धनिःखनमप्रसेयं पुग्यं पवित्रमथ पापएरं शिवद्ध । यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं कि नस्य प्रकरजलें-रभिषेचनेन ॥ ३७९॥ यद्दा कुरुते पापं ब्राह्मण्स्विन्द्रयेखरेन । महा-भारतमाल्याय सम्ध्यां मुख्यति पश्चिमाम् ॥ ३८० ॥ यदात्री कुरुते पापं कर्मणा सनना गिरा । महाभारतमान्याय पूर्वा सन्ध्यां प्रम्च्यते ॥३=१॥यो गोरानं यानवाराहरायं ददानि विकाय घेदविद्धपे च बहुअँताय। पुग्याञ्च भारतक्षयां ग्रुणुवाधा नित्यं गुरुवं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥ ३=२ ॥ शाष्यानं तदिवमतुत्तमं महाधं विहोयं महदिह पर्वसं-ब्रहेण । श्रुत्वादी भवति नृणां मुलावनाहं विस्तीर्ण लवलजलं यथा के सामने दूसरे आश्रम उत्तम नहीं मानेजाने, तेसे ही इस फाव्यसे श्रच्छा काव्य कोई भी कवि नहीं यनासकता ॥ ३७० ॥ हे तपस्वियों ! तुम संसारमावनाश्रोदो त्यांनी शीर सावधान रहदार शपने शिलको

धर्मके ऊपर निश्चल करो,क्योंकि-परलोदामें जाने समय पेवल एक धर्म ही जहार के तुरु पुरुष धन और विव्यंक्त सेवल फरने हैं तो है भी बहु अपने मने उनके श्रेष्ठ होनेका विश्वास नहीं फरते, दुनना ही नहीं किन्तु वह इन दोनोंके स्थिरपंक्ते भी नहीं पानेक-७० इस्प्रेहणयन नहीं किन्तु वह इन दोनोंके स्थिरपंक्ते भी नहीं पानेक-७० इस्प्रेहणयन के द्वावारे में ते निकलाहुद्या यह भारत ज्वाने श्रेष्ठ हानका साधन, पित्र, पापेंको हरनेवाला श्रीर हान है, अं पंचतेहुए भारतको सुनता है, इसको पुष्कर तीर्थमें स्तान करनेकी व्यायायस्थकता है ? अर्थात् तार्थोमें स्तान करनेकी व्यायायस्थकता है ? अर्थात् तार्थोमें स्तान करनेकी वो पुण्य होताहै, उसके छिक पुण्य इस भारत हो सुननेकी मिलताही ॥ ३०६ ॥ बाह्मण इन्द्रियोंसे दिनमें जो पाप करता है है उस पापके साथकालको महाभारत एडकर कुटजाता है। इन्द्राला देते में त्राता करनेकी पापकरता है, उस पापके प्रातःकाल के समय महाभारतको पहुकर सुक्त होजाता है ॥ ३२१ ॥ वेद पढेहुए

ह्योर श्रमेको विचात्रोंके प्राता ब्राह्मणको सोमेले महेटुप सांगीवाली सो गीए देनेसे जो पुर्व मनुष्वको प्राप्त होगाई, उतना ही पुर्व इस महा भारतको पवित्र कथाको.सुनने से मनुष्यको गात होताई।। १२२॥ जिस हे पास जहाज है उस मनुष्यको जैसे समुद्रके पार होना सहज होता है, सेसे ही मनुष्य महाभारतको सुननेसे पहिले इस पर्वसंत्रहाध्याय को सन्तेय तो, विस्तारवाले, वड़े २ विषयोंसे गुक्त, सबसे श्रेष्ठ और 9२) * महाभारत ग्रादिपर्व * [तीसरा

ण्हावेत ॥ ३८३ ॥ इतिश्रीमहाभारते श्रादिपर्विण पर्वसंग्रहः समाप्तः २ सौतिरवाच ! जनमेजयः पारिचितः सह भ्रातृभिः कुरुचेत्रे दीर्घ-स्वतुपास्ते । तस्य भ्रातरस्वयः श्रुतसेन उन्नसेनो भीमसेन इति । तेषु तत्सवपुपासीनेप्यागच्छत् सारमेथः॥ १ ॥ स जनमेजयस्य भ्रा-तृभिरसिहते रोस्यमाणो मातुः सभीपसुपानच्छत् ॥ २ ॥ तं माता

तासरार का राज्यसम्बा पानु उत्तरा है। त्या स्वास्त्र स्व

वर्स्सर टिज्योंसे भरेहुए इस महाभारतको सहजमें ही समभसकता है ॥ ३=३ ॥ इति द्वितीय श्रम्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥

के लाथ छुरहेदमें बहुत क्ष्मवर्मे होसकोदा । यहका अनुष्ठान कर रहा था. उसके प्रतस्तेन, उपलेन और भी जीन नाजवाले तीन भाई थे, वह भी उस वपने भेडे थे, उस समय उनसे समीर सरमाका पुत्र (इस नामवादी देवताओं को इसीका पुत्र सारमेव) आया॥ १॥ राजा अन्योत्यये भाइपौते उस हासेको प्रत्यभूमिम आया॥ १ ॥ राजा तय वह रोता २ अपनी माताके पास गया॥ २॥ माताने उसको अक-स्मात रोतेहुए देखकर जहां, सि-चैटा । क्यों पेता है ? तुक्षे किसने मारा है ?॥ ३॥ माताके वृक्षके उसने उसर दिया कि-राजा जनमे-जयके भाइपौते सुक्षे मारा है ॥ १॥ उसकीमाताने कहां, कि-तृने प्रकट

डप्रश्रद्यांते कहा कि-राजा परीक्तितका पुत्र जनमेक्य ध्रपने भाइयों

में उनका कोई प्रायराथ किया होगा, इसकारण ही उन्होंने तुसे मारा होता ॥ ५ ॥ उसरे उसरे दिया. कि-मेने उनका कुछ भी श्रपराध नहीं किया था, देंने उनके यक्के हिवकों भी नहीं देखा था और उसको साटा भी नहीं था ॥ ६ ॥ यह सुनकर पुत्रके दुःखले बड़ी दुःखित हुई उसकी माता उरमा. अधिक समय तक होनेवाले उस यक्कों भाइयों के लाथ अनुद्वानमें वैठेह्य राजा जनसेक्यमे पास गई और अध्ययं अस्तर उनसे कहने सभी, कि-हस मेरे पुत्रने तुम्हारा हुछ भी श्रापक

सहर जात वाहर जात, प्राप्त है जिस के साथ के स्थाप के स्था

 भाषानुषाद सहित । (50) मिस्तोऽनपकारी तस्माददृष्ट्रन्यां भयमागमिन्यतीति ॥ १ ॥ जन-मेजन प्रमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं संभ्रान्तो विषयण्छासीत्॥१०॥ स तहिमन सभे समाते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहितमनुरूपमन्यि-फलमानः परं यत्नमकरोत यो मे पापकृत्यां शमयेदिति ॥ ११॥ स कदाचिन्सुगयां गतः पारीक्षितो जनमेजयः फर्स्मिखित स्वधिपये छा-असमपर्यत् ॥१२॥ तत्र कश्चिडपिरासाञ्चके श्रुतथवा नाम तस्य नप-रवभिरतः पुत्र ग्रास्ते सोमश्रवा नाम ॥ १३ ॥ तस्य तं पुत्रमभिगभ्य जनमेजपः पारीचितः पौरोहित्याय वर्षे ॥ १४ ॥ स नमस्कृत्य तम्पि-मुबाच भगवन्तयं तव पुत्रो सम पुरोहितोऽस्त्विति ॥ १५ ॥ स एव-मुँकः प्रत्युदाच जनमेजयं भो जनमेजय पुत्रोऽयं मम सर्पाञ्जातो म-हातपर्श्वा स्वाध्यायसम्बन्नो मत्तपोबीर्व्यसम्भुतौ मन्छुकपीतवत्या-रतस्याः कृती जातः ॥ १६ ॥ समधीऽयं भवतः सर्वाः पापकृत्याः शम-वितुसन्तरेणु सहादेवकृत्याम् ॥ १७ ॥ श्रस्यत्वेकम्पाशुवनं यदेनं कश्चि-वह कुछ भी नहीं बोले, तब तो सरमा फट्टने लगी, फि—मेरे निरप-राध पत्रको जुमने मारा है तो जान्नो तुम्हारे अपर कोई धनर्कित विपत्ति प्रावैगी ॥ ८ ॥ इसप्रकार दिव्य कृती सरमाके शाप देने पर राजा जनमेजय चिन्तामें पड़कर बढ़ा दुःखी गुणा॥१०॥ उस यए के समाप्त होनेपर वह हस्तिनापुर में श्राया श्रीर उस शापका प्राय-क्षित्त कराकर वल, श्रायु तथा प्राणीका नाश करनेवाली कृत्याको शान्त करकी मुक्ती कोई आपत्तिसे सुक्तकरदेय, ऐसं योग्य पुरोहितको पानेकी इच्छासे यत्न करनेलगा ॥ ११ ॥ उस परीक्षितके पुत्र राजा जनमे-जयने एक दिन शिकार में जाकर किसी अपनेही प्रदेशमें एक आश्रम देखा ॥ १२ ॥ उस घाधम में एक श्रुतश्रवा नाम वाले ऋषि रहते थे, उनका एक सोमधवानामक पत्र थाँ, जो निरन्तर तपस्या में ही लगा रहताथा॥१३॥ उस ऋषिकमारको श्रवना परोहित बनाने की इच्छाबाले परीचित के पुत्र राजा जनमेजय ने ऋषिके पास जाकर प्रणाम किया श्रीर इसप्रकार कहने लगे. कि-हे भगवन् ! आपके यह पत्र मेरे पुरोहित बनजायँ, पेसी कृपा करिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजा जन-मेजयके इसप्रकार कहने पर ऋषिने जनमेजयको उत्तर दिया, कि— यह मेरा एव वडा तपस्वी है. निरन्तर चेदका स्वाध्याय किया करता है और तपके बीर्य से पुष्ट हुआ है। एक समय एक सर्पिणीने मेरे चीर्यको पीलिया था, उसके ही पेटसे यह उत्पन्न हुन्ना है ॥ १६ ॥ यह एक महादेव के अपराधसे प्राप्त हुए शापको छोडकर अन्य सकल (७४) # महाभारत श्रादिपर्य # [तीसरा दृशाक्षणः कश्चिद्वर्थमिमयाचेक्षः तस्मै द्याद्यं यखेतदुःसहस्तं तती नयस्वैनमिति ॥ १० ॥ तेनैवमुक्को जतमेजयस्तं प्रत्युवाधं भगवस्तः वया मित्र्यविद्याद्यादेशित ॥ १८ ॥ त त पुरोहितमुगोदायोगाधृज्ञी आतृष्य नयायं वृत उपाध्यायो यवयं त्रृयातत् कार्य्यमविचारयद्भिभेव-द्विरिति तेनैवमुक्का आतरस्तस्य तथा चक्षः । स तथा अतृत् स्वित्वर्यत्त्रस्त्रितः तेनैवमुक्का आतरस्तस्य तथा चक्षः । स तथा अतृत् स्वित्वर्यत्त्रस्त्रितः तेनैवमुक्का आतरस्तस्य तथा चक्षः । स तथा अतृत् स्वित्वर्यत्तर्योगामायाः ॥२०॥ पतिस्त्रन्तरस्तर्य रिष्यायायोगो वस्युः उपमन्युराजिण्वेदश्वरिति ॥ २१ ॥ स पर्का श्रिण्यमार्गिण पाञ्चादयं भेवस्य

उपमन्युरारुणिवेंदश्चेति ॥ २१ ॥ स एकं शिष्यमारुणि पाञ्चाल्यं प्रेप-योगास गच्छ केदारखग्डं वधानेति ॥ २२ ॥ स उपाध्यायेन संदिष्ट श्राहणिः पञ्चालयस्तत्र गत्वा तत् केदारखण्डं वर्द् नाशकत् स क्लिश्यमानोऽपश्यद्वपायं भवत्वेवं करिष्यामीति ॥ २३ ॥ स तत्र एक गृह नियम है, कि-कोई भी बाह्मण इसके पास आकर किसी वस्तुकी याचना करै तो यह उसको वही देता है, यदि तुम इसके इस बतको परा करने का साहस रखते होश्रो तो तुम भलेही इसको लिवाजाश्रो ॥ १= ॥ श्रतश्रवाकी इस वातको सुनकर जनमेजयने उत्तर दिया कि-महाराज । आपने जो भाद्या दी है, मैं ऐसाही करने की उद्यत हूँ, ॥ १८ ॥ तदनन्तर जनमेजयने उस मुनिक्रमारको अपना पुरोहित बनालिया और उनको साथ लेकर अपनी राजधानीमें आये. श्रीर श्रपने भाइयों से कहा कि-इन मुनिक्कमारको मैंने श्रपना परोहित बनायाहै, इसकारण श्राजसे यह जो कुछ भी कहें, तुम विना विचारे तैसाही करना, ऐसा कहनेपर जनमेजयके भाई अपने भाई की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेलगे, राजा जनमेजय अपने भाइयोंको इस प्रकार सचना देकर तत्त्रशिला नगरी पर चढ़ाई करने को गए और उस देश को अपने वशमें करितया॥ २०॥ उस समय एक स्थान पर आयोदधीस्य नामक एक ऋषि रहते थे, उन ऋषिके यहाँ आरुणि, उपमन्य और वेद नामवाले तीन शिष्य पढ़ने को रहते थे॥ २१॥ एक समय ऋषिने अपने शिष्यों में से पांचाल देशमें रहनेवाले आहिता नामक शिष्य को अपने पास बुलाकर आज्ञा दी,कि-वेटा! तुम खेत

पे जाकर क्यारियों की मेंड वाँघदों ॥ २२ ॥ पांचालदेशवासी आकित् गुरुकी आवानुसार खेतपर गया तहाँ बहुतसा क्लेग उठाकर भी क्यारियों की मेंड न बनासका और मनमें वड़ा दुःखी हुआ, परन्तु अन्तर्में उसको एक उपाय स्का और मनमें मन्देल लगा कि—ठीक है, लाओ ऐसोही कहाँ ॥ २३ ॥ ऐसा मनहीं मनमें कहकर जहाँ पांचा पर

श्रध्याय] भाषानुवाद सहित # (७५) संविवेश केदारसगढे शयाने च तथा तर्सिमस्तद्वदक्षं तस्थौ ॥ २४ ॥ ततः कदाचिद्रपाध्याय श्रायोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत् क शारुणिः पाञ्चाह्यो गत इति ॥ २५ ॥ ते तं प्रत्यृ चुर्गगवंस्त्वयैव प्रेपितो गच्छ केवारखर्डं षधानेति । स एवमकस्तान् शिष्यान् प्रत्युवाच तस्मा-त्तव सर्वे गच्छामो यव स गव इति ॥ २६ ॥ स तव गव्वा वस्याह-नाय शब्दञ्चकार भो श्रारुले पाञ्चालय कासि चर्त्सहीति ॥ २०॥ स तच्छु:बारुणिरुपाध्यायबाययं तस्मात् फेदारखरडात् सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे ॥ २= ॥ प्रोबाच चैनमयमस्म्यत्र केदारखगडे तिःसरमाण्युदकमवारणीयं संरोद्धं संविष्टो भगवञ्द्वव्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्थ्य केदारम्बर्ग्डं भवन्तस्रुपस्थितः ॥ २६ ॥ तद्भिवार्यः भगवन्तमाद्यापयत भवान् कमर्थं करवाणीति ॥ ३० ॥ स एवमुक्त डपाध्यायः प्रत्युवाच यस्माञ्चवान् फेदारखग्डं विदार्थ्यंत्थितस्तस्मा द्वहालक एव नाम्ना भवान् भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः ॥ ३१ ॥ यस्माच्च त्वया महन्वनमन्धितं तस्माच्छेयोऽवाष्स्यसि। सर्वे एव ते श्रापही लंबा २ लेटरहा, ऐसा करने पर प्यारी में से जो पानी निक-लाजाता था वह रुक्तगया॥ २४॥ तदनन्तर फुछ समय वीतने पर उपाष्याय आयोदघौम्यने अपने इंसरे दोनो शिष्योसे वृक्ता, कि-पांचालदेश'का आविष्ण कहाँगया है ॥ २५ ॥ शिष्यीने उत्तर दिया कि-महाराज ! आपने ही तो उसको खेतमें पानीकी प्यारियें वाथने को भेजा है, यह वात याद श्रातेही घीम्य ऋषिने शिष्योंसे कहा, कि-जहाँ श्राकृषि गया है, चलो तहाँ ही एम भी चलें ॥ २६ ॥ तदनन्तर धीम्यऋषिने खेतपर जाकर उसको पुकारकर बुलाया कि–क्रो पांचाल देशवासी आविष् ! तू कहाँ हैं, यहाँ या, श्राविष् गुरुके बुलानेका शब्द सनते ही, जिस प्यारीकी मेंडपर लेटा ग्रुणा था तहाँसे चड़ाहो शुरु के सामने श्राकर उपस्थित होगया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रोर उनको प्रणाम करके कहने लगा, कि-महाराज । यह हूँ, पवारी में से पानी बहाजाता था, किसी प्रकार रुक नहींसका तय मैं शाप ही उस वहतेहुए पानीको रोकनेके लिये, फ्यारीमें श्रांडा २ लेटगया था, इतनेहीमें श्रापका शब्द सुननेके साथ ही क्यारीको तोड पानीको चहताहुआ छोडकर यहां श्रापके पास श्रायाहूँ श्रीर श्रापको प्रणाम करता हूँ, कहिये श्रव श्राप की किस श्रादाका पालन कहूँ ॥ २६ ॥ ३० ॥ शारुणि के वचनको सु-नकर गुरुने उससे कहा, कि-तू प्यारीको तोड़कर यहां श्राया है इसकारण श्राजसे तू उदालक कहावेगा तथा ऋषिने उसके ऊपर कृपा करके यह भी कहा कि—हे वेटा श्रारुणि ! तूने मेरी श्राज्ञाका

पीवानमपश्यदुवाज जैनं बत्तोपमन्यो केन बुक्ति फरण्यांचे पीवानिस |
इसिति ॥ ३६ ॥ क उपाध्यायंमस्युवाज भो भैद्येण वृद्धि करण्यांभीति |
तमुपाश्यायः प्रस्युवाज ॥ ३० ॥ मञ्यनिवेच भैद्यं नाप्योक्तञ्यमिति ।
तमुपाश्यायः प्रस्युवाज ॥ ३० ॥ मञ्यनिवेच भैद्यं नाप्योक्तञ्यमिति ।
तत्त्रायुक्तो भैद्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेदयत्॥ ३६ ॥ सत्सादुपाश्यायः सर्वमेन भैद्यमगृह्णात्। सत्यायुक्तः पुनररक्षद्वाः प्रद्वित्वा |
निश्चायुक्ते पुरुकुक्तमानस्य गुरोरप्रतः स्थित्वा । वर्षमायुक्ति । ३६ ॥ तमुपाश्यायद्वयापि पीवानमेव दृष्ट्रोवाज वरसोपमन्यो सर्वमग्रुक्तराद्यं भैद्यं प्रद्वामि केनेदानीं वृद्धि कर्ययस्ति ॥ ४० ॥ सप्यमुक्तज्यायंत्रस्यु प्रदा प्राक्ति क्रां स्वतं है। इस्ते तेरा कर्याण्यायं भ्रस्यु प्रदा प्रपालनिक क्रिया है, इस्ते तेरा कर्याण्यायं भ्रस्यु प्रदा प्राक्ति ज्ञास्य व वेद तथा धर्मशास्त्रके प्रस्य कृति वना पढे ही ज्ञानावैत्री ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस्ताकार ग्रुव्ये वरदान पाकर पांचालदेशवाली ।
आविष्य अपने देशको चलागया, श्रायोद धीम्य श्विषके दूसरे शिष्य

का नाम खपमन्यु था ॥ ३३ ॥ उस शिष्यको बुलाकर एक समय गुरु ने कहा, कि-हे वेटा उपमन्य ! तु गौपं चरानेको जा ॥ ३४ ॥ तहन-न्तर वह गुरुकी श्राहा तुसार गौएं चरामेलगा. दिनभर गौएं चरायी और सायंकालके समय गौद्योंको आश्रममें लाकर गुरुके पास पहुँचा श्रीर उनको प्रणाम करके खड़ा होगया॥ ३५॥ उपाध्यायने उसको ष्ट्रष्ट पृष्ट देखकर वृक्षा कि-।टा उपमन्यु ! तू क्या खाता है ? कि-जिससे तू पेसा श्रत्यनत हुए पुष्ट होरहा है।।३६॥ उसने उपाध्याय को उत्तर दिया कि-महाराज ! मैं केवल भिन्ना मांगकर (लाता हैं) उससे ही अपना निर्वाह करता हूँ, उपाध्यायने इस से कहा कि-॥ ३७ ॥ आजसे मांगकर लाईहुई भिन्ना मुभे दिखाए विना मत खाना पेसा कहदेने पर वह शिष्य मांगकर लाई हुई भिन्ना प्रतिदिन उपा ध्यायको निवेदन करनेलगा, ॥ ३= ॥ और उपाध्याय उसकी लाई. हुई सब भिज्ञाको आप लेनेलगे। एक समय किसी दिन गौएं चरा-कर आया और सायंकालके समय गुरुके आश्रममें उनके पास जा नमस्कारे करके खड़ा रहा, उसको हुए पुष्ट देखकर उन्होंने फिर कहा, कि-घेटा उपमन्य ! मैं तेरी सब भिन्ना लेलेता हूँ, इस दशामें

त् अपना निर्वाह किस आधार पर करता है ? ॥ ३६ ॥ ४० ॥ ऐसा

बाज भगवते निवेश पूर्वभपरं चरामि तेन वृक्ति करूपवामीति तमुपा थ्यायः प्रत्यवाच॥४१॥ नैपान्याय्या गुरुवृत्तिरन्येपामि भैदयोपजीविनां बृत्यपरोधं करोपि इत्येवं वक्तमानो लुज्धोऽसीति ॥४२॥ स तधेत्यक्तवा मा घरतात् रितत्याच पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायस्याव्रतः स्थि-त्वा नमखके ॥ ४३ ॥ तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव एए। पूनरवाच बत्सोपमन्यो शहं ते सर्व भैदयं गृहामिनं चान्यव्यक्तिः पीवानसि भृशं क्षेत्र पृक्ति कल्पयसीति ॥ ४४ ॥ स एवमुकस्तमुपाभ्यायं प्रत्युवाच भी एरा।सो गदां पयला वृत्ति कर्षयामीति तमुवाचीपाध्यायो नैतन्त्याय्यं पप उपयोक्तं भवतो मया नाभ्यनुहानमिति॥ ४५ ॥ स तथेति प्रतिहाय गा रिहत्वा पुनरुपाध्यायगृहमेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥४६॥ तमुपाष्पायः पीयानमेव ह्योवाच वत्सोपमन्यो भेषयं नाश्नासि नया-बुभने पर छपमन्यने उपाध्यायको उत्तर दिया कि-महाराज ! मैं पहिले मांगकर लाईहई भिद्धा आपको निवेदन फरदेता हैं और इसरी बार फिर भिन्ना मांगकर लाता हूँ, उससे श्रपना निर्वाह फरताहूँ, यह दात सुनकर उपाध्यायने उससे फहा. कि— ॥ ४१ ॥ ऐसा दर्जाव करना ठींक नहीं है, पर्वोकि-दो समय भिद्धा मांगकरत् इसरे भिद्धा मांगनेवाले विद्यार्थियोंके निर्वाहमें याथा डालता है, इससे प्रतीत होता है, कि-तृ लोभी है, अब आगेसे ऐसा मत करना॥ ४२॥ उप-मन्यने उपाध्यायकी इस श्राहाको मस्तक पर चढाकर कहा, कि-

कं काममें लगगया श्रीर गीएं चराकर सायंकालके समय उपाध्यायके शाश्रममें श्रा उनके सामने खड़ा होगया श्रीर प्रशाम किया॥ ४३॥ तद मी हुए पुट देककर उपाध्यायने उससे किर कहा, कि—हे बेटा उपाम्यु! में तेरी स्वयंक्षालेता, हैं श्रीर श्रव तू दूसरी बार मी मित्ता नहीं मांगता है, तो भी तू शरीरसे वड़ा हुए पुट रहता है, श्रतः वता कि—चू किस श्राधार पर निर्वाह रकता है, इसप्रकार दूरता तव उपाम्युने उपाध्यायको उत्तर दिया कि—हे महाराज! में हन गौ होंका हुए पीकर निर्वाह करतेता हूँ, उपाध्यायने कहा, कि—स्रे! मेरी श्राक्षाके विना तू गौ श्रीका हुए पीलेता है, यह श्रन्यायकरता है, श्राक्षाक विना तू गौ श्रीका हुए पीलेता है, यह श्रन्यायकरता है, श्राक्षाक विना स्वाहा करतेता है, यह श्रन्यायकरता है, श्राक्षा विना पाये गौ श्रीका हुप मत्ता ।। ४४॥॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ सम प्रति हो स्वर्क वह किर गौ श्रोको वराने के काममें प्रवत्त हो गया श्रीर किर एक समय गौ शों वो चरा

कर उपाध्यायके घर जा उनके समीपमें खडा होगया छोर उन को प्रणाम किया॥ ४६॥ उपाध्यायने उसको हुए पुष्ट देखकर बुक्ता, कि

द्यव ब्रागे से ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा कहकर वह फिर गीएं चराने

(७=) * महाभारत श्रादिषर्व * [तीसरा न्यास्तिष्य पयो न पिवसि पीवानसि भूगं केनेदानी वृत्तिं करण्यसीति ॥ ४०॥ स प्रवृक्त उपाध्यापं ग्रस्युवाच भोः फेने पिवामियभिमे वस्ता भावणां रतनाय पिवन्त उद्विरित्ता ॥ ४०॥ स प्रवृक्ताच प्रवृत्ताच पते त्वद्युक्तरण्या ग्रुखन्तो वस्ताः प्रभृततरं फेनमृद्रिरित्त तदेपामिय स्तानां दृत्युपरोधं करोत्येवांवर्त्तामाः फेनमिय भवान पातु मेदतीति स तथेशि प्रविश्वय पुनररक्ताः ॥ ४८॥ तथा प्रतिपिद्धो भेदरं नाम्नाति न चाल्यचरितिपया न पिवति फेन नोपपुष्कंत सदाचिदरण्ये पुणान्ता स्तिपिद्धो भेदरं नाम्नाति न चाल्यचरितिपया न पिवति फेन नोपपुष्कंत सदाचिदरण्ये पुणान्ता स्तिपिद्धा स्तिपिद्धो स्वरं नाम्नाति न चाल्यचरितिपया न पिवति फेन नोपपुष्कंत सदाचिदरण्ये पुणान्ता स्तिपिद्धा स्तिपिद्धो स्तिप्ता स्तिपिद्धो स्तिपत्ति स्ति न नाप्तिककटकवी-

स्तीऽक्षविश्वभन्नवत् ॥ ५० ॥ स्र तैरक्षविश्वभन्नितं । सारितिक्कन्नुरुद्धै-स्तीद्वाविषाकेश्चन्नध्यपद्वतोऽन्यो वभृत ततः सोऽन्योऽपि गंकम्यमाणः कृपे पपात ॥५१ ॥ अय तस्मिन्तातान्डवित सृत्यं चास्ताचताम्बन्धिति । उपाध्यायः शिष्यानवोचत् नायात्युपमन्युः त ऊचुरेनं गतो गा रचितु मिति तानाद्व उपाध्यायः ॥ ५२ ॥ मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिपिद्धः स्र नि-वेटा उपमन्यु ! त् भित्ता मांगकर ताता है उसको खाता नहीं, दूसरी वार भित्ता मांगकर ताता नहीं, और गोओंका दूध भी पीता नहीं है, तो भी त् वडा हृष्ट पुष्ट होरहा है, सो वता कि—श्चय त् किस आधार पर्धअपना निवहि करता है, यह सुनकर उपमन्यने उत्तर दिया कि—

महाराज ! नीर्ण वजुडोंको हुंथ पिलाती हैं, उस समय जो भाग गिर-पंड़ते हैं उनको खाकर ही में अपना निर्वाह कर लेता हूँ॥ ४०॥ ४८॥ उपाध्यायने कहा, कि-आः! यह शान्त समाय वजुड़े तेरे उपर दया करके अधिक भाग गिरादेते हैं, अतः इत्यकार आजीविका करनेसे तु उनकी आजीविका में याथा डालता है, इसकारण तु उन भागों को खाकर भी निर्वाह मत किया कर, अच्छा अय पेसा नहीं कर्तगा, पेसा कहकर उपमन्यु फिर गौर्ण चरानेलगा॥४६॥इस प्रकार गुरुके निर्पेष करते पर उसने मिन्नादो निर्वाह करना खेडिंदिया था, दुसरीवार भिन्नामांगता भी छोड़दी थी, दूध पीना वद कर दिया था और अब भागों से निर्वाह करना भी छोड़ दिया, केवल उपचास करने लगा, पक दिन उसने दनकें भूखसे घयंड़ाकर आकरे पत्ने खालिये॥ ५०॥ खारे, तीले, ुद्धुर, उसे तथा पेटमें जलन डालनेवाली आकरे पत्ते खानेसे उस की खाँखें फुटगई और वह विचारा अंथा होगया, तयापि जंगल में

शुक्ती बौद्योंको चराता हुन्या फिरने लगा, एकदिन वनमें गौन्रोको चराते में फिरते २ एक कुए में जापड़ा ॥ ५१ ॥ सुर्योक्त होजाने पर भी उपमन्धु लौटकर घर नहीं खावां, तव खावोदचीम्य उपाध्यायने सुक्तरे शिव्यक्ते दुक्ता, कि —म्ररे श्राज उपमन्धु क्यों नहीं श्रांथाशिष्यने उत्तर दिया, कि —महाराज ! श्रापकी खाबासे वह गौरं चराने वनमें गयी है, उपाध्यायने उत्तर शिव्यक्ते कुता और जराने वनमें गयी है, उपाध्यायने उत्तर शिव्यक्ते कहा, कि —॥ ५२॥ मैंने उपमन्धु

हमिति तमुपाथायः प्रत्युवाचं कथं त्वमस्मिन् हुऐ पतित हति ॥५४॥ स उपाथायं प्रत्युवाचं क्रक्षेत्राणि भद्यित्वाच्योभूतेऽस्स्यतः हुऐ पतित हति ॥५४॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाचं व्यविवनी स्तृहि तो देविन पत्नी त्वां चचापान्तं कर्तारायिति स प्रवमुक्त उपाध्यायेनोपानस्यर्श्विय

नौस्तोतुमुपचक्रमे देवावरिवनौ वाग्मिऋ ग्भिः ॥५६ ॥पपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रमान् निरा वाशंसामितपसा धनन्तौ दिव्यौ सुपर्वे विरजी विमाना वधिक्तिपन्तौ भुवनानि विश्वा ॥ ५०॥ हिरएमयौ शकुनी साम्परायौ का भोजन सब प्रकार से यंद करविया है, इसकारण उसको श्रवण्य ही क्रोध श्राया होगा, इसी कारण श्राज वह इतना समय होजाने पर भी नहां श्राया है, इसकारण चलो हम उसको ढंढलार्चे, इसप्रकार शिष्य सहित धौम्यऋषि वनमें जाकर उपमन्यु को पुकारने लगे कि-श्ररे उपमन्य ! घो उपमन्य ! तू फहाँ है ? वेटा यहाँ श्रा ॥ ५३ ॥ उपाध्यायके पुकारने को सनकर कुए में से ही उपमन्यु ऊँचे स्वर से वोला, कि-हे गुरु महाराँज ! मैं इस फुएमें गिरगया हैं. उपाध्यायने उससे वृक्ता, कि-बेटा ! तू कुएमें कैसे गिरगया ? उसने उत्तर दिया कि—महाराज ग्राकके पत्ते खाने ले में श्रंथा होगया हूँ, इसकारण फिरते २ कुषमें जापड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यह सुनकर गुनने कहा, कि— वेटा! तो तृ देवलोक के वैद्य श्रदिवनीकुमारोंकी स्तुति कर वह तुक्षे नेत्रदंगे, इसप्रकार गुरुके कहने से उपमन्यु, ऋग्वेदकी ऋचायों से देयता अश्वनीक्रमारों की स्तृति करनेलगा ॥ ५६॥ हे अश्वनीद्धमारों! तुम चृष्टिसे पहिले विद्यमान थे, तुमही सकल भूतों में प्रधान-हिरएय गर्भरूप से उत्पन्न हुए हो, तुमही विचित्र प्रपंचरूप से प्रकट होतेहो, देश काल श्रोर श्रवस्थाके द्वारा तुम्हारा परिमाण नहीं किया जासकता, में बाणी श्रीर तपस्याके द्वारा तुम्है श्रात्मस्वरूपसे पानेकी इच्छा रखता हूँ, तुमही माया श्रीर मायारूढ़ चैतन्यरूप से प्रकाशित होते हो, तुम शरीरऋषीं यृत्तपर पत्तीऋपसे रहते हो, तुम प्रशतिमें रहनेपाली विन्नेपशक्ति के द्वारा सकल जगत्को रचते हो, सत्त्व-रज शौर तमो-गुणसे रहित हो, मन तथा वाणीके श्रगोचर हो ॥ ५७ ॥ तुस ज्योति-र्मय, सद्गरहित, परब्रह्मरूप, जगत्के लय और अधिष्ठानस्त्य हो, अम श्रीर चयसे रहित हो, तुम खुन्दर नासिकावाले श्रर्थात् शारीरिक

धर्मवाले हो तो भी फालको जीतते हो, श्रोर तुम सूर्यकी सृष्टि करके दिन श्रोर राविकपी स्वेत काले तन्तुर्श्वोसे संवत्सररूपी वस्त्रको उत्तते

महाभारत श्रादिपर्व # तिसरा (=0) नासत्यदस्रो सनसौ वैजयन्तौ । शक्तं वयन्तौ तरसा स्रवेमावधिवयः यन्तावसितं विवस्वतः ॥ ५= ॥ ग्रस्ता सुपर्णस्य बलेन वर्त्तिकाममञ्ज तामश्विनौ सौभगाय । तावत् सुवृत्तावनमन्तम।ययावसत्तमा गा श्ररुणा उदाऽवहन् ॥ ५६ ॥ पष्टिश्च गाविस्त्रशताश्च धेनव एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति । नाना गोष्ठा विहिता एकदोहनास्तावश्चिनौ दुहतो धर्ममुक्थ्यम् ॥ ६०॥एको नाभि सप्तशता श्रराः श्रिता प्रधिप्वन्या विश-तिरर्पिता श्रराः श्रनेमिचकं परिवर्त्ततेऽजरं मायाश्विनौ समनक्ति चर्पणी ॥६१॥ एकं चकं वर्त्तते द्वादशारं पराणाभिमेकाचमृतस्य धारणम् । यस्मि-न्देवा श्रधिविश्वे विषक्तास्तावश्विनौ मुश्चतो मा विषीदतम्॥ ६२॥ अश्वनाविन्दुममृतं वृत्तभृयौ तिरोधत्तामश्चिनौ दासपत्नी । हित्वा हो. और तम कर्मफल भोगनेके लिये लोकोंको मार्ग दिखातेहो ॥५०॥ जीवरूपी पत्तिगीको परमात्माकी कालशक्ति ने प्रसरक्ला है, इसका-रण उसके मोत्तकपी महासौभाग्य के लिये तुम श्रश्विनीकुमारकप से प्रकट होतेहो, राग श्रादि विषयोके वशमें हुए अत्यन्त मृद्ध पुरुष जय तक इन्द्रियों के अधान होकर वँधे रहते हैं तवतक वह सकल दोपों से रहित श्रोपको देहधारी मानते हैं श्रीर तयतक ही वह जन्म मरणको पाया करते हैं, इसकारण मुक्ति पानेका उपाय उत्पत्ति श्रादिका विजय है ॥ ५६ ॥ दिन-रातरूपी तीनसौ साठ गौएं सबको उत्पन्न करनेवाले तथा सबका संहार करनेवाले एक संवत्सरकर्पी वछड़े को उत्पन्न करती हैं, तस्वके जिज्ञासु पुरुष जिस वछड़ेके द्वारा तस्वज्ञानरूपी दधको दृहते हैं, हे श्रश्विनीकुमारों ! तुम उसही घछड़ेको उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ६० ॥ कालरूप चक्रकी संवत्सररूप नाभि है, तिस नामिक आधारसे रात और दिन मिलकर सात सौ वीस आरे लगे-हुए हैं तथा उस कालचक्रमें बारह महीनेरूप वारह प्रधि शारोंको थामनेवाले काठ] लगेहुए हैं, यह नेम रहित कालचक्र निरन्तर घमा करता है, यह अविनाशी श्रीर मायामय है, इसके प्रवर्तक त्म ही हो, यह चक्र इस लोक और स्वर्गलोक दोनोका सहार

करता है अर्थात् दोनो लोकों के भोग नाशवान् हैं, इस कारण उनकी बाहना कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ भेग ग्राहि-राशिकण वारह आरं, ऋतुकर्षी छुःनाभि, संवत्सरकर्षी एक आँख तथा कर्मका फलकर्षी एक आधार वालो एक कालचक है, इस में कालकी अधिष्ठांत्री देवीभी रहती है, उस कालचकमें से तुम्मुक्ष छुटकारा दो, हम जन्म आदि के दुःखसे परम दुःखी है ॥ ६२ ॥ तुम ही विषय श्रादि प्रयञ्चकर हो, तुमही कर्मके फलकर हो, तुम ही

(=१)

आकाश आदिकी लयके कारणभूत हो, तुमही अनादिकाल की श्रवि-श्राक होपसे भोगने योग्य विषयों में हिन्द्रयोंका संयोग होनेसे परम हर्षके साथ संसारमें अमण करते हो और परम्रहा भी तुम ही हो ॥ ६३ ॥ हे श्रविनीकुमारों ! तुमने आरंग में दश दिशा, सूर्य तथा अन्तरिक्तको रचा है, तथा सूर्यकी दिखाई हुई दिशार्ष और काल के श्रद्धसार स्विगण वेदोक कर्म करते हैं तथा देवता और महुप्य

प्रीतौ स्व एप तेऽप्पोऽशानैनमिति ॥६=॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच नानृ-

श्रपने श्रपने श्रधिकार के श्रनुसार ऐश्वर्योको मोगते हैं ॥६४॥ तुमने पञ्चतन्मात्राकी छष्टिको उत्पन्न करके उनमें से एकको टूसरेके लाथ इकट्टा करिव्या है श्रीर उनमें से श्रनेकों पदार्थ उत्पन्न करे हैं, चौदह सुवन भी उनमें से ही हुए हैं, जीव देह, इन्ट्रियें श्रीर बुद्धि नामक विकारों को प्राप्त होनेके श्रनन्तर विषयों को मोगते हैं तथा देवता.

यिकाराका प्राप्त हानक अनन्तर विषयाका मागत ह तथा देवता, मनुष्य श्रोर एश्च श्रादि सव प्राणी इस पृथ्वीका श्राश्रय करके रहते हैं ॥ ६५ ॥ हे प्रसिद्ध श्रश्चिनीकुमारा ! में नुम्हारों पूजा करता हैं तथा नुम्हारे रचेहुए श्रानन्दमय श्राकाशके सब कार्योकी भी में पूजा करता हैं, कर्मोके फलके विना देवता भी किसी प्रकारका फल नहीं पासकते श्रीर उन कर्मफलोंको उत्पन्न करनेवाले तथा नित्यमुक्त नुम हो हो ॥६६॥ नुम श्रन्नके द्वारा पिता तथा मातीके मुखसे गर्भ थार

कराते हो और उस ग्रन्मका बीर्य विपयेन्द्रियके द्वारा देहमें जाते ही वह फिर जड़ शरीरका रूप थारण करता है और तत्काल उत्पन्न हुग्रा गर्भ [वालक] श्रपनी माताका स्तर पीने लगता है, हे श्ररिच- नीक्षमारों । जीवनकी इच्छा करनेवाले मुक्षे मेरे नेत्र देकर अंधेपनसे छुटाइये ॥ ६७ ॥ इसफारा उसके स्तुति करनेसे अधिवनीकुमार तहां आये और उपमन्युसे कहा, कि—इम तेरी स्तुति से प्रसन्न हुए हैं और जीर उपमन्युसे कहा, कि—इम तेरी स्तुति से प्रसन्न हुए हैं और तेरे लिये वह श्रपण [पूप] लाये हैं, इनको तू ले और खाले ॥६=॥

तपूर्वमृचतुर्भगवन्तौ । न त्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे गुरवेऽनिवेचेति ॥ ६६॥ ततस्तमश्यिनावूचतुः श्रावाभ्यां पुरस्ताद्भवत उपाध्यायेनैवमेवा भिष्टताश्यामपूरो दत्त डेपयुँकः स तेनानिवेद गुरवे त्वमपि अधैवं क्ररुष्ट यथाकृतमुपाध्यायेनेति॥ ७०॥ स एवस्कः प्रत्युवाच एतत् प्रत्यनुत्रयं भवन्ताविश्वनौ नोत्सहेऽहमनिवेद्य गुरचेऽपूपमेनमुपयोक्तु मिति ॥ ७१ ॥ तमश्विनाबाहतः प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्यत उपा-ध्यायस्य ते कार्णायसा दन्ता भवतोऽपि हिरएमया भविष्यन्ति चत्तु-ष्मांख मदिण्यसि श्रेयधावाण्स्यसीति ॥७२॥ स प्यमुक्तोऽश्विभ्यां लच्य चलुरुपाध्यायसकारामानम्योपाध्यायमभ्यवादयत्॥७३॥**श्राचच**ले च स नास्य प्रीतिमान्यभव ग्राह चैनं यथाश्विनावाहतुस्तथा त्वं श्रेयोऽवा पर्यक्तित ॥ ७४ ॥ लेवें च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्रा-्रीति पदा तस्यावि परीच्चोपमन्योः॥ ७५॥ श्रथापरः शिष्यस्तस्यैवा छहिलनीञ्चमारोंके ऐला कहने पर उपमन्युने उत्तर दिया. कि स्किनोक्चनारों | झाप झसत्य नहीं वोलते हैं, परन्तु यह पुप में अपने गुरुको निरेद्द किये विना नहीं खाना चाहता ॥ ६६ ॥ उपमन्युकी यह बात सुनकर प्रश्विनीकुमारोंने कहा, कि-पहिले तेरे गुरुने इसीप-कार हमारी स्तृति करी थी और उस समय हमने उनको भी यही पुष हिचे थे, जिनको कि-उन्होंने अपने गुरुको अर्पण किये विना लालियाधा. रसकारण जैसा तेरे गुक्ते किया था तैसा ही तुकर ॥७०॥ शरिवनी हुमारोंके ऐसे कहनेको खुनकर उपमन्युने उनसे कहा, कि है ग्रविक्तीकुमारों ! में ग्रापसे वितय करताहूँ, कि ग्रपने गुरुको निवे-वृत किये विता इत पुत्रोंको नहां जाना चाहता॥ अर ॥ इस पर जिल्ला इमारीने कहा, कि-तेरी देखी गुरुमकिसे हम तेरे**ऊपर परम** प्रसन्त हैं, तेरे गुरके दाँत लोहेकी समान काले हैं परन्त तेरे दांत सदर्गदा सतान चमकदार होंगे, हे देटा ! जा तेरी श्रांखें श्रच्छी हो-जाउँगी और तेरा कल्यास होगा॥ ७२॥ छिरवनी कुमारोंके इसप्रकार कहते (बरदात देवें) से उपमन्यु तत्काल समासा होकर देखनेलगा ग्रीर शंपने गुक्के पाल जाकर उनको प्रसाम किया ॥ ७३ ॥ श्रीर उन से सब हुसान्त कहा, कि-जिसको सुनकर गुरु वडे प्रसन्त हुए

होर उससे कहा कि-कि अधिवतीकुमारोंने तुसे जैसा वरदान दिया है उससे अहुसार तेरा कल्याण होगा ॥ ७४ ॥ और सकल वेद तथा तर्यू धर्मशास्त्र धुसे सर्वदा उपस्थित रहकर प्रकाशित रहेंगे, इस प्रकार उपमन्त्रदी पराचा पूरी हुई ॥ ७५ ॥ आयोद धोम्यके तीसरे शिर्यका नाम वेदाथा, गुरुने एक दिन उसको आजा दी कि—वेटा

महाभारत आदिपर्व

तीसरा

तावनमम गृहै किंड्यकाल गृश्युगुणा च भवितव्यं श्रेयस्त भविष्यतीति ॥ ७६॥ सत्येरयुक्त्या गुम्कृले दीर्घकालं गुरुगुश्रूपण्परोऽध्यत् गीरिय ।॥ ७६॥ सत्येरयुक्त्या गुम्कृले दीर्घकालं गुरुगुश्रूपण्परोऽध्यत् गीरिय । स्त्रुप्त गुरुणा श्रृषु नियोव्यमानः शीतोच्छाचुन्पणायुःखसहः सर्वमाति-कृतस्तरस् महता कालेन गुमः परितोपं जगाम ॥ ७०॥ तत्परितोपाय श्रेयः सर्वप्रतां चावाप पपा तस्यापि परीज्ञा येदस्य ॥७=॥ स्व उपाध्या-येनासुन्नातः समावृत्तस्तरसाहुरुक्तवासाहुगुहाश्रमं मत्यपवत ॥ ७६॥

तस्यापि स्वग्रहे वस्तरक्षयः शिष्या यभृवुः स्व शिष्याप् किञ्चदुवाच कर्म वा क्षियतां गुरुशुर्या षेति ॥ =० ॥ दुःलाभिग्रो हि गुरुकुतवासस्य शिष्यान् परिस्केशन योजयितुं नेयेष ॥ =१ ॥ श्रय कर्सिमध्यित्काले येदं ब्राह्मणु जनमेजयः पीष्पश्च क्षियायुषेत्यवरिश्वोपाष्यायं चक्रतुः =२ स कदाचिद्याच्यकार्य्यणाभित्रस्थित उत्तद्धनामानं शिष्यं नियोजयामास ॥ =६॥ भो यरिकञ्चिदसमद्गृहे परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीयमानं

वेद ! तू मेरे घरमें रहकर मुक्त श्रपने गुरुकी लेवा कर, इसमें हो तेरा कहवाज होगा ॥ ७६ ॥ इसप्रकार गुरुक कहने पर "वहुत शब्द्धा" कहकर वेद, उनकी श्राधानुसार गुरुकुल में रहकर विरकाल पर्यन्त गुरुसेवा करता रहा, गुरु नित्य वेलकी समान उसको काम धंग्रेके जुपमें जोतते रहे श्रीर वह उस योभको श्रपने फन्धे पर लियेष्ठए, सरदी, गरमी. भूख, प्यास श्रादि दुःखोंको सहता हुआ, सब कामोंको गुरुकी इच्छानुसार करनेलगा, पेसा करतेर वहुत समय वीत गया, तब गुरु उसके ऊपर प्रसन्न हुए ॥%॥ ७॥ गुरुके प्रसन्न होनेसे वेद कहयाण श्रीर सर्वक्षपनेको प्रस हुआ, इसमुकार वेदकी

वात गया, तथ शुर अस्त अस्त अस्त श्रुता श्रिक्त अस्त अस्त स्वित होने बेद कलुगण और सर्वश्रपको प्रसाद श्रुत्त श्रुत्त अस्त होने बेद कलुगण और सर्वश्रपको प्रसाद विद्याभ्यासको परीज्ञा भी पूरीहुई ॥ ७६ ॥ तव वेदने गुरुको श्राह्मास विद्याभ्यासको समाप्त किया श्रीर गुरुके घरका वास छोड़कर श्रुपने घरको चलागया तथा गृहस्थाश्रममें पड़गया, श्रुपने घर रहतेहुए उसके पास भी तीन विद्यार्थी पहने साथ गुरुके घर रहते हु । उसके जाननेवाले वेदने, उनको किसी समय श्रुपने घरका काम अथवागुरुक्तेया करनेको हु । कहा समय श्रुपने चह शिष्योंको हु । स्व देना नहीं चाहता था ॥ ७६- ६१ ॥ कहा समय वीतजाने पर एक दिन जनमेजय और पोष्य यह

है । कुछ समय वीतजाने पर एक दिन जनमेजय और पीष्य यह दो चित्रय उस वेद नामक झाहाणके घर आये और उन्हाने वेदको उपाध्याय वनालिया ॥ है । एक समय किसी यहायिपयक कामके निमित्त इन वेदको वाहर जानेका अवस्तर पड़ा उस समय इन्होंने अपने तीन शिष्योंमेंसे उत्तक नामक शिष्यको अपने पास बुलाकर कहा, कि—॥ है । है वेटा उत्तक्ष ! मेरे घरमें यदि कुछ काम होय (=४) * महाभारत श्रादिपवं * [तीसरा भवता कियमाण्मिति स एवं प्रतिस्तिन्दृश्योत्तङ्कृ वेदः प्रवासं जगाम =४ श्रथोत्तङ्कः शुश्रपुर्गुनिवयोगमञ्जतिष्ठमानो गुरुकुले वसतिस्म । स तत्र वसमान उपाध्यायक्षीभिः सहिताभिराङ्ग्योत्तः ॥=५॥ उपाध्यायाती ते ऋतुमती उपाध्यायक्ष भीवितोऽस्या यथायमृत्वं न्थ्योन भवति तथा कियतामेषा विपोदतीति ॥=६॥ एवमुकस्ताः ख्रियः प्रत्युवाच न मया

ते स्वतुमती उपाध्यायश्च भोषताऽस्य यथायमृतुवन्ध्या न भवात तथा किस्ततामेषा विषीद्दतीत ॥ = ६ ॥ पवमुक्तस्ताः स्त्रियः प्रत्युवाच न मया स्त्रीत्यां चचनादिसम्बाध्यं करणीयं न द्याहमुपाध्ययेन सनिद्धोऽकार्य्यं मिति ॥ = ॥ तस्य पुनरुपाध्ययेन सनिद्धोऽकार्य्यं मिति ॥ = ॥ तस्य पुनरुपाध्ययः कालान्तरेण गृहः माजगाम तस्मात् प्रवासात् स तु तद्वृत्तं तस्याशेषप्रपुषकस्य प्रीति मानभृत् ॥ == ॥ उवांच चैनं वस्सोताङ्क किन्ते प्रियं करवाणीति धर्मती हि शुश्र्वितोऽसिम भवता तेन प्रतिः परस्येण में सम्बृद्धा तद्वावां भवतं स्त्रीति । स्वर्धाकां भवतं स्वावीव कामानवाल्स्यिन गम्यतामिति ॥ = ६ ॥ स प्वमुकः प्रत्युवाच किन्ते प्रियं करवाणीति पदमाहुः॥ १८ ॥ स्वश्राधमेण व मूणा

इस्तु दिनो पीं सुर परदेशसे लीटकर घर आये तव शिष्यके उस सव सुनानतको जानकर बहुत ही पसन्त हुए ॥ ==॥ और उन्होने उत्तक्त को बुलाकर कहा, कि—हे वेटा उत्तक्त ! वता, में तेरा क्या ग्रुभ कर्क ? त्ने धमर्गिद्धार मेरी सेवा करी है, इसकारण हमारी तेरी पीतिमें पर-स्पर बृद्धि हुई है, अब में तुभ घर जानेकी आहा देताहूँ और आ-शीर्याद देताहूँ कि-तेरी सब मनोकामनाएं पूरी होंगी, अब त् घरको आ ॥१।॥ गुरुके ऐसी कहने पर उत्तक्कने कहा कि-में आपका कीनसा प्रिय काम कर्कें ? आप अपनी इच्छानुसार कोई अपता प्रिय काम करनेको दीजिये, क्योंकि—विद्वानोंने ऐसा कहा है, कि— जो शिष्य विवा पढ़कर गुरुदिस्त्वा नहीं देता है और ओ गुरु पढ़ाकर दिस्त्वा

नहीं लेता है, इन दोनोमेंसे एकको श्रधर्म होताहै और दुसरा

ऋध्याय ी 🕸 भाषानुवाद सहित 🎎 (=y_) चञ्चाधमें ए प्रच्छति तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ६१ ॥ सोऽहमनुदातो भवता इच्छामीए गुर्वर्थमुगहर्त्तमिति तेनैवमुक्त उपा-ध्यायः प्रत्युवाच यत्सोत्तंक उप्यतां ताबदिति ॥ ६२ ॥ स कदाचिद्धपा-ध्यायमाहोत्तद्धः आदापयत् भवान् किं ते वियमुपहरामि गुर्वर्थमिति ६३ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तञ्ज वहुशोमाञ्चोदयसि गुर्वर्थमुपद्दरामीति तद्रच्छेनां प्रविष्योपाध्यायानीं प्रच्छ किम्परस्माति एपा यह अवीति तद्रपहरस्वेति ६४स प्रवसुक्तो उपाध्यायेनोपाध्यायानी मण्डहन् भगवत्यु पाध्यायेनास्म्यनुहातो गृहं गन्तुमिच्छामोष्टं ने गुर्वर्धम्पहन्यानुलो गन्त मिति ॥ ६५ ॥ तद्यापयत् भवती किम्पह्रामि ग्वर्थमिति सँवमुक्ती पाध्यायानी तमत्तंकं प्रत्यवाच गच्छ पीष्यं प्रतिराजानं कुरुएले भिद्धितं तस्य ज्ञानियया पिनद्धे ते छानयस्य ॥ ६६ ॥ चतुर्थेऽहनि प्रयद्धं भविता ताभ्यामावद्धाभ्यां शोभमाना ब्राह्मणान् परिवेष्ट्रमिच्छोम् तत्सम्पाद-यस एवं हि कुर्वतः श्रेयो भवितान्यथा कृतः श्रेय इति ॥६७ ॥ स एव द्वेपभावको प्राप्त होताहै अर्थात् दिन्छ। न लेनेसे आप अधर्मके भागी होंगे और मुभी आपके अपर हेप आवेगा कि-गुरने मुभी छतार्थ नहीं किया॥१०॥११॥इसकारण श्रापकी श्राहा होने पर में श्रापको प्रियसे प्रिय गुरुद्धिणा देना चाहता हूँ, शिष्यके ऐसे प्रथनको सुन-कर उपाध्याय वेदने उत्तर दिया कि-वेटा उत्तह !तव तो तृ धोडे दिनो यहां ही रहजा ॥ ६२ ॥ छुछ दिनो रहनेके धनन्तर एक दिन उत्तहने गुरुसे बुसा, कि-में आपको प्रिय लगनेवाली क्या गुरदिल्ला ट्टं ? उसकी मुक्ते प्राप्ता दीजिये ॥ ६३ ॥ गुरुने उससे कहा. कि—हे वैटा उत्तद्ध ! तुने पढ़ा है, उसके घदलेमें गुरुदक्तिणा देनेके लिये त् मुभ से पार २ कहा करता है तो शब्द्धा पेटा त भीतर जा श्रीर श्रवनी गुरुमाता से बुक्त, कि-एवा गुरु दक्षिणा वं ?, वह जो कुछ कहै सोही ले श्राना, गुरुके ऐसा कहनेपर उत्तंक घरके भीतर के खंड में गुरुमाता के पास गया और उनसे इसप्रकार वृक्ता कि—हे भगवति!मेरे गुरुने सभी घरजानेकी श्राहादी है,सो में इच्छित दक्षिणा देकर गुरुके ऋणले मुक्त होनेपर घरजाना चाहता हुँ इसका-रण तुम श्राष्ठा करो, कि-गुरुजी के लिये प्या दिक्तणा लाकर हूँ ? इसप्रकार वृक्षने पर गुरुपत्नी ने उत्तंक को उत्तर दिया कि-हे उत्तंत्री! तू पौष्य राजाके यहाँ जा श्रीर उसकी रानी जो कुरडल पहररही है, उनको मांग ला ॥ ६४--- ६५ ॥ ज्ञाजसे चौथे दिन प्रयक नामका ज्ञत होगा उस दिन उन दोनो कुण्डली को पहर, शृहार करकी में बाहाणीं 🖔 को परोसना चाहती हूँ, इसकारण त् इस कामको प्राकर, इस काम को करदेनेसे तेरा कल्याण होगा,नहींतोश्रेय कैसे होसकता है?

वाद्योवाच भगवन् पौष्यः खत्वहं किंकरवाणीति ॥ १०३॥ स तमुवाच ग्रर्वर्थे कुएडलयोरथँनाभ्यागतोऽस्मीति ये वै ते चित्रयया पिनद्धे कुएडले ते भवान्दातुमहतीति ॥ १०४॥ तं प्रत्युवाच पौष्यः प्रविश्यान्तःपुरं चित्रया याच्यतामिति स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपुरं चत्रियां नापश्यत् ॥ १०५ ॥ स पौष्यं पुनरुवाच न युक्तं अवताहमनृतेनोपचरितं न हि ते इसप्रकार गुरुमाता के श्राहा देते ही उत्तंक, राजा पौष्यकी राजधानी की श्रोरको चलदिया, मार्ग में जातेहुए उसने एक वहुतही बड़ा देल और उसके ऊपर एक प्रचराड शरीर वाले पुरुषको चैठा हुआ देखा. उस पुरुपने उत्तंकसे कहा,कि-॥१=॥हे उत्तंक ! तृइस वैलके गोवरको खा. परन्तु उत्तङ्क उसके स्नानेको राजी नहीं हुआ, तब उस पुरुष ने फिर कहा, कि—हेउत्तंक !त् मनमें किसी प्रकारका विचार न करके इस वैलके गोवरको अचल कर, पहिले तेरे गुरुने भी इसका गोवर खाया था॥ ६६—१००॥ ऐसा कहने पर बहुत श्रच्छा कह-कर. उत्तकने उस समय तिस वैलका गोवर खोया और मुत्र पिया तथा पींछेसे जलका श्राचमन करकै घवड़ाया दुश्रा उठा श्रीर श्रपने मार्गसे चलदिया॥ १०१॥ श्रीर जहाँ राजा पौष्य रहता था, तहा उस के नगरमें श्राया, राजभवनमें जाते ही उसने राजा पौष्यको सिंहासन पर वैठा हुआ देखा और समीप में जा आशीर्वाद् दे इस प्रकार कहा कि—॥ १०२॥ हे राजन् ! में कुछ चाहता हूँ और आपके पास वाचना करनेको श्राया हूँ, राजा पौष्यने उसको प्रणाम करकै कहा, कि—हे भगवन् ! मेरा नाम राजा पौष्य है, कहिये हैं श्रापका क्या प्रिय कार्य करूँ ? स्राह्मा दीजिये, उत्तंकने कहा, कि—में यहां गुरुद्त्तिणाके तिये कुण्डल माँगुने श्राया हैं, इसकारण श्रापकी रानी जिन दो कुण्ड-लोंको पहर रही है, वहा दोनो कुएडल श्राप मुक्के देदें यह उचित है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ राजां पौष्यने उससे कहा, कि तब तो ब्राप रखवास में जाकर रानीसे याचना करिये, पौष्यके इसप्रकार कहने पर उत्तंक श्रन्तःपुरप्तें गया, परन्तु तहाँ रानीको नही देखा ॥ १०५ ॥ उसने फिर

महाभारत श्रादिपर्व *

मुक्तस्त्रया प्रातिष्ठतोत्तंकः स पथि गव्छुन्तपश्यद्भयभमितप्रमाणं तमिष्ठ रूढञ्च पुरुषमित प्रमाणिनेव स पुरुष उत्तंतसम्यमापत ॥६॥ भोउत्तं- स्तेतत् पुरीपमस्य वृष्यभस्य भक्त्यस्वित स प्रमुक्तो नैच्छुत् ॥ १६ ॥ तमाइ पुरुषो भूयो भक्त्यस्वोत्तंकः माविचारयोपाष्यायेनापि ते भिक्तं पूर्वमिति ॥ १००॥ स प्रमुक्तो याद्यमित्वक्त्या तद्यातद्वयभस्य मृत्रं पुरी- पञ्च भक्त्वित्वोत्तंकः स संझमाधिकार्यभ्यप्रमुख्य प्रतस्य ॥१०१॥ यत्र स क्षित्रमा प्रमुख्य प्रस्तित । १०० ॥ स स संझमाधिकार्यभ्यत्यायी । १०१॥ स प्रमुक्तियायी । १०१॥ अर्थो भवन्तमुपात्रातोऽस्मीति स प्रमुक्ति

विसरा

अध्याय] # भाषानुवाद सहित # (=∞) ऽन्तःपुरे स्त्रिया सन्निहिता नेनां पश्यामि॥ १०६ ॥स प्रवमुक्तः पौष्यः चलमात्रं विमुखोत्तंकं प्रत्युवाच नियतं भवातुच्छिष्टः स्मर तावन्न हि सा चत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना शक्या द्रष्टुं पतित्रतात्वात् सैपानाशुचे र्द्दर्शनमुपैतीति ॥ १० ॥ श्रथीवमुक्त उत्तं कः स्मृत्वोबाचास्ति खलु गयो-त्थितेनोपस्पृष्टं शीव्रं गच्छता चेति १०=तं पीप्यः प्रत्युवाच एप ते व्यति क्रमो नोत्थितेनापस्पृष्टं भवताति शीवं गच्छुता चेति॥१०६॥ श्रथोत्तंत्रस्तं तथेत्युक्तवा प्राङ्म्ख उपविश्य सुप्रज्ञालितपाणिपाद्वदनो निःशब्दा-भिएकेण्।भिरनुःण्।भिर्द्धः द्वाभिरद्धिः।पीत्वा द्विः परिमृज्य खान्यद्वि-चपस्पूर्य चान्तःपुरं प्रविवेश ॥ १६० ॥ ततस्तां चित्रयामपश्यत् सा च द्यु बोत्तंतं प्रत्युत्थायाभिवाद्योदाच स्वागतं ते भगंदपादापय किंपर-घाँणीति ॥१११॥ स तामुवाचेते कुएडले गुर्वर्थं में भिचिते दात्महंसीति लौटकर राजा पौष्यसे कहा, कि-महाराज ! मुक्ते कुठे हंसी हट्टेमें उडाना आपको शोभा नहीं देता, आपकी रानी रणवालमें नहीं है, खोिक-मैंने रानीजीको तहां नहीं देखा॥ १०६ ॥ उत्तंकको इस प्रकार कहने पर राजाने चलभर विचार कर उत्तर दिया, कि-हे भगवन् ! श्राप ध्यान दे लीजिये, कि-श्राप पहिले किसी श्रपविञ बस्तके संगले प्रपवित्र तो नहीं होगए हैं ? प्योंकि-मेरी रानी पति-ब्रता है और उसको उच्छिए तथा अपवित्र पुरुष नहीं देखसकता. इतना ही नहीं, किंतु वह स्वयं भी, जो अपवित्र हो उसकी दर्शन नहीं देती ॥ १०७ ॥ इसपर विचार करके उत्तंक योला कि-हैं। डीक, है पेसा हुआ है, क्वोंकि-में शीवतामें था, इसकारण नार्ग में मैंने खड़े २ ही श्राचमन किया था ॥१०=॥ राजा पौष्यने कहा कि-शापले यही व्यति क्रम हुआ है, पुरुष खड़ा २ वा शीव्रता में जाता२ टीफ व्याचमन नहीं करसकता, तदनन्तर उत्तंककी वात राजाके कथनसे मिलजाने पर उत्तंक पूर्वकी श्रोरको मुखकरके नीचे येडगया श्रीर हाथ,पैर तथा मुख को ठीक २ धोकर, हृदय पर्यन्त पहुँचन योग्य, विना कानांके शीतल श्रीर स्वच्छ जलसे तीनवार श्राचमन किया, तदनन्तर जलसे इन्द्रियों का स्पर्श करके शुद्ध हुआ और फिर अन्तःपुरमें जापहुँचा॥१०८॥११०॥ तहाँ रानी भीतर ही बैठी हुई दीखी, वह उत्तंकको देखते ही खड़ी होगई, और मलाम करके विनयके साथ कहनेलगी, कि-आप शानन्द से तो शाये, हे भगवन्! शाहा करिये शापकी किस शाहाका पालन करूँ १॥ १११॥ यह सुनकर उत्तंकने रानीसे कहा, कि-हेमनवति!गुरु हक्तिणामें देनेके लिये में आपके छुएडल माँगनेको आया हूँ, वह मुक्षे मिलजाने चाहियें, रानी उसकी गुक्मिकको देखकर मसज हुई और यह

स एवमुक्त्या तां त्वियामामन्य पौष्यसकाशमागच्छत् याह चैनं भीः पौष्य प्रोतोऽस्मीति तमुक्तं पौष्यः प्रत्युवाच ॥ ११४ ॥ भगविश्व रेख पात्रमासाचते नवांश्च ग्रुखवानतिथिस्तिदिच्छे शाद्धं कत्तुं िक्यतां त्तुख वृति ॥ ११॥ तमुक्तंकः प्रत्युवाच कृतक्ष एवास्मि ग्रीजिमच्छािम् यथोपपन्नमुपस्कृतं भवतित स्त तथैत्युक्तवा यथोपपन्नेनाजेमैनं भीज-यामास ॥११६॥ श्रायोक्तंकः सकेशंशीतमन्त्रं चृत्रा त्र्युवच्यतित मत्वा तं पौष्यमुवाच यस्मान्मे श्रण्णुच्यतं द्वासि तस्माद्न्यो भविष्यसीति११७ तं पौष्यः प्रत्युवाच प्रसात्वमण्यदुष्टमन्तं दूषपित तस्मात्वमनपत्यो

खुपात्र ब्राह्मण् निराश नहीं जानो चाहिये,ऐसा विचारकर अपने दोनो कुएडल उतार उसको देदिये और कहा, कि-सर्पोका राजा तत्तक इन कुएडलीको पानेके लिये अनेको वार प्रार्थना करचुका है, इसकारण् आप इन कुएडलीको वहुत सावधानीके साथ लेकार्य ॥ १२२॥ पानी के इसप्रकार कहुने पर उनकेने कहा, कि—हे भगवति ! आप इसके लिये निश्चिन्त रहें, नागोंका राजा तत्तक मेरा पराजय नहीं करस्वकता

॥ ११३॥ इत्यकार कह रानीकी आक्षा लेकर उत्तंक राजा पोप्यके पाल आपा और उससे कहा, कि—है राजन, [में वड़ा सन्तुष्ट हुआ है, तव पोप्यने उत्तंकसे कहा, कि—है ११४॥ है मगवन, [चिरकालमें हैं, तव पोप्यने उत्तंकसे कहा, कि—है ११४॥ है मगवन, [चिरकालमें भोड़ पान पुरुप मिलजाता है, आप ग्रुपवान अतिथ हैं, इसकारण में आद करना चाहता हूँ आप ल्याभर यहीं आराम करिये॥ ११६॥ उत्तंकने राजाको उत्तर दिया,कि—अच्छा में ल्याभर रुकाहुआ हूँ और अआराम करता हूँ,कि-आप मेरे लिये समयानुसार उपस्थित पवित्र और

शुद्धं भोजन श्रीघ्र मैंगावेंगे, राजाने बहुत झच्छा कहकर उत्तीरसमय उत्त कहे लिये तयार भोजन मैंगाया॥ ११६॥ उत्तंकने ठंडा और बाल पहाहुआ देखकर उत्त झम्नको अपियन सम्भक्त और राजा पौप्यको शाप दिया, कि—तू श्रपिवन झन्न देताहै, इसकारण झन्या होजायगा ॥ १९०॥ राजा पौप्यने उसको यदलेंगे शाप दिया, कि—तू पियन अन्नको अपियन वताता है, इसकारण तेरा वंशलोप होजायगा, इस पर उत्तंक कहउडा, कि—देल तूने अपियन श्रम्म आपंग्र करकें भी

शापके वदलेमें शाप दिया है, यह तेरा काम उचित नहीं हुझा, तु इस अन्न के दोप को अपने नेत्रों से अत्यन्त देखले, तब

अध्याय] # भाषानुवाद सहित # (32) भविष्यसीति तमुत्तः: प्रत्युवाच ॥११८॥म युक्तंभवतावमशुचि दत्वा प्रतिशापं दातुं तस्मादन्तमेव प्रत्यद्याञ्चर ततः पौष्यस्तदप्रमशुचि एप्ट्रा तस्याग्रुचिभावमपरोक्तयामास ॥ ११६॥ श्रथ तद्वतं मुक्तकेश्या जियो-पहृतमनुष्णं सकेशं चाशुच्यतदिति मत्या तमृषिमुत्तंतं प्रसादयामास ॥ १२०॥ भगवन्तेतद्शानाद्शं सकेशमुपाहतं शीतं तत् हामये अवन्तं न भवेयमंघ इति तमुत्तद्भः प्रत्युवाच ॥१२१॥ न मृपा प्रवीमि भृत्वा त्व-मन्धो न चिराइनन्धो भविष्यसीति ममापिशापो भवता इस्तो न भवे-दिति ॥ १२२ ॥ तं पौष्यः प्रत्युवाच न चाहं शक्तः शापं प्रत्यादातं न हि मे मन्युरयाष्युपशमहुच्छति किञ्चेतद्भवता नशायते यथा ॥१२३॥ नव-नीतं हृदयं ब्राह्मण्स्य वाचि घुरो निश्चितस्तीदणधारः । तहुभयमेतिह-परीतं ज्ञाभियस्य वाङ्नवनीतं हद्यं तीक्णधार्मिति ॥ १२४॥ तदेवं गते न शकोहं तीदण्हद्यत्वात्तं शापमन्यथाकत्तुं गम्यतामिति तमुत्तद्वः प्रत्युवाच भवताहमन्नस्याशुचिभावमालस्य प्रत्यनुनीतः प्राक्तेऽभिष्टि-राजा पौष्यने उस अन्नको अपवित्र देखकर उसकी अपवित्रताको रूपए सानित्या । ११८ ॥ ११८ ॥ श्रार उस श्रन्नको खुले केशोवाली स्तीने वनाया था एवं वालपड़ा हुन्ना तथा ठएढा ग्रन्न ग्रपवित्र मानाजाता है, देसा समक्षकर राजा पीष्य उत्तंक ऋषिको प्रसन्न करता हुआ कहने लगा, कि-॥ १२० ॥ हे भगवन् ! यह ठंडा श्रीर वाल पडाहुआ श्रन्न श्रापको श्रनजान में परोसागया है, इसकारण में श्रापसे याचना करता हूँ, कि-में श्रन्धा न होऊँ, उत्तंकने राजाको उत्तर दिया, कि-॥ १२१ ॥ में जो कुछ कहता हूँ वह मिथ्या नहीं होता, इसकारण तुम श्रन्थे होकर थोड़े ही दिनोंमें समाखे होजाशोगे, परन्तु तुमने भी सुकी जो शाप दिया है उसको निवारण करो ॥ १२२ ॥ राजा पौष्यने कहा कि-में अपने शापको नहीं लौटासकता, क्योंकि-अभीतक मेरा कोच नहीं उतरा है और क्या आप यह नहीं जानते हैं कि—ब्राह्मणका हट्ट मञ्खनकी समान श्रत्यन्त कोमल होता है श्रीर वाली पैनी धारवाले छुरेको समान बड़ी तीदण होती है, परन्त चत्रिय में यह दोनो बात उलटी होती हैं श्रर्थात् चत्रियों की वाणी मक्खनकी समान कोसल और हृदय छुरेकी धारकी समान बड़ा तीखा होता है, सो में स्वामा-विक तीरणभावके कारण अपने दियेहुए शापको पलट नहीं सकता. हें महाराज ! अब आप पथारें, राजांके ऐसे वचनोंको सुनकर उत्तक ने राजासे कहा, कि-मुभ भोजन के निमित्त दियेहुए श्रजको अपवित्र समसकर तूने मेरी पार्थना करी, तिससे पहिले तूने मुक्तसे कहा था, कि-तू गुद्ध अनको दोप लगाता है इसकारणपुत्र रहित होगा,परंत

[तीसरा

तन् ॥ १२५ ॥ यसमाद्दुष्टमसं दूपयित तस्माद्तपत्यो भविष्यस्रोति
दुष्टे वान्नेनेप नम शापो भविष्यतीति ॥ १२६ ॥ साध्यामस्तावित्युस्त्वा प्रातिष्ठतोत्ति ॥ १२६ ॥ साध्यामस्तावित्युस्त्वा प्रातिष्ठतोत्ति ॥ १३० ॥ अधोत्ति स्त्रम्य पिय नम्नं स्पएकमागञ्जन्तं मुहुर्मुहुर्ष्ट प्रयमानमदृश्यमानश्च ॥ १२० ॥ अधोत्तह्रस्ते
दुरुद्धलं सन्यस्य भूमानुद्रकार्थं प्रचक्रमे पत्रस्मित्रन्तरे स स्पण्कस्त्यस्ताण उपप्टुत्य ते कुराइले गृहीत्वा प्राद्रवत् ॥१२८ ॥ तमुत्तक्कोऽभिस्त्यइतोदक्रकार्य्यः शुनिः प्रयतो नमो देवेभ्यो गुरुभ्थञ्च कृत्वा महत्ता जवेन
तमन्वयात् ॥ १२८ ॥ तस्य तत्त्वको दृहमासन्नः सतं जत्राह गृहीतमात्रः
स तद्र पं विहाय तत्त्रक्रस्यस्यं कृत्वा सहसा धर्एयां विवृतं महावित्वं
प्रदिवेश ॥ १३० ॥ प्रविहर्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छत् अधोत्तङ्कस्तस्याः स्वियाया यद्यः स्मृत्वा तं तत्त्रक्रमस्यगच्छत्॥१३१ ॥ स तद्वित्वं

द्गडकाप्टेन चलान न चाराकत् तं विलश्यमानमिन्द्रोऽपश्यत्सं वज् प्रेनचामाल ॥ १३२ ॥ गच्छास्य प्राह्मणस्य साहास्य करुप्वेति । अथ

हे राजन् ! यह अन्ततो अपवित्र था (सो मैंने पवित्र श्रन्नको दोष नहीं लगाया है इसकारण) तेरा शाप सुसे दुःख नहीं देसकरा, इसवात का मुक्ते विश्वय है ॥ १२३-१२६ ॥ श्रव में श्रपना काम साधन कहाँगाँ. पेसा कहकर रानीके दोनो कुराडल लियेतुर उत्तक तहाँसे चलिया, मार्गमें जाते २ उत्तङ्कने एक नंगे चपणकको श्रपनी श्रोरको श्राताहश्चा देखा, वह क्रण्यक किसी क्रण में दीखताथा और किसी क्रणमें अन्त-र्धान होजाता था॥ १२७॥ उसी समय उस्त उन दोनो कुएडली को अमिपर एककर सौच आचमन आदिके निमित्त सरीवर पर गया. इतने ही में दह चप्पाक दौड़ता २ तहाँ आया और कुएडलोंको लेकर भटपट तहाँ से भाग नया ॥ १२= ॥ न्हा धो पवित्र होकर, देवता तथा वितरांको नमस्कार करके उसङ्घ बड़े बेगसे उस स्वयणक के पीछे भागने लगा॥ १२६ ॥ देखते देखते चयणक यहत समीप आलगा और उसको पकडलिया, एरन्तु पकड़ते चलही वह चपलकका रूप त्याग-कर तचक वनगरा और तुरन्त ही पृथ्वी में एक वड़ी और विशाल दरार खुलीहुई थी उसमें घुलगया॥ १३०॥ और उसमें को होकर वह नागलोक में अपने भवन में जापहुँचा, उस समय उत्तंकको रानी की कही हुई वात याद आई और वह तज्ञको पीछैर जानेको तयार हुआ ॥ १३१ ॥ ग्रौर उस दरारको चौडी करनेके निमित्त प्रापनी लठियासे खोदने लगा, परन्तु वह किसीप्रकार भी उसको खोदने में सफलमनो-रथ नहीं हुआ तद उसके न खुदनेसे उदास होगया, इन्द्रने उत्तंकको

दुःखित होतेदुए देख अपने अस्त्र वज्रको बुलाकर कहा,कि-हे वज्र !

श्रध्याय] अभाषानुवाद् सहित । (83) वज्ञं द्राडकाष्ट्रमनुप्रविश्य तहिलमदारयत् ॥ १३३ ॥ तमुत्तंकोऽनुवि-वेश तेनैव विलेन प्रविश्य च तं नागलोंकमपर्य्यंतमरेकविधवासायहः-र्म्यवलमीनिर्य्हशतसंकुलमुद्यायचक्रीड़ाध्यर्यस्थानावकीर्णमपर्यत्॥ १३४॥ स तत्र नागांस्तानस्तुबदेभिः श्ठोकैः-ये पेरावतराजानः सर्पा समितिशोभनाः। स्तरन्त इव जीमृताः सवियुत्पवनेरिताः॥ १३५ ॥ स क्रपो बहुक्रपाख तथा कलगापकुएडलाः । श्रादित्यवस्रोकपुष्ठे रेजुरैरा-वतोद्भवाः॥ १३६॥ वहनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे । तबस्था-नपि संस्तोमि महतः पन्नगानहम्॥ १३७॥ इच्छेत्कोऽर्कागुसेनायां चर्त-मैरावतं विना । शतान्यशीतिरष्टौ च सहन्नाणि च विशतिः । सर्पानां प्रव्रहा यान्ति धूनराष्ट्रोऽयमेजति ॥ १३= ॥ ये चैनमुपसपैति ये च दर पथक्ताः । श्रद्धमेरावतज्येष्टभात्भ्योऽकरवं नमः॥१३८॥यस्य वासः कुरुत्तेत्रे खाएडवे चाभवत् पुरा।तं नागराजमस्तौपं कुग्डलाथीय तत्त-कम ॥ १४० ॥ तत्त्वकथाश्वसेनथा नित्यं सहचरावुभौ । फुरुक्तेत्रे च त जाकर उस ब्राह्मण की सहायता कर, तब बज़ने श्रपने स्वामीकी ब्रोहानुसार उस दण्डेमें प्रवेश फरके तिस विलक्षे हारको चौडा कर दिया तब उत्तंकने उस दरारमें को होकर रसातल में प्रवेश किया और उसी मार्गसे चलते २ नागलोक में जापहुँचा, तहाँ नाना प्रकार के श्रनेको देवमन्दिर, राजमहल, एवेलियं, दोनो श्रोर भक्तेहप छुनावाले घर महल तथा खेलतमाशे के स्थानोसे खचाखच भरेहुए नागलोक को देखा ॥ १३२—१३४ ॥ तहाँ पहुँचने पर उत्तह इसप्रकार नागीकी स्तृति करनेलगा, कि—जैसे पवनके प्रेरणा करेहुए विजलीवाले मेघ जलकी धाराश्रोंको वरसाते हैं तैसेही पेरावतकी प्रजारूप तथा युद्ध में शोभा पानेवाले सर्पभी तीखी धारी के अस्त्रीकी वर्षा किया करते हैं ॥ १३५ ॥ सुन्दररूप वाले. बहरूपी, चित्रविचित्र कराडलधारी ऐरा चतके वंशमें उत्पन्न हुए हे सपाँ जैसे श्राकाशमें सूर्य शोभा पाताहै तैसे हा स्वर्ग में तुम शोभाषाते हो ॥१३६ ॥ गङ्गाके उत्तर तटपर नार्गीके बहुतसे मन्दिर हैं उन सब बड़े श्नागोंकी भी में स्तुति करताहुँ॥१३७॥ ऐरावतके सिवाय सर्यकी जाज्वल्यमान किरलो में विचरनेकी कौन इच्छा करैगा ?,जब पेरावत नागका चड़ा भाई धृतराष्ट्र वाहर जाता है. तव श्रद्वाईस सहस्रश्राट सर्प श्रनुचर वनकर उसके पीछै चलते हैं और जो दूरमार्गमें जापहुँचते हैं एवं ऐरावत के छोटे भाई हैं उनको में नमस्कार करता हूँ, जिनका निवास पहिले कुरुत्तेत्र के खाराडव वनमें था ऐसे नागराज तत्तककी मैं कुएडलोंके लिये स्तृति करता हूँ, तत्तक श्रीर श्रश्वसेन दोनो नित्य साथ रहतेहैं श्रीर क़रुचेत्रमें शाई हुई इन्नमर्ता

वलतां नदीमिनुमतीमञ्ज ॥ १४१ ॥ जवन्यजस्तन्नकश्च श्रुतसेनेति यः हुतः । श्रवलद्यां सहबृद्धि प्रार्थयकागसुख्यताम् । करवाणि सदाचार्

(53)

हमस्तरसे महासमे ॥ १४२ ॥ पर्व संतुत्वा स विमर्पिरसङ्को मुजगोस-मान् । नैय ते छुराङले लेमेततर्थितामुपागमत् ॥ १४२ ॥ पर्व स्तुवन्नपि नानाम् नदा ते छुराङले नालभन्तवापश्यत् ख्रियो तन्त्रे श्रविरोप्य छुदेमे पर्व स्टब्स्या तरिमस्तंत्रे कुम्लाः सिताख्य तत्वश्वक्षं चापश्यत् द्वादशारं

प्रहािः कुमारेः परिचल्येमानंपुरुषं चापम्यदम्बञ्च दर्शनीयम् । स तान् सर्वोत्तुग्राम् प्रसिमंत्रवादन्छोकः॥१४४॥शीयपरितान्यत्र शतािन मध्ये परिक्रा नित्यंचरति भृदेऽस्मिन्।चले चतुर्विशतिपर्वयोगे पष्ट वे क्रमाराः

नहीं ने तटपर रहते हैं, शुतलेन नामसे प्रसिद्ध तक्तको छोटे भाईकी तथा महायुक्त नामक दीर्थमें नागराजकी पदवीपानेके लिये सर्वकी हारायना करनेदाते महात्मा शृतखेनको भी मैं सदा प्रणाम करता है ॥ १३=—१८२॥ जब महाक्रपाँजी इत्तंत्रकार प्रार्थना करने पर भी वह इसडल नहीं मिले तब विमर्पि उत्तंकको बड़ी चिन्ता हुई॥१४३॥जव नागौ की एति करने पर भी छुएडल नहीं मिले तब इधर उधरको देखतेहुए उत्तंबने बुननेही सुंदर दर्गडेसे गुक्त यंत्र पर उत्तन देमाशींसे बछा दुनती हुई दो जियांको देखा, उस कांज्यस्त्रपर चढेहुए सब जुत काले और हरेत थे, दूसरी और वारह घरोंका एक चक्र देखा कि-जिसको छः बालक किया एई ये और तीलरी घोर एक उत्तम बोड़ा दीखा कि-जिलके कुण्य एक दर्शनीय पुरुष सवार था, तव तो उत्तंक वेदकी कृ चार्ज़ोकी समान नीचे लिखे कोकोंसे उन सबकी भी स्तृति करनेलगा ॥ १४४ ॥ इस कालकर अधिनाशी चकमें समावस पूर्णिमा स्नादि कीहील एवं हैं, तीर की खाट दिवरात क्यी बरे हैं और छ। ऋतक्यी बालक इसको रातदिक शुमाया करते हैं (श्रुतिमेलिखा है, कि-"सम्ब-त्सरः प्रजापतिः अञ्चलस्यो प्रजापति जानो,इसकारण्डसंकयहां संबत्तरका रूप देकर विश्वातमा प्रजापतिकी स्तुति करता है-मूल प्रकृति, महत्तरव, शहंकार, पांच तन्मात्रा, न्यारह इन्द्रियें और पांच महाभृत इर चौवीच तत्त्वींके समृहक्ष और मोज्ञपर्यन्त रहनेयाले

प्रकृति, महत्तर, प्रहंकार, पांच तन्यात्रा, ग्यारह इन्द्रियं श्रीर पांच महाभूत हर चौकील दर्बोक लमूहक्य श्रीर मोज्यपंत्त रहनेवाले स्पूर्व एत्रीर मोज्यपंत्त रहनेवाले स्पूर्व ल्क्स ग्रारीरक्षी चक्तमें तीन सौ साट वासनाक्षी तन्तु रहते हैं, हदसके जीतरकी स्व नाड़ियें वहसर हजार हैं, वह सुदे र लोक देती हैं और हर्एकके लोकमें शन्दादि पांच विषय हैं, इस सारण्डन हर्एक नाड़ियें का सारण्डन हर्एक नाड़ियें का सारण्डन वाड़ियें का सारण्डन वाड़ियें का सारण्डन वाड़ियें

दता है छाट ६८५६क लाक्ष्म शब्दाद पाच विषय है, इस कारण्डन इरम्झ नाड़ियों के भी पांच २ विभाग करनेसे अनेकों सहस्र नाड़ियें होती है, यहाँ संस्कृपमें तीनस्तो साठ नाडियें कही हैं, भोकामें भी

रतना ही वासनाएँ नहीं हैं, यहाँ जो छ। वालक कहे हैं वह श्रविद्या,

£3) श्रन्याय ौ # भाषानुवाद सहित # परिवर्त्तवितः ॥ १४५ ॥ तंत्र्यञ्चेदं विश्वक्तपे युवत्यी वयतस्तंतृन् सततं वर्त्तयन्त्यो । कृष्णान् सितांक्षेव विवर्त्तयन्त्यो भतान्यजस्य भवनानि चैव ॥ १४६ ॥ वजस्य भक्ती भवनस्य गोप्ता एवस्य एनता नमुचेर्नि-इन्ता। कृष्णे वसानो पसने महात्मा सत्यानुरों यो विधिनक्ति लोके ॥ ॥ १४७ ॥ यो वाजिनं गर्शमपां पुराणं वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति ।नमो-उस्त तस्मै जगदीश्वरीय लोक्जयेशाय पुरन्दराय ॥ १४=॥ ततः स एनं पुरुषः प्राह प्रीतोऽस्मि तेऽहमनेन स्तोष्रेण किन्ते प्रियं करवाणीति ॥ १४६ ॥ स तमुबाच नागा म वशमीयुरिति स चैनं पुरुषः पुनरुपाच एतमश्वमपाने धमस्वेति॥ १५०॥ ततोऽश्वस्यापानमधमत्ततोश्वाद्ध-शस्तिता, राग, हेप, प्रभिनिषेश यह पाँच प्रकारकी श्रविचा श्रीर छटी ईर्यरकी माया है, इन छुः को विवेक वैरान्यके बलसे जीताजासकता है. तथापि यह नित्य ही घटीयंत्रकी समान जन्म मरणका प्रवन्ध करती हैं) ॥ १४५॥ वालकपन तथा गुढ़ापेकी की हुई कमी से रहित दो विश्व-रूप तरिण्यं वासनाजालरूपी यन्त्रमें शुक्ल तथारूष्ण पद्म द्वपी स्त्रको डालकर नित्य चस्र बना करतीहैं और सकल भृत तथा चौद्र भुवनी को ग्रमाया करती हैं (माया तथा चेतन्य शक्तिक पिणी तक्रिण को जालक-पगतथा बढापे से होनेवाले अपकर्षसे रिहत हैं वह विश्वरूप देविये. चोसनारूप तन्तुश्री को जिथर विधर को चलायमान करके जनत को रचती हैं अर्थात यह दोनो शक्तियं वृद्धि और चिदाभासकपसे घटादि विषयोको प्रहण करके उनके संबंधकी वासनार्थोको एडकरती हैं)॥१४६॥ (ऊपरके महोकामें चन्धका स्वकृष कहा,वह अहानका कार्य है इसकारण ज्ञानले दुरहोसकता है,इसज्जभिप्रायको लेकर फहते छ,कि-) जो महात्मा कालेरंगके वर्जीको पहर रहाहै,जिसने वज्धारण करके नमुचिका तथा बुत्रासुरका नाश कियाहै,जो त्रिलोकी की रचाकरता है,जो लोगोंके सत्य श्रीर मिथ्या वचनका विभाग करदेता है श्रीर जिसने वैश्वानरसे तेजस्वी और समुद्रमेंसे उत्पन्न हुए घोड़ेको वाहन रूपसे पाया है. उस जिलोकीके नाथ और जगतके ईश्वर प्रदेश भगवानको भेरा प्रणाम हो ॥ १४७ ॥ १४= ॥ उतहुने इस प्रकार स्तुति करी तव उस पुरुपने उतङ्कसे कहा, कि-मैं तेरे इस स्तोषसे प्रसन्न द्रशाहँ, इस कारण बता मैं तेरा क्या ब्रिय करूँ ?॥ १४६ ॥ उतक्षने उत्तर दिया, कि-महाराज ! यह बरदान दी जिये, कि-नाग मेरे वशमें होजायँ, उस पुरुपने उससे कहा, कि-तो तू इस प्रश्वकी गुदामें फूँकमार

॥ १५० ॥ उत्तङ्क घोड़ेकी गुदामें क्रूँक मारने लगा श्रीर क्रूँक मारते२ घोडेके शरीरके छिदोंमेंसे धर्फके साथ श्रानकी ज्वालार्प निकलने नांगलोक वपश्चितेऽथ संभ्रान्तस्तक्कोऽग्नेस्तेजोभयाद्विपरेणः कुराडले गृहीत्वा सहता अवनाविष्कम्योत्तद्वसुवाच ॥ १५२ ॥ इमे कुराडले गृन् हातु भवातिति स ते प्रतिज्ञग्राहोत्तंकः प्रतिगृद्ध च कुराडलेऽचिन्तयत् ॥ १५३ ॥ ग्राच तत् पुरायकसुपाध्यायान्याद्रूरं चाहमभ्यागतः स कथं सम्माद्ययितित तत् पनं चिन्तयानमेव सपुराप उवाच ॥ १५४ ॥ उत्तद्व प्रतिवाद्यस्थितोह त्यां चलेनेवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यतीति ॥ १५५॥

एनतेवाश्वमधिरोह त्यां चर्गोनैवोपाध्यायकुलं प्रापयिप्यतीति ॥ १५५॥ छ तथेलुक्त्वा तमश्वमधिरु प्रत्याजनामोपाध्यायकुलं उपाध्यायानी च लाता केशानावाष्यन्युपिविद्योक्तको नागच्छतीति यापायास्य मनो वृधे ॥ १५६ ॥ द्यर्थेतस्मिन्नत्तरे स उक्तक्कः भविश्योपाध्यायगृहे उपाध्या यानीक्रस्यवादयत् ते सास्यै कुराडले प्रायच्छत् सा सैनं प्रत्युवाच १५७ छर्चक देशे कालेऽस्यानतः स्वागतं ते वत्स त्यमनागसि मया न शक्तः क्षेत्रस्त्रदोग्रस्थितं सिद्धिमाणुद्धीति ॥ १५८ ॥ श्रथोक्तक्क उपाध्यायमध्य

बाद्यह । तनुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तंक स्वागतंते कि चिरं

ह्मां ॥ १५१ ॥ उससे जय नागलोक जलउटा, श्रान्तके तेजसे (गर-सीसे) किया हुआ तथा घयड़ायां हुआ तक्तक नाग तत्काल दोनो छु-पड़त लेकर ख़रने अधनतें से बाहर निकला श्रीर उसक्के पास श्राकर उससे कहने हमा, कि—॥ १५२ ॥ इन छुण्डलांको श्राप लीजिये, उतक्कने वह के किये श्रोर वह फिर हिस्सार करने लगा, कि—॥ १५३ ॥

जोहो | इन्ड्याताका पुण्यव्रत तो बाज ही है, और मैं तो बहुत दूर ज्ञावहुँचा हूँ, को में आजही उनका सत्कार कैसे करसकूँ गा उत्तक्षकी एसप्रकार चिता करवेह ए देखकर उसही पुरुषने कहाकि-११४८ हेउसक दू रसही घोड़े पर बैठजा, यह क्यामर में तुझै तेरे गुरु के पास लेजा-यगा ॥ १५५॥ उत्तक्ष वहुत अच्छा कहकर उस घोड़ के उपर सवार होतवा और थोड़ों ही देरमें गुरुके घरके स्तमने आपहुँचा, इधर गुरु

जीकी क्वीं न्हा घोकर केल सम्हाल रही थी घोर यदि उत्तंक टीक समय पर न लाएहुँचे तो उसको शाप देतूंगी, पेला विचार कर रही धी॥ १९६॥ परंतु उसी शावस्त्रमें वह उसके ग्रुटके घरमें शापहुँचा और गुरुमाताको प्रणाम करके वह कुण्डल दिये, उस समय गुरुकी ह्वींने कहा, कि—॥ १५७॥ हे उसके ! त् देशकालके श्रमुसार शाप-हुँचा, है देहा ! त् जञ्झा शाया, यहि तू पक क्लामर भी देर करके

्रिक्षा, हे पदा (पूजा कार्या, पाइ पूर्व स्वाप्त सा दे सहस्त है। ज्ञाता तो सैने तुक्ष निरणराधको ही शाप देदिया होता, वेटा ! तेरा कत्याय हो और तुक्षे अखिमादि सिद्धिये प्राप्त हो ॥ १५ ॥ असी सित्य दक्तेत गुरुने पांत गयां और उनको प्रयाम किया, गुरुने कहा, ऋपभस्य पुरीपं भद्मय उपाध्यायेनापि ते भित्ततिमिति ॥ १६३ ॥ ततस्तस्य वचनानमया तदपभस्य परीपमपयक्तं स चापि वाकः तदे तज्ञवतोपदिष्टमिच्छेयं श्रोतं किं तदिति ॥ १६४ ॥ स तेनैवमक उपा-ध्यायः प्रत्यवाच ये ते स्त्रियो धाता विधाता चये चते ग्रणाः सिता-स्तंतवस्ते राज्यहनी यदिष तद्यक्षं द्वादशारं पड वे फमारा परिवर्त्तयंति तेऽपि पड्तवः सम्बत्सरश्चक्रम् ॥ १६५ ॥ यः पुरुषः स पर्जन्यः कि-वेटा ! त् वहुत अच्छा आया, तुभी वेर फहाँ लगी ? ॥ १५६ ॥ उत्तकने उपाध्यायसे कहा, कि-हे महाराज! नागीके राजातज्ञकने मेरे इस काममें विध किया था, इसकारण मुक्ते नागलोक्तमें जाना-पड़ां ॥१६० ॥ महाराज ! तहां मैंने काष्ट्र'के ऊपर सत रखकर दो सियोंको वस बनतेहुए देखा था, उसमें काले स्वेत डोरे थे, वह प्या था ? ॥ १६१ ॥ और तहाँ मैंने छः बालकाँसे घमापहण बारह अरोंवाले एक चक्रको देखा था वह क्या था ? और एक सुंदर पुरुष को तथा वडेमारी घोडेको भी मैंने तहा देखा था वह कौन था ? ॥ १६२॥ श्रीर हे महाराज ! मार्गमें जातेहुए भेने एक बहुत बड़े बैल को देखा था और उसके ऊपर एक पुरुष वैठा हुआ था उसने मुक्तसै श्राप्रदके साथकहा, कि-हे उत्तंक ! इस वैलका गोवर खा, तेरे गुरुने भी पहिले खाया था॥ १६३॥ उसके फएनेसे मैंने उस धेलका नोवर भी खाया, यह बैल और पुरुष कीन था ? तथा यह खब पवा वात थी ? यह सब में श्रापसे सुनना चाहता हूँ, श्राप मुझै इसका उप-देश दीजिये ॥ १६४ ॥ इसबकार उत्तद्धके वृक्षने पर गुरुने कहा कि--वेटा ! तुने जिन स्त्रियोको देखा वह धाता श्रीर विधाता है, फाले श्रीर स्वेत जो डोरे देखे वह रात श्रीर दिन हैं, तूने जो छः वालकाँका चलाया हुआ वारह अरोंका चक्र देखा वह छुः ऋतु तथा संवत्सररूपी चक्र हैं, जिस पुरुषको देखा था वह पर्जन्य है, जिस घोड़ेको देखा वह अशि है श्रीर मार्गमें जातेहए जो वैल देखा था वह पेरावत नागराज है उस के ऊपर जो पुरुष वैठा था वह भगवान् इंद्र हैं, तूने जो वैलका गोघर खाया वह और कुछ नहीं था, अमृत था, वास्तवमें उसको खानेसे ही

* भाषानुवाद सहित *

हतिमिति ॥ १५६ ॥ तमुचंक उपाध्यायं प्रत्युवाच मोस्तच्किण् में नाग-राजेन विद्याः कृतोऽस्मिन् कर्मणि तेनास्मि नागलोकं गतः ॥ १६० ॥ तत्र च मत्रा ष्टि खित्रो तंत्रेऽधिरोष्य पटं वयन्त्रो तिस्मिश्च कृष्णाः सिताश्च तन्त्रवः कि तत् ॥ १६१ ॥ तत्र च मया चत्रं ष्टं द्वार्याएं पट् चैनं कुमाराः परिवर्चयंति तद्रि क्ष पुरुष्यापि मया एएः चापिकः अध्वश्चश्चातिप्रमाणो एएः स चापि कः ॥ १६२ ॥ पथि गच्छता च मया वपमो एएस्तञ्च प्रत्योऽधिकः इस्तेनास्मि सीपचारमकः उत्तकास्य

(84)

अध्याय]

बोऽरवः सोन्तिः य ऋपसस्त्यया पथि गच्छता दृष्टः स पेरावतो ना-गराद्॥ १६६॥ यहचैनमधिक्टः पुरुषःस चँवःयदिष ते भित्ततं तस्य इत्यभस्य पुरीपं तद्वृतं तेन खल्वसि तस्मिन्नागभवने न व्यापन्न-क्ता । १६७ ॥ स हि अगवार्तिदो ममसखात्वदनुक्रोशादिममनुष्रहं इतवान् तस्मात् कुर्वत्ते गृहीत्वा पुनरागतोऽसि ॥१६=॥ तत् सौम्य ग्रम्यतासनुजाने भवन्तं श्रेयोऽवाप्स्यसीति स उपाध्यायेनानुजातो अनवातुत्तंकः कुद्धस्तस्तकं प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनापुरं प्रतस्थे१६६ त हास्तिनपुरं प्राप्य न चिराहिप्रसत्तमः। समागच्छत राजानमृत्तंको जनमेजयस् ॥ १७०॥ पुरा तचशिलासंस्थं निवृत्तमपरोजितम् । स-म्यन्तिकयितं बहु। समंतान्मंत्रिभिर्द्धतम् ॥ १७१ ॥ तस्मै जयाशिषः एव प्रधान्यायं प्रमुख्य सः। उदाचैनं वचः काले शब्द्सस्पन्नयागिरार्७२ होत्तंक तदाक । फ्रान्यस्मिन् करणीये तु कार्ये पार्धिवसत्तम । वाल्यादि-हान्यदेव त्वं कुठवे नुपलक्तम ॥ १७३ ॥ सौतिववाच । एवमकस्त विदेश न राजा जनसेजयः। छार्चयित्वा यथान्यायं प्रत्युवाच हिजोत्तमम्। १७४॥ हन्देक्य उवादः । जामां प्रजानां परिपालनेन स्वं चत्रधर्म परिणक्तयामि। प्रज्ञृहि में किं करणीयमच येनासि कार्येण समागतस्वम तू नावलोकर नग्र नहीं हुना ॥ १६५-१६७॥ वह भगवान् इंद् मेरे सिन ह. एन्ट्रॉने रोरे जवर द्यालु होकर यह अनुप्रह किया था, तंब ही तु इत कुरुउहरोको लेकर नागलोकले लाटकर यहाँ प्रास्का है ॥१६=॥ है जीस्ट । इन म तुक्षे माना देता हूँ कि-तू भपने भएको जा, तेरा क्तवाज होना, हवने गुरुहे आहा देनेपर, कोधमें भराहश्रा उत्तहतक्क हो वव्ला केनेकी इच्छोको हस्तिनापुरकी ओरको चलविया॥ १६८॥ हाहिसोर्ने होड वह उर्जन वहत ही शीघ हस्तिनापुरमें आपहुँचा और सक्तिहाला (देवकारावा) के कपर विजय पाकर तुरतही लौटकर आये,

चारों जोर दैंडेतुए मंत्रियों चे घरेंदुए, घितत श्रीर श्रेष्ठ विजय पानेवाले एका जनकेववर किला।१००।१०२।।श्रीर पहिले गीतिक अनुसार उस वालाओ काशीव हिने प्रिया सामग्री गंभीरवाशी में समयानुकृत वातकाले काशा।१०२॥ उसके कहा कि श्रेष्ठ राजन करने योग्य कामपर काल में ट्रेक्ट तुम वालकोंकी समान दूसरे ही कामों में क्यों तमें रहते हो॥१०३॥ दोति कहते हैं, कि-इसप्रकार ब्राह्म के सुख्ये पचन सुनकर राजा जनकेव्यने थस श्रेष्ठ ब्राह्म का ब्राह्म के सुख्ये वात प्रकार प्रकार करने कहा कि स्में इसप्रकाल प्रकार प्रकार प्रकार प्रकार प्रकार करने किया।१०४॥ कामों क्यों कहा कि स्में इसप्रकाल प्रकार प्रकार करने का प्रकार करने कहा कि स्मान काल करके अपने स्विययधार्यकों निसाता हूँ, कहिये अब मुझे की वात्र काल करके अपने स्विययधार्यकों निसाता हूँ, किया प्रवार प्रवार करने स्वार्थ करना चाहिये। कि - किसके किये आप पहाँ प्रवार है १०५

महाभारत स्त्रादिपर्व

(33)

(83) द्यध्याय] अभाषानवाद सहित अ ॥ १७४॥ सौतिष्वाच । स प्वमुक्तस्तु मृरोत्तमेन द्विजोत्तमः पुप्यकृतां वरिष्ठः। उवाच राजानमदीनसस्यं स्वमेव कार्यं नृपते क्ररूप्य। १७६। उत्तंक उवाच । तक्केण महीन्द्रेन्द्र येन ते हिसितः पिता। तस्म प्रतिकुरुप्य त्वं पन्नगाय दुरात्मने ॥१७७॥ कार्यकालं हि मन्येऽहं विधिदृष्ट्य कर्मणः। तद्गच्छापचिति राजन् पितुस्तस्य महात्मनः॥ १७=॥ तेन हानपराधी स द्यो द्रयान्तरात्मना । पञ्चन्वमनमद्राजा वजाहत र्व द्रमः ॥१७६॥ वलदर्पसमृत्सिक्तस्तवकः पन्नगाश्रमः। श्रकार्य्यं सृतवान् पापो योऽद शत् पितरं तव ॥ १=० ॥ राजर्विवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम्। थियासं काश्यपञ्चीव न्यवर्र्सयत् पापकृत् ॥ १=१ ॥ होन्मईसि तंपापं ज्वलितं हब्यवाहने । सर्पसन्ने महाराज त्वरितं तक्षिधीयताम् ॥ १=०॥ एवं पित्-श्चापचिति जतवांस्त्वं भविष्यसि । मम विषश्च समहत् कृतं राजन सविष्यति ॥ १=३ ॥ कर्मणः पृथिवीपाल मम येन टुरात्मना । विष्नः कृतो महाराज गुर्वर्थे चरनोऽनघ ॥ १८४ ॥ सीतिरुवाच । पतच्छत्वा उप्रथवा कहते हैं, कि-उस श्रेष्ट राजाने यह कहा,तथ ब्राह्मणोमें उत्तम पुग्य कर्म करनेवालोमें श्रेष्ठ उत्तंकने राजासे कहा. कि—हे राजन! तुम उदार हो. इसकारण श्रपना फर्ज्यय करो ॥ १७६॥ उत्तंकने फहा कि—हे राजेन्द्र ! तत्तकने तम्हारे पिताको मारडाला था,उन द्रष्टात्मा सपेंसि तुम बदलालो ॥ १७० ॥ मेरे विचारके श्रमुसार विधाताने इस कामके लिये इस समयका ही श्रवसर रचा है, सो हे राजन ! महा-त्मा श्रपने विताका बदला लेनेको तुम तयार होजाश्रो, उस दुष्टात्मा तज्ञको तम्हारे निरपराध पिताको काटा श्रीर जैसे वजकी चोट लाकर बुक नष्ट होजाता है तैसे ही तम्हारे पिता नरन्त गिरकर मरणको प्राप्त होनपः ॥ १७= ॥ १७६ ॥ वल श्रीर घमएडसे मदोन्मत्त, सर्पाधम पापी तनक नागने, राजर्षिवंशकी रत्ता करनेवाले देवता समान तुम्हारे पिता को डसकर कैसा दुष्कर्म किया है, एक बार स्थिर चित्तसे विचार कर तो देखो, श्रीर इतना ही नहीं किंतु कश्यप नामक एक ब्राह्मण विष उतारनेको ज्ञारहा था, उसको भी तिस पापी तज्ञकने पहिचान कर पीछेको लौटादिया था ॥१=०॥१=१॥ इसकारण हे महाराज तुम शीब ही सर्पयक्षका श्रमुखान करके उस पापात्माको धधकती हुई अग्निमं आहुति देदो, अब तुम शीवतासे यनके लियेतयारी करो १=२ हें राजन् ! पेसा करगेसे तुम्हारे पिताके वैरका बदला होजायमा झौर मेरें ऊपर भो मानो बड़ाभारी उपकार होगा, क्योंकि-हे निर्दोप राजन् ! में जब गुरुद्दिणाके लिये कुएडल लेकर लीटा श्रारहा था उससमय

(६=) * महाभारत श्रादिपर्व * [चौथा

तु स्वितस्तव्याय चुकोप ह । उत्तंकवानयहविषा दीकोऽक्षिर्हविषा यया ॥ १=५ ॥ अष्टुच्छ्रद् स तदा राजा मंत्रिणस्तान् सुद्धःखितः । उत्तं कस्वैव साविच्ये विदुः स्वर्गगितं प्रति ॥ १=६ ॥ तदैव हि स राजेंदो द्वःवशाकाः स्तुतोऽभवत् । यदैव वृत्तं वितरमुत्तंकादशृणोत्तदा ॥ १=० ॥ इति शीमहाभारते आदिषयेणि पौष्यास्यानं समाप्तं तृतीयोऽध्यायः ३ अस्य पौक्षोमपर्वे ।

लोमहर्पण्युम उत्रथवाः सोतिः पौराणिको नैमिपारण्ये ग्रीनकस्य इलपतेर्द्वाद्दश्वार्पिके जन्ने स्थानस्थागतानुपतस्थे ॥१॥पौराणिकः पुराणेकृतथमः स इताक्ष्यलिक्षतानुवाच किम्मवन्तः श्रोतुमिच्छन्तिं किमहं ग्रुवालीति ॥२ ॥तमृपय ऊचुः परमं लोमहर्पणे वद्यामस्त्यां तः प्रतिवद्यति वचः ग्रुथ्यतां कथायोगं नः कथायोगे ॥३॥तत्र मनवान् कुछपतिरतु गोनकोऽग्निसरणमध्यास्ते ॥४॥ योऽसौ दिव्याः स्था । इत्याहरूसंश्रिताः । मनुष्योरमानध्यं कथा वेद् च सर्वशः ॥१॥ ॥ स स्वार्यासन्तर्मानं स्थानिति विद्यान कुलपतिर्द्वाः। स्तो ध्वावति

धीमांत्रहास्त्रे चारएयके ग्रुकः॥६॥ सत्यवादी ग्रामपरस्तपस्त्री नियत-कहते हैं, कि जैसे घोकी ब्राह्मित देनेसे छित्र प्रश्वसित होता है तैसे ही उस्तंकके इन वस्त्रोंको सुनकर राजा जनमेजय तकक नागके अपर कोधमें मराग्या छोर उस्तंक्षेत्र सामने ही राजाने कोधमें मरकर अपने रिताके स्वर्गकार (नृत्युकाल) के विषयमें अपने मंद्रियोंसे बार २ इस्ता ॥ १ हम ॥ श्रीराजव उस्ते उस्तंकक्षेत्र मुखसे ही अपने पिता के मरस्के विषयमें स्वाह्यान्त सुना तब तो राजन्त्र सनमेजय उसी समय सुन्व छोर शोकमें द्वाया ॥ १ हम ॥ गोष्य प्रयोध्या समाप्त

समय दुःख द्यार शांकमं दूबनया॥ १८०॥ पीच्य प्रदाश्याय समाप्त लोमहर्यगृक्षे पुत्र स्तर्वशी पुराण्यक्ता उद्रश्रवा, नैमिपार्ययमं कुल-पति ग्रीतक म्हिन्से बारहवर्ष पर्यन्त होनेवाले यहमं जायेहुए मृष्टि-यांकी सेवा करनेल्वे॥ १॥ पुराणोमं परिश्रम करनेवाले पौराणिक दक्षश्रवाने दोनो हाथ जोडकर उनसे कहा, कि—जय आप क्या सुनना चाहते हैं और में आपको कौनली कथा सुनाई १॥ २॥ मृष्योमें कहा, कि—हे लोनहर्यगुके पुत्र ! हम आपको परम्बस्तवंधी कथा क्सते हैं, सुननेक लिए श्रातुर हुए हमें प्रसङ्कते अनुसार उन्हाम कथाएं

सुंगडये ॥ १ ॥ परंतु हे छुत ! देवता और असुरांकी जिसमें कथायें है पेसे दिव्यवृत्तांतोंके, सम्पूर्ण महुष्य, सर्प और गंधवांकी कथाओंके पूरे काता, छुलपति, विद्वान, चतुर, बतधारी, बुद्धियान, शास्त्र और आरायक वेद्विययमें हमारे गुरु, सत्यवादी, शांतस्वभाव, तपस्वी, नियमसे बत धारण करवेवाले तथा हम सवीकेमान्य कुलपति भग- प्रता स्वपासव ना मान्यः स्तावत् मात्रपास्यताम् ।जातासन्तर्थ्या स्ति ग्रुरावासनं परमध्ति तम् । ततो पर्त्यास्व स्वयं स प्रद्यति हिन्न स्तामः। ॥ ॥ सौतित्रवाचा । प्रवास्त्व ग्रुरो तस्मिनुपविष्टे महात्मनि वित्व प्रथा । १ ॥ सौर्द्रविष्ट्रपर्याः । १ ॥ सौर्द्रपर्याः । १ ॥ सौर्द्रपर्याः । १ ॥ सौर्द्रपर्याः । १ ॥ सौर्द्रपर्याः । १ ॥ ॥ १० ॥ यत्र ब्रह्मपर्यः सित्रः। सुरुत्रासीना भृतसृताः । यद्यायत्तनमा- व्रित्य सुत्रपुत्रपुरःस्ताः ॥ १ ॥ ॥ भृतिवृत्यय सदस्येष सर्वे ग्रुर्पतिस्तराः । १ ॥ अपियप्रवृत्रपर्याः । १ ॥ अपियप्रवृत्रिस्तराः ॥ १ ॥ ॥ स्ति वृत्रपर्याः । ॥ स्ति व्राहित्यविष्ठः शौनकोऽपाव्योदिदम् ॥ १ ॥ ।

शौनक उपाच । पुराखमिललं तात पिता ते उभीतवान, पुरा । क्रांस्मिप तत् सर्वमधीपे लोमहर्पणे ॥ १ ॥ पुराणे हि कथा दिश्या श्रादि वंशाक्ष धीमताम् । कथाते ये पुरास्मिभिः श्रुतप्वाः पितृस्तव ॥ २ ॥ तत्र वंशमहं प्वं श्रोतुमिल्छामि भागवम् । कथास्य कथामतां कल्याः वान्शीनक ऋषि श्रमी श्रीशतालामें श्रीशती उपासता कर रहेतुं, उन की वाट देखिये ॥ ४—९ ॥ श्राह्मणामें श्रेष्ठ हमारे गुरु शोनक ऋषि यहां श्राकर श्राप्ते जो कथा वृक्षे श्राप उस हो कथाको कहें ॥ = ॥ उत्रश्रवाने कहा, कि—

कथा चूर्के श्राप उस हो कथाको कहें ॥ = ॥ उत्रक्षवाने कहा, कि—
वंत्रत श्रन्छा, ऐसा ही होगा, वह महात्मा गुरु वहां श्राकर श्रपके
श्रास्त पर बेंट्रकर मुभसे प्रश्न करेंगे में तव हा नानाप्रकारकीपवित्र
कथात्राको बहुँगा ॥ ॥ ॥ वदनंतर वाहाणोमें श्रेष्ट शोनक स्रृपि शास्त्र
की विधिक्षे श्रन्तसर श्रपने सव नित्यकर्मको करके श्रधांत् वेदके
स्वाध्ययसे ऋषियोंको यहाँसे देवताश्रांको और तर्पणसे पितरांको
तृत करके तहां सचके सामने श्राये ॥ १० ॥ कि—कहां सृत्युत्रको
श्रामें करके यहाम् इपमें व्रतधार्त ग्रह्मिये सिद्ध सुखदाक श्राम्
सनी पर वैटेंद्रए थे ॥ ११ ॥ वह ऋषि और सिद्ध सुखदाक श्राम्

तव शीनक भी श्रपने श्रासन पर बैठकर पीराणिक स्तासे नीचे लिखे श्राहुनार कथा बूमनेलने ॥ १२ ॥ इति चीथा श्रप्थाय समार ॥ ॥ ॥ श्री श्रीर शीनकाने कहा, किन्दे तात स्तुजुन पित्ते नुम्हारे पिताने महर्षि वैदेश्यास्त्रीसे सब पुराण पढेथे, हे लोमहर्यके पुत्र । स्था तुम उन सब शास्त्रोंको जानते हो? ॥१॥ आचीन इतिहासों जो दिव्य कथाएं श्रुद्धिमानोक शादिवंशोंके इतिहास कहे हैं. यह सम हमने तुम्हारे पिता के मुखसे पहिले सुमेथे ॥ २॥ उनमेसे पहिले तो मुभी भुगुवंशका इतिहास सुननेकी इच्छा है, इसकारण श्राप उस कथाको हमसे कहिये,

के श्राते ही खडे होगए श्रीर फिर सब श्रपने २ श्रासनो पर बैठगए

िपांचवां # सहाभारत श्रादिपर्च # (200) ्म अवर्षे तय ॥ ३ ॥ सूत उवाच । यद्धीतं पुरा सम्यक् द्विजश्रेष्टैर्महाः न्मभिः । देशस्यायनविषाग्रेयस्तैश्चापि कथितं यथा ॥ ४ ॥ यदधीतञ्च विज्ञा में सम्यक् चैव ततो मया। तावच्छ्युष्व यो देवैः सेन्द्रैः सर्षि-सरुद्र हो: ॥ ५ ॥ पिजतः प्रवरोवंशो भागवी भुगुनन्दन । इमं वंशमहं पूर्व सार्यदन्ते महासुने ॥ ६ ॥ निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतस् र्भगर्महर्विभेगवान् ब्रह्मणा वै स्वयंभवा ॥ ७ ॥ वरुणस्य कतौ जातः पानकादिति नः श्रुतम् । भगोः सुद्यितः पुत्रश्चयवनो नाम भार्गवः म चयवनस्य क दार्योदः प्रमतिनीम धार्मिकः। प्रमतेरप्यभृत् पुत्रो घृता-च्यां उहरित्युत ॥ ८ ॥ हरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः । प्रमद्व-रायां धर्मात्मा तव पृर्वपितामहः॥ १०॥ तपस्वी च यशस्वी च श्रुत-दान् ब्रह्मविक्तमः । धार्मिकः सत्यवादी च नियतो नियताशनः॥ ११ ॥ शीनक उदाच । सृत्युत्र तथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः । च्यवनत्वं परिच्यातं तन्ममाच्ययं पृच्छतः॥ १२॥ सौतिख्वाच। भृगोः सदयिता इस ज्ञापकी कथा खननेको तत्पर हैं॥३॥ सहर्षि शौनककी आक्रा पांकर सृतनन्द्रन उद्रश्रवाने कहा, कि—जिसमें ब्राह्मण वैशम्पायनजी मुख्य थे ऐसे उत्तम महात्मा ब्राह्मणोने, पहिले जो पुराण उत्तमताके लाथ पढ़े हो होर उन्होंने को कथाएं कही हैं उन लव कथाओंको में जानता हूँ ॥ ४ ॥ और मेरे पिता भी जिन पुराणोंकी कथाओंको पढ़े थे, उन सह क्याजांको भी मैंने उनसे भलेपकार पढ़ा है, हे महामुने भगुनन्दन | देवता, इन्द्र, ऋषि और महत्नगोंसे पजित भृगुका पंश इन्स माना जाता है, इसकारए पहिले में तुमसे भूमिका सहितपुरा-गोतें जिसप्रकार भृगुकेदंशका वर्णन किया है, उसके घनुसार भृगुके दंशका इतिहास पहिले कहता हूँ, उसको सुनो, श्रापने सुना ही है, कि-स्वयम्भू सगवान् ब्रह्माजीने वरुएके यहमें श्रक्तिसे महर्षि भग-बान् अ्यु को उत्पन्न किया था, भृगुजीका एकश्र त्यन्त प्यारा च्यवन (भार्यव) नामवाला पुत्र हुआ ॥ ५--- ॥ च्यवनका पुत्र प्रमति परम धर्मात्मा था, प्रमतिही घृताची नामक अप्सरासे रुख नामकपुत्र हुन्ना धा और उठके प्रमहरा नामक खीसे वेदोंका पारगामी धर्मात्मा ग्रनक नामा पुत्र हुआ था जो कि-आपके परदादा थे,हे शौनक ! वह महा-त्मा, कॉर्चिमान्, शास्त्रों के काता, वेदणरगामी, सत्यवादी, शमदमादि युक्त और नियमानुसार पवित्र श्रत्न खानेवाले थे ॥ ६--११ ॥ शौनक कहते हैं, कि हे सूतन दन ! मैं तुमसे प्रश्न करता हूँ, कि महात्मा

भागविका चयवन नाम किल कारणले प्रसिद्ध हुप्राथा सो मुकसे कहो ॥ १२॥ जप्रधवाने कहा, कि—हे भृग्रनन्दन ! महात्मा भृगुकी पुलोमा

(१०१) भार्या पुलोमेत्यभिविश्वना । तस्यां समभवद्रभीं भृगुवीर्य्यसमुद्भवः ॥ १३ ॥ तस्मिन् गर्भेऽथ संभृते प्लोमायां भृगृहत्। समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥ १४ ॥ श्रीभषेकायं निष्कान्ते भृगौ धर्मभृतांवरे श्राश्रमं तस्य रत्तोऽथ प्लोमाभ्याजगाम ह ॥ १५ ॥ तं प्रविश्याश्रमं हुष्टा भूगोर्भार्थ्यामनिन्दिताम् । हुच्छुयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत ॥ १६ ॥ श्रभ्यागतन्त् तद्रज्ञः प्रतामा चार्ग्ययांना । न्यमन्वयतः चन्येन फलमुलादिना तदा ॥ १७ ॥ तांतु रक्षस्तदा ब्रह्मन् हुच्छुयेनाभिषी हितम् हृष्ट्रा हुष्टमभृद्राजन् जिहीर्ष्स्तामनिन्दिनाम् ॥ १= ॥ जातमित्यववीत कॉर्र्यं जिहीर्पेर्मुदितः शुभाम् । सा हि एवं वृतातेन प्लोम्ना तु शुचि-हिमता ॥ १६ ॥ तांतु प्रादात्पिता पश्चाद्भूगचे शास्त्रवत्तदा । तस्य तत् कित्विष्पं नित्यं हृदि वर्त्तति भार्गव ॥ २० ॥ इदमन्तरमित्येवं हर्त्तं चक्ते नामवाली परमप्रसिद्ध स्त्रीथी, जो कि—उनको प्राणोंसे भी श्रधिक प्यारा थी, वह भृगुक्ते वीर्यसे गर्भवती हुई ॥ १३ ॥ कीर्त्तिमान् भृगुक्ती समान स्वभाववाली धर्मपत्नी पुलोमा गर्भवर्ता थी उसी समय. हे शौनक ! धर्म पालनेवालोंमें श्रेष्ठ भगुजी, एक दिन उसकी श्रकेली छोडकर स्नान करने को बाहर गए, इतने ही में एक पुलोमा नामका राज्ञस उनके आध्रम के समीप आपहुँचा ॥ १४ ॥ ६५ ॥ और आध्रम में घुलककर शुद्ध चरित्रवाली भृगुकी भार्या पुलोमाको देखकर कामा-तर होने से मुर्छितसा होगया॥ १६॥ परन्तु उस समय स्वरूपवती पुलोमाने उस श्रभ्यागत राज्ञसका वनके फल मुल श्रादिसे स्वागत किया ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! कामसे पीडित हुआ वह राजस उस समय उसको देखकर प्रसन्न हुआ श्रीर है राजन ! सब प्रकारसे उस पूलोमा को हरकर लेजानेकी इच्छा करने लगा ॥ १= ॥ चलो मेरा काम वन-गया, ऐसा कहकर उस सुन्दर स्त्रीको एरए करना चाहने वाला वह राज्ञस प्रसन्न हुआ, पहिले पवित्र हास्यवाली उस पुलोमा * केसाथ इस राज्ञसने विवाह करना चाहा था॥ १६॥ परन्तुं कन्याके पिताने उसको न देकर शाखकी विधिके अनुसार भुगुके साथ विवाह कर-दिया था, हे भागव ! उस राज्ञसके मनमें तो नित्य यही पापी विचार हुआ करता था, कि-पुलोमाको एरकर लेजाऊँ, ऐसा घच्छा शवसर बार २ नहीं मिलसकता, ऐसा विचार कर उसने उस समय ही उस ं बाल्यावस्था में पुछे।मांके पिताने एक समय जब पुछोमा रोरही थी, तब भय दिखाकर इसको चुराने के छिये कहा कि-अरे राक्षस ! इसको छेजा ' जिस समय

इन्होंने ऐसा कहा उससमय राध्रस समीपमें ही था,उसने आकृत्युहुमाकि दुन्तिया इसकारण वह कन्या राक्षसको दी हुई कडाई।

सनस्तदा । प्रथाक्षिशरणेऽपर्यज्वलन्तं जातवेदसम् ॥२१॥ तमपृच्छ-क्तोरकः पावकं ज्वलितं तदा । शंस मे कल्य भार्ययमग्ने पुच्छे ऋतेन ' है ॥ २२ ॥ सुद्धं त्वमसि देवानां वद पावक पृच्छते । मया हीयं चृता पूर्वभार्क्यार्थे वरवर्णिनी ॥ २३॥ पश्चादिमा पिता प्रादादु भगवेऽनृतका-रिणे। लेयं यदि वरारोहा अगोर्भार्य्यारहोगता॥ २४॥ तथा सत्यं समा-ख्याहि जिहीर्थाम्याश्रमादिसाम् ।स मन्युरुतत्र हृद्यं प्रदहन्तिव तिष्ठति सत्पूर्वभार्य्याम् यदिमां ४गुराप सुमध्यमाम् ॥२५ ॥ सौतिरुवाच । एवं रक्षरेतमामन्त्र्य ज्वलितं जातवेदसम्। शंकमानं धगोर्भार्थ्या पुनः पुनर-पृच्छत ॥ २६ ॥ त्वमग्ने अर्वभूतानायन्तर्चरिस नित्यदा । सािच्चत पुरवपारेषु सत्यं बृहि कवे वचः ॥ २७ ॥ सत्पूर्वापहृता भार्या भगुणा बुतकारिला । सेवं यदि तथा में त्वं सत्यमाख्यातुमईसि॥२=॥श्रुत्वा त्वेत्तो भुगोर्भार्क्या हरिष्यास्याधसादिसास् । जातवेदः पश्यतस्ते वद

को हरनेका निश्चय किया, परन्तु इतने में ही उसकी दृष्टि यद्मशाला की श्रोरको गई श्रीर श्रन्तिदेवको प्रज्वित देखा॥ २०॥ २१ ॥ वस उसी खमय राज्ञलने प्रव्हित छान्निदेवले हुआ कि-हे छान्तिदेव ! सुभा से कहो कि-यह किसकी सार्या है, मैं प्राएसे सची २ वात वृक्ता हूँ ॥ २२ ॥ हे प्रश्निदेव ! तुम देवताओं से सुख हो, इसकारण मुस्से मेरे अश्नका उत्तर दो, पहिले तो इस सुन्दरीको आर्या बनानेके लिये मैंने ही बरा था॥ २३॥ परन्तु पीछेले उसके मिथ्यावादी पिताने मृगुक्ते काथ विवाह करदिया है, हे श्रग्निदेव ! तुम सुभी लत्य २ वर्ताश्रो, यह एकान्तमें खड़ीहुई सुन्दर नितम्बोबाली खी यदि भगुकी भार्या है तो मैं इस आश्रम में से इसको हरकर लेजाना चाहताहुँ, सुन्दर कटि-वाली और पहिले मेरे साथ वरी हुई इस पुलोमाके साथ भगुने विवाह करितया है, जबसे मैंने यह बात सुनी है तबसे कोध मेरे हृदय को भस्म करता हुआ हृदय में चला हुआ है ॥ २४ ॥ २५ ॥ जप्रश्रवा कहते हैं, कि—इस सृगुकी स्त्रीके विषयमें क्या उत्तर देना चाहिये, ऐसी शंकामें पड़ेहुए पज्वलित श्रश्निदेवसे राज्ञस वार२ वृक्ष-नेलगा कि-॥ २६॥ हे अञ्चिदेव ! तुम नित्य सकल प्राणियोंके अन्तः करणमें ही निवास करते हो और पुराय तथा पापके साची हो इस कारण हे अभिदेव ! आपको मेरे प्रश्तका ठीक २ उत्तर देना चाहिये ॥ २० ॥ जिसको पहिले में साग्दान रूपसे अपनी स्त्री करचुका हूँ, उसको पछिले अनुचितकाम करनेवाले भृगुने हरण करितया है, सो हे अन्ते । यदि यह स्त्री मेरी होय और भ्राने यदि असत् काम किया होय तो आपको सत्य कहदेना चाहिये॥ २८॥ आपसे उत्तर मिल-

श्रध्याय] * भापानुवाद् सहित * (१०३)
सत्याक्षरं मम ॥ २६ ॥ सृत ज्वाच । तस्येतह्यनं श्रुत्वा सप्ताधिष्ठुः
स्वितोऽभवत् । भीतोऽसृताःच शापाच भूगोरित्यम्रवीःस्त्रमं ॥ २० ॥ श्रक्षिः
स्वाच । त्यया नृता पुलोमेशं पृवं हानवनन्त्व । किनियर्गविधिता पृवं
मन्त्रवन्न सृता त्यया ॥ २१ ॥ पित्रा तु भृगवे दत्ता पुलोमेशं यशसिनी
प्रदत्ता नतु चे तुम्यं वरलोमान्महोयशाः ॥ २२ ॥ श्रथेमां वेदचुष्टेन
कर्मेणा विधिप्यंकम् । भार्यापृत्यभृताः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव ३३
सेयमित्यवगच्छामि नानृतं यत्तुमुन्तक्षे । नानृतं हि सदा लोके पृत्यते
दानवोत्तम ॥ २४ ॥ इत्यादि पर्विष पीलोमे पञ्चगोऽध्यायः ॥ ५॥
सीतिरुवाच । झन्तेरथ वचः श्रुत्वा तहन्नः प्रतत्तरतीम् । ग्रम्त् व्यत्ताः
कर्पेण मनोमारुवरंदसा ॥ १॥ ततः स गर्मो नियसन् कृतीं भृगुकुलो-

द्वह । रोपानमानुरच्युतः कुन्नेरच्यवनस्तेन सोऽभवत् ॥ २॥ तं च्युत्र जाने पर में इस बाश्रममेंसे भूगुकी भार्याको बापके खामने ही हरकर लेजाऊंगा. इसकारण हे श्रक्तिद्व ! नुम मुक्ते सचा उत्तर हो। २६ ॥ उप्रश्रवा कहते हैं, कि-राजसके ऐसे वचनोको सुनकर सत्याचिदेव (श्रक्ति) वहुत खिलाहुए, द्योंकि—यदि भृगुके पत्तकी यातकहते हैं तव तो मिथ्याभाषण्यै पातकका भय लगता है श्रीर विद सची वात कहते हैं तो भृगुशाप देहेंने, इसका भय है, इसकारण उन्होंने धीरेसे

उत्तर दिया। २० ॥ अद्विने कहा, किन्हें दानवनन्दन ! इस पुलोमानो पिहलें नुमने वरा था, यह वाल उन्होंने बहुन ही धीरेले कही और कित जोरसे स्पष्ट करके कहनेलमें किन्परंत्र तुने पहिले सास्त्रोंक विधित्ते तो इसको नहीं विवाह था, उसके व्यास्त्रोंक विधित्ते तो इसको नहीं विवाह पा, उसके व्यास्त्रोंक विधान नहीं किया था, किंतु उन्होंने पीछेसे अपनी सीमान्यवती पुत्री पुलोमा खुगु के साथ शास्त्रविधित्ते विवाह दी ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ हे दानव मुगुन्नपिने मेरे समसमें वैदिक वर्मकी रीतिस्ते विधिपूर्वक दुस पुलोमाक साथ विवाह किया है और में इस वातको जानता हैं में असस्य चौलना नहीं बाहता तथा है दानवभेष्ट! इस जनत्में कभी असस्यकी प्रतिष्टा

उन्नश्रवा कहते हैं कि—हेब्राह्मण ! श्रप्तिके ऐसे वचन छुनकर उस दुष्टात्मा राज्ञसने वराहका रूप धारण करा और मन तथा पवनके समान वेगसे उस पुलोमाको तुरकर लेगया, हेम्युवंशी उक समय पुलोमाके पेटमेंका मृगुका गर्म कोधके कारण माताकी कोखमें से वाहर निकल पड़ा, इसकारण वह ज्यवन (खुआ हुआ) कहलाया ॥ १ ॥२

भी नहीं होती ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पांचवां श्रध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ 🕸 ॥ 🕸 ॥

नातुक्दराज्युतमादित्यवर्धसम् । तद्रचो भस्मसाद्भतं पपात परिमुच्यताम् ॥ ३ ॥ ता तमादाय सशोणी ससार भृगुनन्द्रन । च्यवनं भागिवं
पुत्र पुलोमा दुःखसूर्विद्धता ॥ ४ ॥ ता ददर्शं स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । क्दन्तीं वाष्पपूर्णाचीं भृगोभाँच्यांमनिन्दिताम् ॥ ५ ॥ सान्त्वयामास भगवात् वर्ष्यं ब्रह्मा पितामहः । अशुविन्दृद्भवा तस्याः प्रावर्चत
महानदी ॥ ६ ॥ अशुवरमांश्रिता तस्या भृगो। पत्न्यास्तपस्चिनः । तस्या
मार्गं व्यवद्यति हुप्त स्वरितं तदा ॥ ७ ॥ नाम तस्यास्तदा नदाश्रके
लोकपितामहः । वयुसरेति भगवांश्च्यवनस्याश्रमं प्रति ॥ = ॥ स प्य
च्यवनो जल्ले अपाः पुत्रः प्रतापवान् । तं ददर्शं पिता तत्र च्यवनं ताञ्च
मार्विनीम् । स पुत्रोमा ततो भायां पत्रच्ल कृपितो भगुः ॥ ८ ॥ मृगुएदाच । केनास्ति रक्तने तस्मै कथिता त्वं जिहीपते । नहि स्वा वेद
वृद्द्यो महार्थी चारहासिनि ॥ १० ॥ तस्वमाख्याहि तं ह्यच प्राप्तीममात्राक्षे ऐटमस्ति गिरेहप श्रीर स्त्र्यंक्षी समान तेजस्वी गर्मको देवने

माताक पेटमेंसे गिरेहुए और सूर्यकी समान तेजस्वी गर्भकी देखते चल ही, राचस पुलोमांको छोडकर पृथ्वीपर गिरगया श्रीर देखते २ वह जलकर भस्म होगया॥३॥ तदन्तर दुःखले व्याकुल हुई श्रीर सुन्दर नितम्बीवाली पुलोमा, भृगुकेपुत्र च्यवनको लेकर रोती र तहांसे आगको चलदी ॥ ४॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने स्वयं भुगुकी सदाचारवती स्त्रीको श्राखाँमें श्रांस् भरे रोतीहुई देखा ॥ पू ॥ तद पितानह भगवान् ब्रह्माजीने पुत्रवधू पुलोसाको शांत किया पुत्तोमा जो रोई थी, उतके ब्राँसुक्रीकी विदुर्शोमेंसे एक वडीमारी नदी तहने लगी॥६॥ और वह नदी तपस्वी भगवान् स्युकी धर्मपत्नी के पीछे पगर पर वहने लगी, उस को देखकर उससमय सब लोकों के पितामह भगवान् बहाजीने उस नदी को अपनी पुत्रवधूके पग २ पर पीछे जाती हुई देखकर उसका 'वधूसरा' नाम रेंक्खा, यह नदी च्यवन ऋषिके आश्रमके पास श्रवे भी वहती है ॥ = ॥ इरुप्रकार अगवान् अगुके प्रतापी पुत्र व्यवन ऋषि उत्पन्न हुए॥ ६॥ पिता भृगु ऋषिने अपने पुत्र व्यवनको तथा अपनी लंदरी रजीको देखते ही कोधमें भरकर अपनी रजी पुलोमासे दूसा ॥ १० ॥ भृगु वोले, कि हरण करना चाहने वाले उस राजसको तेरा परिचय किसने दिया यह वता, हे मधुर हास्यवाली स्त्री ! वह राच्छ तो इस बातको नहीं जानता था, कि-त् सेरी भार्या है॥ १०॥ तो ऐसा

कौन है कि-जिसने उस राजसको तेरा पता दिया, यह तृ मुक्तसे कह, पर्वोक्ति-में अभी उसको कोघके कारणशाप देना चाहताहूँ, ऐसा कौन है जो मेरे शापसे न डरता हो ? और यह अपराध किसने किया ? च्छाम्यहं रुपा । विभेति को न शापान्मे कस्य चार्य व्यतिक्रमः ॥ ११ ॥ पुलोमोवाच । श्रानिना भगवंस्तस्मे रत्तसेऽहं निवेदिता । ततो माम-नयद्गत्तः क्रोशन्तींकुररीमिय ॥ १२ ॥ साहं तव सुतस्यास्य तेजसा परि-मोत्तिता । भस्मीभृतं न् तद्गत्तो मामुत्तस्त्य पपात य ॥१३॥ सृत उवाच

इति श्रत्वा पुलोमाया भगः परममन्यमान् । शशापानि प्रतिकद्धः सर्व-

भक्तो भविष्यसि ॥ १८ ॥ पौलोमेऽभिनशापः पछोऽध्यायः ॥ ६ ॥ १० १० सौतिरुवाच । शतस्तु भृगुणा विहः कुदो वायवमथाववीत् । किमिन्दं साहसं व्रह्मन, कृतवानिस मां प्रति ॥१॥धर्मं प्रयतमानस्य सत्यञ्च वद्वतः । समम् । पृष्टो वद्ववृत्यं सत्यं व्यक्षियोरोऽत्र को मम ॥२॥ पृष्टोहि साची यः साम्यं जानानोऽप्यन्यथा वदेत् । सं पृथीनात्मनः सत्र कुले हन्यात्त-थापरान् ॥॥यञ्च कार्य्यायितस्वतो जानानोऽपि न भागते। सोऽपि तेनव्य

पापेन लिप्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ शक्तोऽहमपि शतं त्वां मान्यास्त

पुलामा कहनेलगी, फि-हे भगवन् । श्रिमिने उस राज्ञसको मेरा परि-चय दिया था, तव वह राज्ञस ट्टीड़ीकी समान रोतीहुई मुक्तैयड़े वेग के साथ श्राश्रममें से हरण करके लेगया था श्रीर में इस तुम्हारे पुत्रके कारण उस राज्ञसके हाथसे हूटी हैं, वह राज्ञस इस वालकको देखते ही मुक्ते गिरती हुई छोड़कर पृथ्वीपर गिरपड़ा श्रोरगिरते ही जलकर भस्म होगया ॥ १२ ॥१३ ॥ उप्रश्रम कहते हैं, कि—पुलोमाके मुखसे इसप्रकार बृज्ञानको सुनकर भृगुको वड़ा कोध चड़श्राया श्रीर उन्होंने ग्राति कोधमें होकर श्राप्तको श्राप दिया, कि—जा तृ सर्वभक्षी होजा-यगा॥ १४ ॥ इति छुठा श्रास्त्राय समान्न॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उत्रध्वा कहते हैं, कि —भृगुके शाप देने पर अग्निने क्षोधमें आकर भृगु ऋषितं कहा, कि —हे ब्राह्मण । मेरे ऊपर यह साहल वयों किया? में धर्मके विषयमें क्योग किया करताहूँ, सत्य और यथार्थ बात कहता हैं, इसकारण पुलोमाने जब मुकते वृक्षा ति व्यक्त सात कहती इसमें मेरा क्या अपराध है ?॥ १॥ २॥ यदि कोई साली किसी बातका जानता हो और उससे जब बहु बात बूक्सीजाय तब यदि बहु

मिथ्या वोलें तो उसके कुलको बीतीहुई छः पीढ़ी और आगेको होने वालीं सात पीढ़ियोंका नाश होताहै अर्थात् वह नरकमें पड़ताहै॥३॥ ऐसे ही और किसी भी कामको जाननेवाले महुष्यके पास व्यक्तेको जाने पर यदि वह ठीक वात नहीं कहता है किंतु उलटी वात बताता है तो वह भी इस्ति प्रका मांगी होता, है, इसमें जरा भी सन्देह

नहीं है ॥ ४ ॥ में भी तुम्हे शांप देसकता हैं, परन्तु ब्राह्मण मेरे मान्य है इसकारण में तुम्हें शाप नहीं देता हूँ हेब्राह्मण्!तुम धर्मको जानते

[सातवां # महाभारत श्रादिपर्व # (१०६) ब्राह्मणा मम । जानतोऽपि च ते ब्रह्मन् कथयिष्ये निवोध तत् ॥५॥यागेन बहुधातमानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्त्तिषु । श्रक्षिहोत्रेषु सत्रेषु क्रियासु च मखेषु च ॥६॥ चेदोक्तेन विधानेन मिय यद्यते हविः। देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै॥७॥ग्रापो देवगणाः सर्वे ग्रापः पितृगणास्तथा। दर्शश्च पौर्णमासश्च देवानां पितृभिः सह ॥८॥देवताः पितरस्तस्मात्पितरश्चापि देवताः । एकीभूताश्च दृश्यन्ते पृथक्त्वेन च पर्वसु ॥ ६ ॥ देवताः पित-रश्चैव भुञ्जते मयि यद्भुतम् । देवतानां पितृणाञ्च मुखमेतदहं स्मृतम् ॥ १० ॥ श्रमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः । मन्मुखेनैव हूयन्ते सुञ्जते च हुतं हविः। सर्वभक्तः कथं तेषां भविष्यामि मखं त्वहम् ॥ ११ ॥ सौतिरुवाच।चिन्तयित्वा ततो वहिश्वके सहार्मात्मनः द्विजानामग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रित्रास् च।१२। निरोङ्कारवपद्काराः स्वधा-स्वाहाविवाजताः।विनाञ्चिनाप्रजाः सर्वास्ततः श्रासन् सुदुःखिताः॥१३॥ श्रथर्थः समुद्धिःना देवान् गत्वाबुवन्वचः। श्रग्निनाशात् कियाभ्रंशा-हो, तथापि मैं जो कुछ कहता हूँ, उसको सुनो ॥ ५ ॥ भैं गाईपत्य श्रीर दित्तणाग्नि श्रादि मुर्त्तियोंमें नित्य श्राग्निहोत्रोंमें, यज्ञोंमें, विवा-हादि कियाओंके होमोमें श्रीर श्रन्य यहाँमें भी योगसिद्धिके प्रभावसे ध्यपने बहुतसे रूपोंसे निवास करके रहता हूँ ॥ ६ ॥ श्रीर वेदमें कही हुई विधिसे सुक्षमें जो हवि होमाजाता है उससे देवता और पितर तृप्त होतेहैं॥ ७॥ अग्निमें होमाहुआ सोम, घी और दूध सकल देवता श्रीर पितरोंका शरीर बनजाताहै, देवताश्रोंका पितरोंके साथ श्रमा-वास्य और पौर्णमाल नामक यहाँमें समान भाग है, इसकारण देवता ही पितर हैं, और पितर ही देवता हैं, इसप्रकार एकरूप देखे जाते हैं परन्तु वह पर्वणियोमें पृथक् २ प्रतीत होते हैं ॥ 🖛 ॥ 🗧 ॥ सुक्षमें जो होमाजाता है वह देवता श्रीर पितरोंको पहुँचता है, क्योंकि-में देवता श्रीर पितरोंका सुख मानाजाताहूँ ॥ १० ॥ श्रमावास्याके दिन पितर श्रीर पौर्णमासीके दिन देवता मेरेमें जो होमाजाता है उसको मेरे मुखसे ही खाते हैं इसकारण सर्वभन्नी होनेपर में उनका मख कैसे होसक्या अर्थात् देवता और पितरोंका मुखक्य होनेपर में पवित्र छौर छपवित्र चाहे जिस पदार्थको कैसे भन्गण करसकंगा॥ ११॥ उग्रथवा कहते हैं, कि-इसप्रकार कहनेके ग्रनन्तर ग्रन्निदेव सबस्थानी से जन्तर्थान होगए॥ १२॥ ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रोंमें, यहाँमें तथा समा ञादिकी कियाओंमें ॐकार, वषद्कार, स्वाहा, खधा श्रादि वंद होगए सब प्रजा भी ऋग्निके अन्तर्भान होनेसे दुःखित होगई, ॥ १३ ॥ घव-डाएइए ऋषि देवतात्रोंके पास गए और इसप्रकार कहनेलगे कि-

अभाषानुवाद सहित (800) इहान्ता लोकास्त्रयोगघाः॥१४॥ चिद्धमत्र यत्कार्य्यं न स्वात्कालान्ययो यथो । अथर्पयक्ष देवाक्ष ब्रह्माण्मुपराम्य तु ॥१५॥ अग्नेरावेदयञ्छापं कियालंहारमेव च । भृगुणा वै महाभाग श्रप्तोऽग्निः कारणान्तरे॥१६॥ कथं देवमुखो भृत्वा यशभागात्रमुक्तथा। हुतभक् सर्वलोकेषु सर्व भक्तत्वमेष्यति ॥ १७ ॥ श्रुत्वा तु तहचस्तेपामग्निमाहय विश्वकृत् । उवाच बचनं रहरूएं भूतभावनमञ्ययम् ॥ १= ॥ लोकानामिह् सर्वेपां त्वं कर्त्ता चान्त एव च । त्वं घारयसि लोकांस्त्रीन् कियाणाञ्च प्रवर्त्तकः ॥ १८ ॥ स तथा कुरु लोकेश नोच्छिचेरन्यथा कियाः। कस्मादेवं विमु-हस्त्वमीश्वरः सन् हुताशन ॥ २० ॥ त्वं पवित्रं सदा लोके सर्वभृतग-तिश्च हु । न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्तवमेष्यसि ॥ २१ ॥ श्रपाने हार्चिपो यास्ते सर्वं भोदयन्ति ताः शिखिन् । प्रव्यादा च ततुर्श्या ते सा सर्वं भक्तियस्यति । यथा सूर्य्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वे शुचि विभाव्यते ।। २२ ॥ तथा तद्धिभिर्द्ग्यं सर्वे श्चि भविष्यति । त्वमन्ते परमं तेजः स्वप्र-हे निर्दोप देवताओं ! शग्निदेव श्रन्तर्शन होगए हैं इसकारण हमारी नित्यकी श्रशिदोत्रादि क्रियाएं वन्द होगई, श्रव तिलोकीके प्राणी वया करें ? हमारी कुछ समक्षमें ही नहीं श्राता॥१शासो श्रवशाप जराभी विलम्य न करके इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो उपाय करिये तद-नन्तर ऋषियों और देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर ॥१५॥ अग्निके शापका बत्तान्त तथा कियाश्रोंके वन्द होनेका समाचार निवेदन किया हे महीमाग ! किसी कारणसं भृगुजीने अग्निको शाप देदिया है ॥१६॥ परन्त श्रमि देवमण है और यहके भागमें प्रथम भोका है, वह सब लोकोंमें सर्वभन्नी कैसे होसकता है ? देवताशांकी इस वातको सनकर विख्वके कत्ता ब्रह्माजीने श्रानिको श्रपने पास ब्रलाया शौर प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले श्रविनाशी श्रग्निके प्रति कोमल वचनसे कहा कि-है झाने ! तू ही सब लोकोंका कत्ता और हत्ती है, सब लोकोंको धारण करने वाला भी त ही है और फियाओंका प्रवर्त्तक भी त हो है, इस कारण हे लोकेश । ऐसा वर्त्ताव करो कि-जिससे कियाश्रोंका नाश न होय हे हुताशन! तुम महासमर्थ होकर ऐसे मृढ़ कैसे होगए हो ? ॥ १७।२० ।। तुम जगत्में सदा पवित्र हो श्रीर जगत्में सव प्राणियों की गति भी वास्तवमें तुम ही हो इसकारण तुम सब शरीरों सेसर्व-भूजी नहीं होशोगे॥२१॥हे शिखिन् ! तम्हारे श्रपानदेशमें जो ज्वालाएं हैं वह सबका भन्नण करेंगी, तथा. मनुष्यादिका मांस भन्नण करने-वाली तम्हारी जो मूर्लिये हैं वह सबका भक्तण करेगी श्रीर जैसे सर्थ की किर्ल पड़ने से सब बस्तुएं पवित्र होजाती हैं तैसे ही तुम्हारी (१०=) * सहाभारत श्रादिपर्वं *

भावाद्विनर्गतम् ॥२३॥ स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यसृषेविभो । देवानं चात्मनां भागं गृहाण् त्यं सुखे हुतम् ॥ २४ ॥ सौतिरुवाच । एवम-स्वित तं विहः प्रत्युवाच पितामहम् । जगाम शासनं कर्त्तं देवस्य परमेष्टिनः ॥ २५ ॥ देवप्यस्य सुदितास्ततो जम्मुर्यथानतम् । ऋष्यस्य यथापृर्वं क्षियाः सर्वा प्रचक्तेरे ॥२६ ॥ दिवि देवा सुसृदिदे सृतसङ्खाश्च लौकिकाः । श्रमिनश्च परमां प्रीतिमवाप हतकलमयः ॥ २७ ॥ प्यं स भगवाञ्चापं लोभेऽसिम् गृतः पुरा । प्यमेष पुरावृत्तं इतिहासोऽमि शापजः । पुलोम्नश्च विनाशोऽयं ज्यवनस्य च सम्भवः ॥ २० ॥ प्रापजः । पुलोम्नश्च विनाशोऽयं ज्यवनस्य च सम्भवः ॥ २० ॥

स्त उवाच। स चापि च्यवनो ब्रह्मच् भागवीऽजनयत् सुतम्।सुक-न्यायां महात्मानं प्रप्ताते दीवनेजसम्॥॥॥प्रमतिस्तु दर्शनाम घृताच्यां समजीजनत् एवः प्रमह्तरायान्तु शुनकं समजीजनत् ॥२॥ तस्य ब्रह्मच्

ज्यालाओं में जलाहुआ सव पिवन होजायगो, हे अन्ते ! तुम अपने प्रभावसे ही उत्पन्न हुए परमतेज हो ॥ २२-२३ ॥ इसकारण हेव्यापक अने ! अपने तेजके प्रभावसे ही तुम ऋषिके शापको सच्चाकर दिखानो और मुखमें होमेहुए देवताओं के तथा अपने भागको तुम श्रहण करो ॥ २४ ॥ उपअवा कहते हैं, कितद्वनन्तर अग्नि ने पितामह ब्रह्माजी से कहा, कि — अञ्चा ऐसा ही होगा, किर अश्विदेव ब्रह्माजीकी आज्ञा- उसार करतेको चलेगए ॥ २५ ॥ और देवता तथा ऋषि भी प्रसन्न होतेहुए जहांने आये तहांको चलेगए, ऋषिगण पिहले की समान अपनी सव क्रियाए और तहांको चलेगए, ऋषिगण पिहले की समान अपनी सव क्रियाए और तहांको भागन्दागण और पाप प्रसन्त हुए, जगत्के सव प्राणियोंने भी परम आनन्दागण और पाप सित हुआ अनि भी परम आनन्द्वा अश्व । इसामकार पाचीन कुत्तान्तको प्राप्त हुआ अश्व । इसामकार होति हुआ अनिक श्रापको च्यानको प्राप्त हुआ हिन की शापको चिवपका इसप्रकार प्राचीन कुत्तान्तको इतिहास है, कि-जिसमें पुलोमा राजसका विनाग तथा चयवनके जन्मकी कथा आती है ॥२६ ॥ सातवा

था, जो महावलवान तीत्र ब्रतधारी, यशस्वी और भृगुके सव पुत्रोंमें प्रधान पुरुष था, वह जन्मकालसे ही तीव्र तपस्या करनेलगा, इस कारण सर्वत्र उसका यश ब्रदल होगया था, हे ब्राह्मणी । उस महा-

भाषानुचाद सहित # श्रध्याय े रुरोः सर्वं चरितं भृरितेजसः । विरनरंश प्रवन्यामि नच्छ् शन्यमशेपतः ॥ ३ ॥ ऋषिरालीनगदान् पूर्वं नगोविचासमन्यितः । स्थलकेश इति ख्यातः सर्वभूतहिते रतः ॥ ४ ॥ एनव्मिशेव काले न सेनकायां प्रजिहा-यान् । गन्धर्यराजो विप्रपे विश्वावसुरिति स्मृतः ॥५॥ श्रम्सरा भेनका तस्य तं गर्भं भगुनन्द्न । उत्सलकां यथाकालं स्थलकेशाश्रमं प्रति ॥६॥ उत्सृत्य चैव तं नभै नदास्भीरं जगाम सा । श्रन्सरा मेनका ब्रह्मश्चि-र्देयो निरपन्नपा ॥ ७ ॥ कन्याममरगर्भागां व्यक्तन्तीमित्र च श्रिया । तान्ददर्श सतुन्युष्टां नदीनीरे सहासृषिः ॥ = ॥ स्थ्लकेशः स तेजस्त्री विजने वन्ध्यक्तिताम् । स तां राष्ट्रा तदा कन्यां स्थलकेको मरादिकः ॥ ६ ॥ जञ्चार च मनिश्रेष्ठः रुपार्थिष्टः पूर्योप च । पपृथे सा वरारोहा तस्याश्चमपदे गुर्भे ॥ २० ॥ जानकाद्याः क्रियाध्यास्या विधिपृषं यथा-क्रमम्। स्थूलकेशो महासागळकार सुमहानृषिः ॥११॥ प्रमेदाश्यो वरा सा न् सन्वद्धपनुणान्विना । तनः प्रमहरंत्यस्या नान चक्रं महा-मृषिः ॥१२॥ तामाश्रमपदे तस्य गर्न्ह प्रा प्रमहराम् । वसूव फिल धर्मा-त्मा मदनोपहतस्तदा ॥ १३ ॥ पितरं सिविभिः सोऽधे श्रावयामास तेजस्वी रुरुके चरित्रको विस्तारके साथ फहताहूँ, उसको तुम सब सनो ॥ १-३ ॥ पहिले तपस्त्री श्रीर विद्वान, सकल प्राणियोद्धे फल्याण में प्रीति रखनेवाले स्थल देश नामवाले एक प्रसिद्ध मएपि थे॥ ४॥ ह विप्रपें। उस समय विश्वावसु नामके एक गन्धर्वराजने मेनका नामवाली ब्रप्सरामें गर्माधान फिया श्रीर हे भगुनन्दन ! जब श्रपना समय पुरा होनेको आया तब दयाहीन श्रीर लज्जारहित वह अप्सरा तत्काल जन्मेहुए उस वालक को स्थलकेश ऋषिके आश्रमके सामने नदीके तटपर रखकर चलीगई॥ ५-७ ॥ देवकन्याकी समान रमणीय और सुन्दरताकी प्रमासे दमकती हुई उस कन्याको महर्षि स्धूलकेशने नदी के किनारे पर पडीहुई देखा॥ =॥ उस कन्याको मार्गमें विना मा वापकी पड़ीहुई देखकर तेजस्त्री महात्मा महुर्पि स्थलकेशको दया श्रागई, इस कारण यह उस कन्याको उठावर श्रपने श्राश्रममें लेशाये, वह सुन्दराङ्गी कन्या स्थलकेशके सभ आश्रममें रहकर धीरेशवड़ी होनेलगी॥ ६-१०॥ महाभाग महर्पिस्थुलकेशने क्रम२से उस कन्याके जातकर्म श्रादि संस्कार करदिये ॥११॥ वह रूप, गुण श्रीर दुद्धिमें सब प्रमदाश्री (स्त्रियों) से श्रेष्ठ थीं, इसकोरण उस कन्याका नाम भी महर्पिने प्रमद्वरा रक्खा। १२॥ एक समय स्थलकेश ऋषिके आध्रममें प्रमद्धरा को देखकर धर्मात्मा रुढ कामदेवसे हारगप ॥१३ ॥ श्रीर उन्होंने मित्रोंके द्वारा श्रपने पितां. भुगुके पुत्र प्रमति को अपनी कामकी दशा निवेदन करायी, जिस

महाभारत ज्ञादिपर्व # (230) सार्गवस । असतिस्थास्ययाचालां रूपलकेशंयशस्विनम् ॥१ ॥ ततःप्रादा-रिएता कन्यां रुप्ये तां प्रमहराम् । विवाहं स्थापयित्वात्रे नक्तने भग-हैनते ॥१५॥ ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थित।सखीभिः क्रीड़ती साझ सा कत्या बरवर्शिनी ॥ १६ ॥ नापश्यत संप्रसप्तं वै भुजङ्गं तिर्थ्य-गायतम् । पदा चैनं लमाकामन् सुम्षुः कालचोदिता ॥ १७ ॥ स तस्याः संप्रमुक्तायाध्वीदितः कालधर्मणा । विपोपक्तितान्दशनान् भशमक् न्य-पातवत् ॥ १८ ॥ सा द्रपा तेन सर्पेण पपात सहसा भुवि । विवर्णा विग-तथीका सुद्यासरणचेतना ॥ १६ ॥ निरानन्दकरी तेपां बन्धनां मुक्तम-र्द्धजा । व्यसुरप्रेक्षणीया सा प्रेक्षणीयतप्राभवत् ॥ २० ॥ प्रसुप्तेवाभव-चाणि भवि सर्वविपार्दिता। भूयो मनोहरतरा वभूव तनुमध्यमारश्ददर्श तां पिता चैवरे चैवान्ये तपस्विनः।विचेष्टमानां पतिता अतले पदावचंसम ॥२२॥ ततः सर्वे हिजवराः समाजग्मः छपान्विताः । स्वस्त्यत्रेयो महा-से महात्मा प्रमृतिन अपने पुत्रके लिये यक्तरवी स्थूलकेश ऋषिसे उस कन्याकी याचना करी, तय स्थलकेंग ऋषिने उसे याचनाको स्वी-कार करके प्रमहरा कन्याका रुखे साथ संयंध पक्का करके श्राने वाले पर्वाकाल्युनी नक्त्रमें विवाहका निश्चय करदिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ कितने ही दिन दीतगए और विवाहकाल समीप श्रागवा था, इतने ही में एक लाग वह वरवर्णिनी कन्या अपनी लमान अवस्थाकी सम्वेतियों के साथ वनमें कीडा कररही थी, तहाँ मार्गमें जातेहण, मानी कालकी परेणा करी हुई और मरना चाहतीहुई तिस कन्याने परनी पर आड़े होकर पड़ेडुए एक लम्बे सांपको देखा नहीं इस-कारण उस सर्वको अपने पैरसे खंददिया, उसी समय कालधर्मके प्रेरणा करेहुर सपने मदमस हुई उस कन्याके शरीरमें विपसे भरी हुई अपनी डाड़का जोरसे इंक मारदिया॥ १६ ॥१७॥सर्पके काटतेही वह क्रम्या एकाएकी शृमिवर गिरपड़ी, उसके शरीरका रंग वदलगया, शरीरका लावराय नष्ट होगया, गहने शरीरमेंसे निकलकर विखरगए. चेतनता उड्गई॥ १६॥ शिरके वाल विखरनए, सिख्यें उसको देख-कर उदास हो हाहाकार करनेलगी, और जो वास्तवमें देखने योग्य खन्दराङ्गी थी यह एक ही चलमें प्राल निकलते ही ऐसी होगई कि देखनेमें भय लगनेलगा ।। २० ॥ सर्पको विषसे पीड़ित होती हुई वह निद्वाके वशीभृतसी होकर पृथ्वी पर गिरपड़ी थी तो भी वह सिंहकी समान कटिवाली चलभर को देखनेमें वहत ही अच्छी प्रतीत होती थी ॥ २१ ॥ द्यालु सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण तथा उसके पिता और अन्य जो तपस्वी तहाँ आएँ थे उन्होने कमलकी समान कान्तिवाली तथा चेत्रतारहित उस कन्या को भूमि पर पड़ीहुइ देखा॥ २२॥ स्वस्त्यत्रेय - verein service resident some verein

स्थातिकाच । यह तथापाइए द्वाहागपु अहान्यन् । करुद्वुकाहा गहुन । वर्त गलातिद्वुः वितः ॥ १॥ शोकेनाभिहनः सोऽप विलापन करुपंवहु। अवविक्रवनं शोच्य प्रियां स्कृत्वा प्रमहराम् ॥२॥ शोत सा भृति तत्वद्विः । सम शोकविवर्द्धिनी । वान्यवानाञ्च सर्वेषां कि नु दुःत्वमतः परम्। ३। यदि दस्तं तपस्तर्म गुरवो वा मया यदि । सम्यगराधितास्तेन सन्त्री वतु मम प्रिया ॥ १ ॥ यथाच कन्मप्रभृति यतात्मार्तः घृतवतः । ममहरा तथाविया समुत्तिष्ठतु भाविनी ॥ ५ ॥ प्यं विलप्यनस्तर्म भार्योषं दुःश्वितस्य व । देवदूनस्य वाप्यमारः करं यने ॥ ६ ॥ देवदून वतु स्वतः । स्वतिस्य वाप्यमारः करं यने ॥ ६ ॥ देवदून स्वतः यदि दुःश्वित तन्मृया । यतो मस्पैस्य महाजानु, कृशिक, शंतमेखल, उद्दालक, महायशस्यी, कट एवंत, भरम्बाहा, कृशिक, शंतमेखल, उद्दालक, महायशस्यी, कट एवंत, भरम्बाहा, कृशिक, शंतमेखल, उद्दालक, महायशस्यी, कट प्रवेत, भरम्बाहा, कृशिक, शंतमेखल, उद्दालक, महायशस्यी, कट एवंत, भरम्बाहा, कृशिक, शंतमेखल, व्हालक, सहायशस्यी, कट एवंत, भरम्बाहा, कृशिक, स्वतः भरम्बाहा, व्यवस्थित स्वतः स्वतः

महाजातु, फुश्रिक, शंवमंत्रल, उद्दालक, महायग्रस्या, कट, स्वत, भर-द्वाज, कोण्कुस्त्य, गोतम पुत्रसित प्रमति तथा श्रीर यहुनसे चनवासी तपस्वी बहां कन्या पड़ी थी तहां श्राये श्रीर उस कन्याको सर्पेक विपक्षी पौड़ासे विहल होकर मरणको प्राप्त हुई देखकर फातर हो रोने लगे, यह दशा देख करु श्रवहाकर श्राधममें से नातर स्तानया, परंनु श्रीर सब प्राष्ट्रण तहाँ ही वेटे रहे ॥ २६-२५॥ श्राटमां प्रध्याय समाप्त. उप्रश्रवा कहते हैं, कि है ब्रह्मन् । जिस समय उस श्राधममें महात्मा ब्राष्ट्रण प्रमहराके श्रास पास पेंडेहुप शोक कररहे थे, उससमय शोक से महाद्वाजित हुआ रुट श्रकेला गहन वनमें जा डीक फोड़कर रोने

देवदूतने श्राकर इसप्रकार कहा-॥ ६॥ देवदूत वोला, कि-हे रुह !

महाभारत श्रादिपर्व # ि नध्म (११२) धर्मात्मन्नायुरस्ति गतायुषः ॥ ७ ॥ गतायुरेषा कृपणा गन्धर्वाप्सरसोः स्ता । तस्माच्छोके मनस्तात माक्रथास्त्वं कथञ्चन ॥ = ॥ उपायश्चात्र विंहितः पूर्व देवैर्महात्मिमः । तं यदीच्छसि कर्त्तं त्वं प्राप्स्यसीह प्रम-द्वराम् ॥६॥ रुरुरुयोच । क उपायः कृतो देवैर्वृहि तत्त्वेन खेचर । करि-ध्येऽहं तथा श्रुत्वा त्रातुम्हेति मां भवान् ॥१०॥ देवदूत उवाच ।श्रायु-षोऽद्ध प्रयच्छ त्वं कन्यायै भृगुनन्दन । एवमुत्थास्यति रुरोतवभार्य्या प्रमहरा॥ ११ ॥ एरुख्याच । श्रायुषोऽद्ध प्रयच्छामि कन्यायै खेचरो-त्तम । शङ्कारद्धपाभरणा समुत्तिष्ठतु मे प्रिया ॥ १२ सूत उवाच । ततो गंधर्वराज्य देवदूतश्च सत्तमी । धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥ १३ ॥ धर्मराजायुषोऽर्द्धेन हरोर्भार्या प्रमद्भरा । समुत्तिष्ठंतु कल्याणी मृतैवं यदि मन्यसे ॥ १४ ॥ धर्मराज् उवाच । प्रमद्भरा ररोमीयीं देव-बुत यदीच्छिति । उत्तिष्ठत्वायुपोऽद्धेन रुरोरेव समन्विता ॥ १५ ॥ सै:तिरुवाच । एवमुक्ते ततः कन्या सोद्तिप्ठत् प्रमद्वरा।रुरोस्तस्या-तू दुःखन्ने कारण जो वचन कहरहा है, उन वचनोंसे क्या होसकता है , हे बर्तास्त्रन् ! जो मनुष्य श्रायु पूरी द्दीनेसे एक वार मरजाता है वह फिर जीवित नहीं द्दीता ॥ ७ ॥ गन्धर्व श्रीर श्रृप्स्राकी यद विचारी कन्या श्रायु पूरी होजानेले मरखको प्राप्त हुई है, हे तात! इसके लिये किली प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये, परन्तु प्राचीन सहातमा श्रीर देवताश्रीने इस विषयकादक उपाय निकाल रक्खा है, डस उपायकी यदि तू परीका करेगा तो तुभै प्रमद्वारा प्रवश्यही मिल-जायगी ॥=॥ ६ ॥ वरने कहा कि—हे देवदूत ! देवताओंका कहाहुआ दह उपाय कौनसा है?,यदि जुक्षे मालूम होजायना तो में उसके ब्रद्ध-सार कार्य प्रवश्य ही फर्डमा, तुक्षे मेरी रचाई करनी चाहिये श्रर्थात दह उदाद सुक्ते वताकर केंग्र उदार अवस्पत्ती करना चाहिये ॥१०॥ देवदूतने पहा, कि—हे भृतुनन्दन ! त् अपनी आबी शाखुडस कन्या को देवे, हे एव (येसा करने से तेरी की प्रमहता उठकर खड़ी होजायगी ॥११॥ वहने कहा, कि-हे आकाशचारियोंने श्रेष्ठ देवदूत ! उस क्रन्याके लिये में जबनी जायी घाषु देता हूँ, बृहार, रूप और आम्-पर्यो सहित होरी जिया जीवित होजाय ॥ १२ ॥ उम्रश्रवा कहते हैं, कि-सदनन्तर सहातमा गंधर्यराज (प्रमहरा का विता) और देवदृत धर्म-राजके पासनय और उनसे कहा, कि-हे धर्मराज ! उठकी खी प्रम-द्वरा जो सरनई है उसको, उसके पतिकी श्राधी शायुले,यदि श्रापके च्यानमें आये तो जीवित करदीजिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ धर्मराज वाले कि-हे देवपूत । तुम खाहते होतो रुक्ती भागी वरुकी ही ह्याचा छात्र से जीवित होजाय ॥ १५ ॥ उप्रथवा कहते हैं, कि-ऐसा कहते ही वह

उद्दार्ग तथा । पत्रते चक्रतुसुन्न ॥ । तथाहै आ च पत्रात पत्रविद्यात्री । वर्त्त चित्रों ॥ १= ॥ स्त तद्या दुलंसां भाज्यो पत्रविद्यात्रह्माम् । वर्त् चक्रे वित्ताशाय जिल्लामां घृतवतः ॥ १८ ॥ स्त द्यूवा जिल्लामां, सर्वा स्त्रीवकोपसमन्वतः । श्रमिद्दन्ति यथासस्य गृह्य प्रदृर्खं सद्य ॥२०॥ स कदाचिद्वतं वित्रो रुहरभ्यागमन्महत् । श्रयानं तत्र चापश्यत् दुगुड्भं

वयसान्वितम् ॥२१॥ तत उद्दम्यद्ग्यं स कालद्रग्डोपमं तदा।कियांतुः कुरितो विप्रस्तमुवाचाथ दुग्डुमः ॥ २२ ॥ नापराध्यानि ते किश्चिद्र-द्दमञ्च तपोधन । संरम्भाच किमथे माममिट्सि रुपान्वितः ॥ २३ ॥ इत्याद्विप्वचित्रं औक्षोमे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रुरुवाच । मम प्राणसमा भाष्यां द्रष्टासीद्रज्ञोन हूं। तत्र मे समयो घोर श्रात्मनीरन वे रुतः ॥ १ ॥ भुजंनं वे सदा इन्यां यं यं पर्ययमि-रवर्षिती प्रमहरा, रुरुकी श्राप्ती श्रायुसे, जैसे निद्रामसे जागीहो तैसे

उठकर चैठी होगई ॥ १६ ॥ स्त्रीके लिये आधी आयु देनेवाले केवल रुर

के भाग्यमें ही इसप्रकार देखनेमें आया थो और इसप्रकार खोको आयी आयु देनेसे कक्की वहुत वड़ी आयुमेंसे आधी आयु कम होगई थी १७ तदन्तर उन दोनोंके माता पिनाने छुम लग्न (पूर्वाफाएग्रनी) के आने पर उनका विवाह करिदया और रुरुत्वा प्रमहरा एक दूसरेका हित चाहतेहुए ग्रानन्दसे दिन वितानेलगे ॥१=॥इतप्रकार कमलके केंसर की समान कान्तिवाली प्रमहरा नामक दुर्लम स्त्रीको पाकर प्रतपारी रुरुत खोग का नाश करनेकी प्रतिया करी ॥ १६ ॥ और वह जहां तहां सर्पोको देखते ही श्रायन्त कोपमें भरकर श्रपनेसे वने उतने जोरसे श्रखतेकर सर्पोको मारने लगा ॥ २० ॥ एक समय वह रुरू प्राव्या करा किसी योर वनमें स्तराहुत्या देखते हो आयुक्त अपनी से स्तराहुत्य की स्त्रीरा उण्डुत्य की स्त्रीरा स्त्री से स्त्रीत स्त्री से स्त्रीत स्त्री से सान श्रपना और उसको से स्त्री हा आप पन

हरने कहा, कि—हे भुजक्षम ! मेरी प्राण्समान प्यारी भार्याको एक दुष्ट सर्पने काटखायां था,उस दिन से ही मैंने उस सर्पके श्रपराधसे भयानक नियम करितयों हैं,कि—सदा जो २ सर्प मेरे देखनेमें श्रावेंगे (११४) असहाभारत झादिपन अ [दश

त्युत । ततीऽदं त्वां जियंसाित जीवितेनाय मोदयसे ॥ २ ॥ डुगडुमा हवास । अस्ये ते मुजगा ब्रह्मन् ये दसन्तीह सानवान् । डुगडुमानिष्ट-गंधेन न त्वं हिंसितुमईसि ॥ ३ ॥ एकानर्थान् पृथगथनिकदुःखान् पृथक्तुत्वान् । डुगडुमान्यमीविदम्त्वा न त्वं हिंसितुमईसि ॥ ४ ॥ सौतिरुवास । इति श्रुत्या वस्त्वस्य मुजगस्य उदस्तदा। नावधीद्भयसं-विस्नमित मत्वाय डुग्डुमं ॥ ५ ॥ उद्यास क्षेत्रं भगवान् इदः संयम-विज्ञ । कामं मां मुजग वृद्दि कोऽलीवां विकियां वतः ॥ ६ ॥ डुगडुम उद्यास । अहं पुरा दरो नाम्ना इद्वितालं सहस्रात् । सोऽहं सापेन विव्यव्य सुजगत्वसुत्वाता॥ शाहरुवास । किमर्थं सत्वांन् कुद्धो हिज-स्त्वां मुजगीत्त्य । किमन्तं सेव जालं ते वपुरेतद्वित्यति ॥ ६ ॥

इत्यादिपर्वीण पौलोमे दशमोऽध्यायः॥ १०॥ डगडुम उदाच । सका वशृत्य ये पूर्व खगमो नाम वै द्विजः । शृशं

WAS TO THE TOTAL OF THE POST O

डाहुम उदाव । तथा वश्व म पूर्व कामा गाम प । ह्या । पृथ्व म पूर्व म पूर्व कामा गाम प । ह्या । पृथ्व म प्राप्त कामा मार्ग कामार्ग काम

करना च्हाहिय ॥ ४॥ उग्रश्नम प्रदेश का राज्य स्वयं विश्व श्रिष्ठ स्वयं है स्वित्त चुराहुय है थे सातरव चन खुतने चे चन्नो कोई स्वित्त सातरव चन खुतने चे चन्नो कोई स्वित्त सातरव चन के स्वर्ण कीर सारा नहीं, किंतु उत्तकों घोरक देते हुए रहते दूसा, कि न्हें सर्प तृ क्षीत है? श्रीर सर्पकी योगि तृते किंच कारण पाई है, यह वात सुक्ष इच्छा होय तो वता ॥ ५॥ ६॥ बुंडुम कहता है, कि न्हें हरें! पहिले में सहस्राह्म तामका स्वर्ण था, फिर ब्राह्मणके शापको प्राप्त हो कर सर्पचीतिमें पहुँचमया हूँ॥ ७॥ यह सुनकर दुनने कहा, कि न्हें स्रोपिया था

होर श्रमी तुम्हें इस शरीरमें झोर कवतक रहना पड़ेगा,में यह सुनना बाहता हूँ ॥ = ॥ दशव श्रव्याय समाप्त ॥ १० ॥ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ इंडुभने कहा, कि—सत्यवादी और तपोवीर्यसम्पन्न सगम नाम-वाला एक ब्राह्मण सेरा वालकपनका मिन था ॥ १॥ वह एक दिन जब कि—स्रक्षिहोनके काममें एकचित्र हुआ वैठा था, उस समय मैंने

(Compress of the control of the con

(११५) श्रध्याय] ः भाषानुवाद लहित ः कृत्वा तार्णं भुजङ्गमम् । श्रक्षिहोत्रं प्रसक्तस्तु भीषितः प्रमुमोत् वे ॥२॥ लब्ध्या स च पुनः संज्ञां मामुबाच तपोधनः । निर्द् द्विव कोपेन सत्य-वाक् शंक्षितवतः ॥ ३ ॥ यथावीर्यस्वया सर्पः छतोऽयं महिभीपया । तथाबीयों भुजदुस्त्वं मम शापाद्धविष्यसि ॥ ४ ॥ तस्याहं तपसो वीर्यं जानानस्तत् तपोधन । भृशसुद्धिनहृद्यस्तमयोचम् तदा ॥॥ गरानः संम्रमारचैव प्राव्जलिः प्रतः स्थितः । सखेति हसतेद्रन्ते नर्गार्थं वै छतं मया ॥६॥ जन्तमर्रसि से ब्रह्मन् शापोऽयं विनिवर्श्वताम् । सोऽय माम-ववीद्दशुः भृशमुद्धिग्नचेतसम् ॥७ ॥ मृहुक्ष्णं विनिश्वस्य सुसंभ्रान्त-स्तपोधनः। नामृतं वै मया प्रोक्तम्भधितेषं कथञ्चन ॥ = ॥यत्त् बदयासि ते वाक्यं श्रुण तन्मे तपोधन । श्रुत्वा च हृद्दि ते पायवमिदमस्तु सदा-नय ॥ ६ ॥ उत्पत्स्यति रुष्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः । तं रष्टा शाप-मोज्ञस्ते भविता न चिरादिव ॥१० ॥ स त्वं रुगरिति ख्यातः प्रमतेरातमः जोऽपि च । स्वं रूपं प्रतिपद्याहमद्य बद्यामि ते हितम् ॥ ११ ॥ स वालस्वभावमं श्राकर खेलते २ तिनुकींका एक सांप वनाकर उससे उसको डराया और वह उससे उरकर मृद्धित हो भृभिपर गिरपटा ॥ २ ॥ वह ब्राह्मण सत्यवादी, उत्तम ब्रह्मची घोर तपको ही धन माननेवाला था, उसको जब चेतना हुई तम मोनो मुझै कोघसे भस्म करे देता हो, इसप्रकार लाल२ श्रांखें करके मुभाजे कहनेलगा,कि ॥३॥ मुक्ते डरानेके लिये तूने जैसा पराक्रमदीन भृठा सांप बनावा है, तू वैसा ही पराक्रमहीन सांप मेरेशापसे होजायगा॥शाहे तपोधन ! में उसके तपोवल को जानताथा, इसकारण में उकीसमय चित्तमें घवडाताह्या उसके सामने खडा होगया, श्रीर दोनो हाथ जोड प्रणाम करके निवेदन किया, कि—हे भाई ! यह तो सैंगे साधारण हॅसनेके लिये हीं तुमसे परिहास (मरुलरी) किया था॥ ५॥ ६॥ ह ब्रह्मन् तुम्हें मेरे ऊपर जमा करनी चाहिये. तुम अपने शापसे छुटाओ,सुकी श्रत्यन्त उद्विज्ञचित्र श्रौर घवड़ाहटमें पड़ाहुशा देखकर वह तपस्वी बार २ लंबेश्वास लेताहुआ कहनेलगा, कि-मेरा शाप किसीप्रकार भी सिथ्या नहीं होगा॥ ० ॥ = ॥ परंतु हे तपोधन ! में तुकसे जो वात कहता हूँ उसको सावधान होकर सन श्रीर है निर्दोग इस वात को सुनकर सदा अपने हृदयमें रखना ॥ ६ ॥ महात्मा अमृतिके एउ नामका परमपवित्र पुत्र उत्पन्न होगा, उसका दर्शन करते ही तू तुरंत शापसे छूटजायमा ॥ १० ॥ (फिर डुंडभ सर्पने कहा कि-) है तपी-धन ! तुम ही वह प्रमतिके प्रसिद्ध पुत्र रुरु हो, आज मैंने आपका दर्शन पोलिया, अब मैं अपने पहिले रूपको पाकर आपसे कुछ हितकी वात कहता हूँ उसको सुनो ॥११॥ पेसा कहते ही महायशस्वी उत्तस

(११६)

महाभारत आदिपर्व

[ग्यारहवां

डौगडुमं परित्यज्य रूपं विप्रर्पभस्तदा । स्वरूपं भास्वरं भूयः प्रतिपेदे

महायशाः ॥१२॥ इदं चोवाच वचनं स्रुमप्रतिमोजसम् । आहिसा

महायशाः ॥ १२ ॥ इदं चोवाच चचनं रुरमप्रतिमोजसम् । प्राहिसा परमो धर्मः सर्वप्राएम्ताम्बर्॥१३॥तरमात् प्राणमृतः सर्वाच हिस्याद् ब्राह्मणः क्वित् । ब्राह्मणः सौम्य एवेह भवतीति परा श्रुतिः ॥१४॥ वेदवेदाङ्गविचाम सर्वभूतामयप्रदः । श्राहिसा सत्यवचनं स्ना चेति विनिश्चितम ॥ १५ ॥ ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणापि च । स्विन

ावाताश्चतम् ॥ १४.॥ ब्राह्मणुरूप्य परा वसायवाता वारणापंचा काजः यस्य हि यो धर्मः स हि नेष्येत है तव ॥१६॥ दण्डचारणामुप्रत्यं प्रजानां परिपालनम् । तदिदं चित्रयस्यास्तिकर्म वै यूण मे रुरो ॥ १० ॥ जन-मेजयस्य यहोऽत्र सर्पाणां हिंसनं पुरा । परिजाणश्च भीतानां सर्पाणां

ब्राह्मणाद्पि॥ १८॥ तपोवीर्य्यवलोपेताह्नेदवेदाङ्गपारगात्। श्रास्ती-कादृह्वज्ञमुख्याद्वे सर्पसत्रे हिजोत्तम॥ १८॥

काह्महुज्जुख्याह्न एपस्य ग्रह्मारम् ॥ ११॥ इत्यादिपर्विण पौलोमे पदादशोऽध्यायः॥ ११॥ चरुरुवाच । कथं हिसितवान् सर्पात् सराजा जनमेजयः। सर्पा वा हिसितादित कमर्थं हिजास्ता॥॥ किमर्थं मोज्ञिताश्चैव पत्रगास्तेन धीमता। श्रास्तीकेन द्विजथेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यरोपतः॥ २॥ ऋषिरु ब्राह्मण् लुंडुंभने, सर्पकं स्वस्पकोत्यागक्र श्रपने पहिले श्रतितेजस्वी शर्तरेको एकर धारण् करिलया॥ १२॥ श्रोरश्चगाध्र वलवाले स्ट्रनि

से इसप्रकार कहा. कि—हे सकल प्राणियोंमें उत्तम महात्मन् !श्रहिंसा ही परमधर्म है, इसकारण ब्राह्मणको कभी भी किसीपाणीकी हिसा नहीं करनी चााहये, क्योंकि वेदमें कहा है, कि-जगत् भर के मनुष्यों में ब्राह्मणका स्वमाय कोमल होता है॥१३॥१४॥वेद तथा सव

देदाङ्गीको जानना, सकल प्राणियोंको अभयदान देना, अहिंसा, सत्य-दादीपन और कमा आदि ब्राह्मणोंका धर्म है ॥ १५ ॥ और वेदोंको पढ़कर उनको स्मरण रखना भी ब्राह्मणका परम धर्म है, इसकारण आपको ब्राह्मण होकर क्षत्रियके धर्मके अगुसार वर्णाव नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ दराड धारण करना, उम्रता रखना और प्रजाका पालन करना यह चत्रियका धर्म है, हे श्रेष्ट ब्राह्मण घर। पहिले राजाजनमेजय

कराग वह साजिता वा होनेलगा था वह कथा, श्रीर उस सर्पथक से सर्पथक्षमें सांपीका नारा होनेलगा था वह कथा, श्रीर उस सर्पथक से सप्तभीत हुए संपीकी उस समय तपीवलवाले, वेद श्रीर वेदाङ्गके पारङ्गत एक श्रास्तीक नामक बाह्मखने रक्ता करीथी, वह भी सुनी १७-॥ १८॥ ग्यारहवा श्रथ्याय समाप्त ॥ ११॥ ॥

हरने कहा, कि-हे द्विजोत्तम! उस जनमेजय राजाने यश्रमें सर्पोंका वध करना क्यों आरम्भ किया था?॥१॥ और हे द्विजवर्य! बुद्धिमान् आस्तीकने उन सर्पोंकी रज्ञा किसकारण्से की थी? वह सब वृत्तांत में परा २ छुनना चाहताहूँ॥२॥ ऋषिने कहा कि—हे स्रो! तुम

Long torograver conservations

श्रध्याय] श्र भाषानुवाद सहित श्र (११७)
याच । श्रोष्यसि त्यं करो सर्वमास्तीकचरितं महत् । ब्राह्मणानां कथयतामित्नुक्त्वान्तरपीयत ॥३॥ सौतिरुवाच । रुरुक्षापि चनं सर्व पर्य
धावत्समन्ततः । तमृषि नष्टमन्विच्छ्न संश्रान्तो न्यपङ्घि ॥ ४॥ स
मोहं परमं गत्वा नष्टसंद्र इवाभवत् । तदपैर्वचनं तथ्यं चिन्तयानः पुनः
पुनः ॥ ४॥ लभ्यसंतो स्रुक्षायात्तदाचक्यो पितुस्तदा । पिता चास्य
तदाख्यानं पृष्टः सर्व न्यवेदयत् ॥६॥ इत्यादिपर्वणि सर्पसन्नप्रस्तावना
पौलोमं समाप्तम् द्वाद्शोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अधास्तीकपर्वे । श्रोनक उवाच । किमथै राजशार्वकः स राजाजनमेजयः । सर्पस-

त्रेण सर्पाणां गतोऽन्तं तद्ददस्य में ॥१॥ निखिलेन यथातस्यं सीते सर्वमधेपतः । श्रास्तीकथ दिजशेषः किमर्थं जपतां वरः । मोलयामास भजगान प्रदीप्ताद्वसुरेतसः ॥ २ ॥ कस्य पुत्रः स राजासीत सर्पसत्रं यं श्राहरत । स च द्विजातिप्रवरः कस्य पुत्रोऽभिधत्स्य मे ॥ ३॥ सौतिरुवाच । महदाख्यानमास्तीकं यथैतत् प्रोच्यते द्विज । सर्वमेतद-शेपेण शण मे वदतास्वर ॥ ४॥ शीनक उवाच । श्रोतमिच्छास्यशेपेण ब्राह्मणोंके मुखसे ब्रास्तीकका वडाभारी वृत्तांत सुनोगे, ऐसा कहकर महर्षि सहस्रपाद श्रन्तर्धान होगए॥३॥ उत्रश्रवा फहते हैं, कि---तदनन्तर भन्तर्थान द्राप उन भ्रापिको खोजनेके लिये रुरु उस वहेभारी वनमें चारों ग्रोर घमनेलगा श्रीर श्रंतको थफजानेसे मर्छित हो वावला सा वनकर भूमिपर गिरपडा और महामोहको वशमें होकर अचेतनसा होगया, चेत होनेपर सहस्रपाद ऋषिके उपदेशवचनीका वार २ स्मरण करता हुआ अपने आश्रममें आपहुँचा और अपने पितासे आस्तीकके विपयका वृत्तांत वृक्ता, तव उसके पिताने श्रास्तीकका सब वृत्तांत कह सुनायो ॥४-६॥ वारहवाँ अध्याय समात ॥ १२ ॥ # ॥ # ॥ शौनकने कहा, कि—हे सतपुत्र ! सिहसमान राजा जनमेजयने संपी का यह करके सर्पीका नाश किस कार एसे किया था ? वह सब मुक्ते पर्णरीतिसे सुनाश्रो तथा विजय पानेवालीमें श्रेष्ठ श्रीर द्विजोत्तम श्रा-स्तीकने धधकतीहुई अग्निमेंसे सपैंकी रहा किस कारणसे की थी? वह सब वृत्तांत जैसा हो तैसा मुभै सुनात्रो, जिसने सर्पयश किया था

यह भी मुभसे कहो ॥१-३॥ उन्नश्रवा कहते हैं, कि हे मुनिवर।में नुम से श्रास्तीकका वड़ाभारी दुर्तात जिसप्रकार है, तेसा ही कहता हूँ,उस सवको हे वकाश्रोम श्रेष्ठ ! नुम सुनो।४। शोनक कहते हैं, कि पुरातन द्युपि, यशस्वी श्रास्तीककी मनोहर कथाको में पूर्व रीतिस सुनना

वह राजा किसका पुत्र था और बाह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रास्तीक किसका पत्र था

(११६) * महाभारतं द्याविषयं * [तेरहवां हाधायेतां मनोरमाम् । झास्तीकस्य पुराल्पंज्ञांहालस्य यशस्विनः ॥॥ स्रोतिस्वाच । इतिहाससमं विष्ठाः पुराल् परिचक्तते॥६॥ कृष्णद्वेषा-वनप्रोक्तं नैसिवारत्ववास्तिषु । पूर्वं प्रचोदितः स्तः पिता मे लोमह-पंजः॥ ७॥ शिष्यो व्यासस्य मेथाधी ब्राह्मलेप्विद्मुक्तवान् । तस्माद-

ह्युपश्रुत्य प्रवच्यामि यथातयस् ॥ = ॥ इत्वनस्तीकमास्यानं तुभ्यं ग्रीतक पृच्छते । कथिष्यास्ययोपेया स्वर्णापप्रयोगामम्॥ ६॥ त्रास्ती कस्य पिता द्यासीत् प्रजापितसमः प्रभुः। महाचारी यताहारस्तपस्युत्रे रतः सदा ॥ १० ॥ कारकारिति स्यात कर्क्षरेता महातपाः । याया-वराणां प्रवरो धर्मनः ग्रीसितन्नतः ॥ ११ ॥ स्व कदान्तिस्महाभागस्तपो-वत्तसस्यितः । चचार पृथिवीं सर्वी यत्रसायगृहो सुनिः।१२। तीर्थेषु च समाप्तायं कुर्वसदित सर्वयः । चरत्वीचां महातेजा दुश्चरामक्व-तत्सिक्षः ॥ १३ ॥ वागुभक्तो निराहारः सुष्यक्वनिमिषो सुनिः। इतस्ततः

परिचरन्दीतपावकसप्रयः॥ १४ ॥ श्रदमानः कदाचित खान स ददर्श

चाहता हूँ, इसकारण मुमले उनकी कथा किये। उप्रश्रवा कहते हैं, कि—कृष्णुहैपायनले कहें हुए इस इतिहासको जाहाण पुराण कहते हैं। 8—६॥ पिहले व्यास्त्रजीके शिष्य और मेरे पिता बुद्धिमान सूत लोमहर्पणुजीने नैभिपारएयमें रहनेवाले जाहाणों के समीप उनके पृंकुने पर यह इतिहास कहा था और हे शीनक। मैंने उनसे जो कुछ सुना था, वह तुम सुकले पुनते हो तो तुम्हें सकता पापीका हरनेवाला आस्त्रीक का प्रास्त्राव जेता सुना है तिसा ही पूर्ण रीतिसे सुनता हूँ॥ ७-६॥ प्रास्त्रीक के पिता प्रजापतिकी समान शक्त यो, वह अविवाहत हो तेले किया व प्रत्रोचे के मत्त्र ये, वह अविवाहत हो नेत किया व प्रत्रोचे लगे रहते थे, चहा महातप में ही मेम रजते थे, विश्वा व प्रत्रोचे ता व स्वाचारी के प्रत्राच के स्वाचारी थे। १०० वह अविवाहत स्वाचारी के प्रत्राच के स्वाचारी थे। १०० वह अविवाहत स्वाचारी ये। १०० वह अविवाहत सहातपत्री जरकार नामसे पृथ्यी पर प्रसिद्ध थे, वह पक्त प्राप्तर्शे पर प्रदेश हो स्व

एक प्राममें एक ही रात रहनेवाले यावावरों में छेष्ट, धर्में श्रीर हड़वतधारी थे ॥ ११ ॥ वह महामान तपीवलधारी मुनि, एक समय वाद्यके निवले सकलम्मएडल पर विचरनेको चलदिये और जहां सार्थकाल होजाता था तहां ही उहरजाते थे॥ १२ ॥ इसमकार अनेकों तिथानिक काल करते हुए चारों और घूममे लगे, वह तेजस्वी बाह्यल यावाव आत्मलंदमलं पुरुषों से न होसकनेवाले अनेकों किंदिन निवसी काल करने उहां से ॥ १३ ॥ वह मुनि कभी बायुका

ही भन्नण करके रहलाते थे और कभी निराहार ही रहते थे उन्होंने निद्राकों भी जीतिलया था, प्रज्वित अग्निकी समान तेजस्वी इस ऋषिने एक दिस इधर उधर फिरतेहुए एक स्थान पर अपने

 भाषानुदाद सहित ॥ पितामहान् । लस्वमानीन्महागर्चं पादैरुईंरवाङ्ग्यान्।१५। तामन् बीत्स ह्यु व जरत्कारः पितामहान् । के भवन्तोऽवलवन्ते गर्चे हाहिम-क्रघोमुखाः ॥ १६॥ वीरणस्तम्बके सङ्गाः सर्वतः परिभक्षिते । सृषि-फेल निग्हेन गर्चें Sिस्मिनित्यवालिना ॥ १७ ॥ पितर ऊचुः । यायावरा नाम वयम्पयः शंसितवताः । सन्तानप्रक्यादुव्यप्रधो गच्छाम् सेदि-नीम ॥ १६॥ अस्माकं सन्ततिस्त्वेको जरत्कारुरिति स्मतः । मन्द्रभा-न्योऽल्वसाम्यानां तप एकं समास्थितः ॥ ३<u>६ ॥ न स पुत्रान</u> जनयिनं दारानमद्भिकीर्पति । तेन लम्यामहे गर्चे सन्तानस्य जयादिहः ॥२०॥ श्रनाथास्तेन नाथेन यथा दुष्कृतिनस्तथा। करूवं वन्ध्रुरिवास्माकम्मु-शोचिस सत्तम।। २१ ॥ शाव्मिच्छामहे बढान् को भवातिह नः स्थितः। क्रिमर्धज्येव नःशोच्याननुशोचितः सत्तम ॥ २२ ॥ जरत्काररुवाच । मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः सपितामहाः । बृतः क्षिः करवाएयद्य जर-त्कार्रोहं स्वययम् ॥ २३ ॥ पितर ऊचुः । यतस्य यत्मवांस्तात सन्ता-पितरीको उलटे शिर लटकते हुए देखा, यह एक गढे में ऊपरको पैर श्रीर नीचेको शिर हुए लटक रहे थं, पितामहाँको उलटे शिर लटकते हुए देखते ही जरत्कारने उनसे बुसा, कि-इस गढेमें उलदे शिर लटकनेवाले तम कौनहो ?॥१४-१६॥ इस गढेमें नित्य गुप्तरीति से रहनेवाले चहींने जिसकी जड़को चारी श्रोरसे काटडाला है ऐसे वीरण नामक तिनुकों के भूं छको पकड़कर तुम उलटे शिर लटकेतप हो ! ॥ १७ ॥ पितरीने फहा, कि-हम मायावर नामक तीव्रवतधारी ऋषि हैं और है बाएए ! सन्तान न होनेसे हम पृथ्वीपर नीचे गिरला-यँगे, जरत्कारुनामक हमोरा एक ही पुत्र है, परंतु हमारे मन्द्रभाग्यक कारणवह सन्दभाग्य पुत्र भी केवल तपका ही श्रवलम्बन कियेहुए है ॥ १= ॥ १६ । । उस मुर्खको पुत्र उत्प करने के निमित्त विवाह करने की इच्छा ही नहीं है, इसप्रकार अपुत्र होनेके कारण हम गढेमें लटक रहे हैं ॥ २० ॥ वह हमारा वंशधर है तो भी हम पापियोंकी समान अनाथसे होकर गिरे पडते हैं, हे सत्तम ! तू कौन है ? जो बान्यव की समान हमारी चितो करता है॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पास खडा हुआ तु कौन है ? हम यह जानना चाहते हैं और हे सत्युक्य ! शोक करनेयोग्य हमारी चितात् क्यों करता है ॥ २२ ॥। जरत्कारने कहा. कि-मेरे वितामहाँके सहित तुम मेरे पूर्वपुरुप हो और में ही जरत्कार हूँ, इसकारण कहिये कि—श्रव मुक्षे श्रापके निमित्त क्या करना चाहिये॥ २३॥ पितर कहने लगे, कि-तो है तात! तू अपने कलकी बृद्धिके लिये उद्योगी होकर परिश्रम कर, हे विभी । ऐसा

तारणाय व । शाश्वतं स्थानमासाद्य मोदंतां पितरो मम ॥ ३२ ॥

इत्यादिपर्वण्यास्तीके त्रयोदशोऽध्यायः । करनेसे त ग्रपने तथा हमारे लिये धर्मकार्य करनेवाला होगा ॥२४॥ हे तात !पुजवान पुरुप जिस गतिको पाते हैं, उस गतिको धर्मके फलों से और उत्तम प्रकारसे संग्रह कियेहुए तपसे मनुष्य नहीं पाते॥२५॥ इस कारण हे पुत्रक ! हमारी खाहासे तू विवाह करनेका उद्योग कर और पुत्र उत्पन्न करनेकी वातको अपने सनमें रख, इतना करनेसे ही मानो त हमारा परमहित करसकेगा ॥ २६ ॥ जरत्कारुने कहा, कि—में अपने जीवनके सुखभोगके लिये स्त्री वा धनका संग्रह नहीं ककुँगा, किंतु केवल तुम्हारे हितके लिये ही विवाह करल्गा,॥ २७॥ सेरी प्रतिहाक प्रवृतार जो कन्या मिलैगी में उसके साथ ही विधि-पूर्वक विवाह करूँगा, कि-जिससे मेरी घारणा सफल हो, परंत इसप्रकारसे यदि कोई कन्या नहीं मिलैगी तो में विवाह नहीं करूँगा ॥२८॥जिस कन्याका नाम मेरेनाम पर होगा श्रीर उसके कुटुम्बी यदि सक्षी भिज्ञारूपसे वह कन्या देदेंगे तो मैं उसके साथ यथाविधि विवाह करलंगा ॥ २८ ॥ परंतु अधिकतर तो सुकसे दरिद्रीको कन्या देगा ही कौन ? तथापि यदि कोई मुझै कन्या देदेंगा तो में उस भिचाको प्रहण करलंगा।। ३०॥ हे पितांमहो ! इस विधिसे विवाह करनेका मैं नित्य उद्योग कहुँगा, परंतु मेरी प्रतिज्ञाके अनुसार कन्या नहीं मिलैगी तो में विवाहका उद्योग नहीं करूंगा ॥ ३१ ॥ हे पितरों ! मैं अपने वचन

के अनुस्तार विवाह करनेका प्रयत्न अवश्य करूगा और आपको तार-नेके लिये उस स्त्रीमेंसे पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे कि—तुम अविनाशी स्थानको पाकर आनन्द भागोगे॥३२॥ तेरहवा अध्याय समाप्त १३ स्तीतिरुवाच । ततो निवेशाय तदा स विमः शंसितव्रतः । महीं चचार दारार्थी न च दारागिवन्दत ॥ १ ॥ स कद्दिव्यन्तं गर्या विमः पितृ-वचः स्मरन् । चुकीश कत्याभिकार्धा तिस्रो वाचः श्रातेष्ठ ॥ २ ॥ त वासुक्तः प्रत्यग्रहारुव्यम्य भिगीं तदा ॥ न स्तां प्रतिव्याद्यम्य भिगीं तदा ॥ न स्तां प्रतिव्याद त स्तानिति स्त्यम्ति चित्रव्यत् ॥ ३ ॥ स्ताम्भीं चोधतां भावर्थं शृतीयामिति तस्य हि । मनो निविद्यमस्यव्यवस्तराभिद्यानमः ॥ ४ ॥ तसुवाच महाप्रायो अरस्कारमहित्तवाः । हिनाम्नी भिगीवीयं ते बृहि सत्य भुजक्तम ॥ ४ ॥ वासुक्रवाच । जरकारो अरस्कारः स्वस्वयम्यज्ञा ममा भित्रगृतीय्व सार्व्याधं मया द्याचित्रवां सुम्यमाम् । त्यव्यधं रिक्ता पृष्यत्रीव्यव्यमं हिन्तो चमा ॥ इस्त्रा स्त्रा स्त

उग्रथवा कहते हैं, कि-तव्नन्तर तीद्ण्वतथारी वह जरत्कारु मुनि अपने ही नामकी, बाह्मण्जातिकी छोको पानेके लिये समस्त भूमएडल पर भूमण करनेलगे,परंत उनको अपनी इच्छानुसार स्त्री कहीं भी नहीं मिली ॥ १ ॥ तदनंतर वह बाहाए एक दिन वनमें जा,पितरोंके वचन को स्मरण करके धीमे स्वरसे तीन वार कन्याकी भिन्ना मांगनेलगे ॥ २ ॥ उनके भिज्ञाके वायवको सनकर नागराज वास्रुकि श्रपनी विहिन को लेकर तहां जरत्कारके सामने श्राया श्रीर उनसे कहा, कि-श्राप इस फन्याको ग्रहण फरलीजिये, परन्तु जरत्कारुने विचारा, कि -यह कन्या मेरे नामकी नहीं होगी, इसकारण उसकी स्वीकार नहीं किया ॥३॥ वर्षोकि—महात्मा जरत्कारु प्रतिज्ञा फरचुके थे, कि—यदि मेरे नासकी कन्या मिलैगी और उसके वंधु याधव शपनी :इच्छासे भिक्ता रूपमें दंगे तय ही में विवाह करूँगा, तदनन्तर महातपस्वी, परमव-दिमान जरत्कारुने वासुकिसे वृक्ता, कि-हेनागराज ! तुम टीक २ वताओ, कि-तम्हारी इस वहिनका नाम को है ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ वास-किने कहा, कि-हे जरत्कार ! इस मेरी छोटी वहिनका नाम जरत्कार है, यह कृशोदरी कन्या में तुम्हे अर्पण करता हूँ, आप इसके साथ विवाह करलें, हे दिजोत्तम ! श्रापको श्रर्पण करनेके लिये ही हैंने पहिलेखे इस कन्याको रखद्योद्धा था, इसको में यहां लाया हूँ, इस कारण श्राप स्वीकार करलीजिये ॥६॥ पेसा कहकर वह संदराङ्गी जर-स्कारुको विवाहके लिये अर्पण करदी, जरत्कारुने भी शास्त्रमें कड़ीएई विधिके अनुसार उस सरत्कारु नामवाली कन्याके काथ विवाह कर लिया और गृहस्थाश्रमको चलाने लगे ॥ ७॥चौदहवां श्रध्याय समाप्त उत्रश्रवाने महर्षि शौनकको संयोधन करके कहा, कि—हे ब्रह्महान

(१२२) # महाभारत श्रादिपर्च # पंद्रहवां जयस्य वो यज्ञे धदयत्यनिलसार्थाः॥१॥ तस्य शापस्य शान्त्यर्थं प्रद्दौ पन्नगोत्तमः। स्वसारमृषये तस्मै सुवताय महात्मने ॥२ ॥ स च तां प्रति-जब्राह विधिद्दष्टेन कमेगा। श्रास्तीको नाम पुत्रश्च तस्यां जज्ञे महा-मनाः ॥ ३॥ तपस्वी च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः । समः सर्वस्य लोकस्य पितुमातृभयापहः ॥ ४॥ श्रथ दीर्घस्य कालस्य पार्डवेयो नरा-धिपः। श्राजहार महायशं सर्पसत्रमिति श्रुतिः॥ ५॥ तस्मिन् प्रवृत्ते लजे तु सर्पाणामन्तकाय वै । मोचयामांस तान्नागानास्तीकः सुमहा तपाः ॥ ६॥ भ्रातृंश्च मातुलांश्चेव तथैवान्यान् स पन्नगान् । पितृंश्च तारयामास सन्तर्त्या तपसा तथा ॥ ७॥ व्रतेश्च विविधेव सन् स्वार्ध्या-यैञ्चानुगोऽभवत् । देवांश्च तर्पयामास यज्ञैर्विविधद्तिगौः॥८॥ ऋषीञ्च ब्रह्मचर्यंण सन्तत्या च पितामहान् । अपहृत्य गुरुं भारं पितृणां शंसि-तव्रतः॥ ६ ॥ जरत्कारुर्गतः स्वर्गं सहितः स्वैः पितामहैः । श्रास्तीकञ्च लुतं प्राप्य धर्मं चानुत्तमं मुनिः॥ १०॥ जरत्कारः सुमहताकालेन स्व-के पारदर्शी ! पहिले सर्पेंाने श्रपनी मातासे यह शाप पाया था, कि-राजा जनमेजयके यहामें श्रीय तम्है जलाकर भस्म करडालेगा॥१॥ उस शापकी शान्तिके लिये ही सपैंमि श्रेष्ठ वासुकिने सदाचारी महा-त्मा जरत्कारुको श्रपनी वहिन विवाह दी थी ॥ र ॥ उन ऋषिने भी विधियुक्त कियासे उस कन्याको ब्रह्ण करिलया था, उस कन्यामें उदार मनवाला आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न हुन्ना, वह महात्मा वेद श्रीर वेदके श्रङ्गोंका जाननेवाला, सवको समान दृष्टिसे देखनेवाला श्रीर माता पिता दोनोके कुलोंके भयको दूर करनेवाला था ॥३॥४॥ तदनंतर वहुत समय बीत जाने पर पाएडववंशके राजा जनसेजयने सर्पसत्र नामका एक वडाभारी यह किया, ऐसा हमने छुना है॥ ५॥ सपीका नाश करने के लिये ही आरंभ हुए उस यक्तमेंसे महातपस्वी ब्रास्तीकने भाई, मामा तथा ब्रन्य सपाँको वचाया था और सन्तान उत्पन्न करके तथा तप करके अपने पितरोंको भी तारदिया था ॥६॥ ॥७॥ हे ब्रह्मन् ! वह नाना प्रकारके ब्रत करके तथा स्वाध्योय फरके ऋषियोंके ऋगुले मुक्त हुआ था, तथा मांति २ का दक्षिणावाले यह क्षरके देवताओंको तुप्त किया था॥ = ॥उसने ब्रह्मचर्यका पालन करके ऋषियोंको लन्तुष्ट किया श्रीर सन्तानसे पितरोंको तुप्त किया था, इसप्रकार पितरौंके बड़ेभारी भारको उतार श्रास्तांक नामक पुत्रको इस लोकर्से होडकर तथा श्रेष्ठ धर्मका संग्रह करके प्रशंसाके योग्य आचरणवाला जरत्कार अपने पितांमहों सहित कुछ कालमें स्वर्गको सिधारगया, यह ग्रास्तीककी कथा मैंने जिस प्रकार सुनी थी तैसी

स्वयद्धं त्या । प्रीयामहे भृशं तात पितेवेदं प्रभापसे ॥ २ ॥ अस्मच्छु-अपूर्वे कित्यं पिता हि निरतस्तव । आचष्टैतद्यथाच्यानं पिता ते त्यं त्या वद ॥ ३ ॥ सौतिरुवाचात्रागुःमानिदमाख्यानमास्तीसं कथयामि ते । यथाश्रुतं कथयतः सकाशाहे पितुमंया ॥ ४ ॥ पुरा वेवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिस्तते गुमे । ब्रास्तां भिग्यो क्रपेण समुपतेऽद्भतेऽन्य ॥ ५ ॥ ते भाव्यं कष्ट्रपस्यास्तां फद्रश्च विनता च ह । प्रादात्तास्यां वदं भीतः प्रजापतिस्ता एतिः ॥ ६ ॥ कष्ट्यपे धर्मपत्तीभ्यां मुदा परमया गुतः। चरातिस्ता शुत्वेवं कश्युपादुत्तमञ्जते ॥ आ हर्णदम्यधिकां प्रीति प्रापतुः स्म वरस्त्रियो । वज्ञं कद्वः सुत्रवागान् सहस्रं तुत्रवच्चसः ॥ ८ ॥ हो पृत्री विनता वज्ञं कद्वः पुत्रवाणित्रको वले । तेजस्य वपुत्रा चैव विक्रमे

ही आपसे निवेदन करी, हे भृगुऊलशार्ट्स ! कहिये अब में आपको कीनसी कथा सुनाऊँ ॥ ६—११ ॥ पद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ क्ष शीनकने कहा, किन्हे स्तनन्दन ! तुमने जो विद्वान् सज्जन महातमा आस्तीककी कथा सुनाई, इसको ही फिर विस्तारसे सुनाइये, क्योंकि उसको सुननेकी हमें वड़ी ही उत्कंडा है ॥१॥ हे सीम्य ! तुम मधुर तथा कोमस अज्ञर और पदांवाली वाणीसे कथा कहते हो, इसकारण हे तात हम आपके कथनसे वड़े ही असन्न हुए हैं तुम अपने विताकी समान ही व्याख्या करते हो॥ २ ॥ तुम्हारे विता हमारी सेवाम सदा तरपर रहते थे, इसकारण तुम्हारे विताने यह व्याख्यान जिल्लाकार कहा हो ती हो हम भी हमें सनाआ। ॥३ ॥ व्याख्यान कहा, कि—हे आयुष्मन

हुत व्यावना अस्ति हुत है। हुन्हारे पिताने यह व्याव्यान जिलमकार कहा हो रहते थे, इसकारण तुम्हारे पिताने यह व्याव्यान जिलमकार कहा हो तेले ही तुम भी हमें सुनाश्रो ॥३ ॥उम्रश्रवाने कहा, कि—हे श्रायुक्तमन् मैंने यह आस्तिकती कथा पिताजीसे जैसी सनी है, श्रविकल तैसी ही में तुमसे कहता हूँ ॥४ ॥ है निर्दोग प्रध्यत् । पिहले देव (सत्य) युगमें दत्त प्रजापितकी कहा श्रीर विनता नामवाली परमसंदुरी और गुणवाती दो कत्याएं थीं, वह दोनो चहने महिंप कश्यपको विवाही गई थीं, एक समय प्रजापित समान कश्यपजीने उन दोनो गुणवाती खिन्यों के कपर परमप्रसन्न होकर उन्हें बरदान देना चाहा वह दोनो उत्तम खित्र यह सुनकर कि—कश्यपजीसे उत्तम वरदान सित्ता, परण्य समा हुई श्रीर श्रात क्षानन्द पाकर उनमेंसे कहा कहा, कि—मेरे समानवती एक सहस्त नाग पुत्र हों ॥ ५—= ॥ और विनताने मांगा, कि—यलमें, तेजमें, शरीरमें श्रीर पराक्रममें कहा से हलार पुत्रीसे भी

(१२४) * महाभारत द्यादिपव *

गाधिकी च तो ॥ ६ ॥ तस्यै भर्त्ता वरं प्रादादस्यर्थं पुत्रमीप्सितम् ।
एवमस्तित तं चाह कश्यपे विनतां तदा ॥ १० ॥ यथावत् प्रार्थितं
लब्ध्वा वरं तुष्टाभवत्तदा । कृतकृत्या तु विनता लब्ध्वा वीर्व्याधिकौ
सुतौ ॥ ११ ॥ कद्र्श्व लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रः तुल्यवच्चंसाम् । धार्व्यो प्रयत्ततो गर्भावित्युक्त्वा स महातपाः । ते भार्व्यं वरसन्तुष्टे कश्यपा वनमाविश्यत् ॥ १२ ॥ । सौतिष्वाच । कालेन महता कद्र रण्डानां दश-तीर्द्वय । जनयामास विभेद्य द्वे चाएडे विनता तदा ॥ १३ ॥ तयोरएडानि

िसोलहर्वा

तित्रभुः प्रहृष्टाः परिचारिकाः । स्वेपस्वेदेषु भारडेषु पञ्चवर्पशतानिक ॥ १४ ॥ ततः पञ्चशते काले कद्र पुत्रा विनिःस्ताः । श्रराडाम्यां चिन-तायास्तु मिथुनं न व्यवस्थत ॥ १५ ॥ ततः पुत्रार्थिनी देवी ब्रीड़िता च तपस्थिनी । श्रराडाम्यां चिन-तायास्तु मिथुनं न व्यवस्थत ॥ १५ ॥ ततः पुत्रार्थिनी देवी ब्रीड़िता च तपस्थिनी । श्रराडं विभेद विनता तत्र पुत्रमपस्यत ॥ १६ ॥ पूर्वार्ड्डका-यसम्पन्नमितरेषायकाशता। सपुत्रः कोधसरंष्धः शशापेनामिति श्रुतिः ॥ १८ ॥ प्राचेत्रमानिक्ष्या सोस्पर्यस्य च्या विन्पर्द्धसे सह ।

श्रिक बलो दो पुत्र भेरे होयँ॥ ६॥ ब्रह्मचँयँका पालन करनेवाले भगवान् कर्यपने, विनताको उसकी इच्छानुसार छलको परम पवित्र करनेवाले 'ते पुत्र होनेका परदान उस समय विनतासे 'तथास्तु,' कहकर दिया ॥ १० ॥ विनता श्रिक पराक्रमी दो पुत्रों का सरदान पाकर अपनी प्रार्थनाके श्रमुसार वर मिलकानेसे उस समय खंतुष्य श्रीर छतकरय हुई ॥ ११ ॥ उधर कड्र भी समान तेजवाले हजार पुत्र होनेका वरदान पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई, महातपस्त्री क्रयपनी, वरदान पाकर परममसन हुई अपनी दोनो लियोंसे तुम चलसे श्रपनी गर्भकी रसा करना, ऐसा कहकर वनमें चलेगए॥ १२॥

चलल अपन गमका रहा करना, पक्षा कहकर वनम चलगपा। (रा)
उन्नश्रवाने कहा, कि—हे चिमेन्द्र! तदनन्तर कुछ समय वींत जाने पर
कह्नू ने एक सहस्र अगर्डे और विनताने दो अग्रेड उत्पन्न किये,॥१३॥
किर उनकी सेविकाओंने प्रसन्न होकर उनके अग्रुडोंको जुदे २ उच्चातागुक पात्रोंमें घरिदेये, पांच सौ वर्ष वीतजाने पर कह से वच्चे
सहस्र अग्रुडोंको फोडक उनमेंसे वाहर निकले, परन्तु विनताके
दोनो अग्रुडोंकी फोडक उनमेंसे वाहर निकले, परन्तु विनताके
दोनो अग्रुडोंकी परिच्या विनता देशी लक्षित हुई और उसने
पुनकीइच्छावाली तपस्यिनी विनता देशी लक्षित हुई और उसने

पुत्रकोहच्छावाला तपास्वनी विनता देवा लाजत हुइ आर उस्तन एक झगड़े को फोडकर देखा तो ऊपरके आये मागमें परिएक्व अवयर्षो वाला और नीचेके भागमें अपक्व अवयर्षोचाला एक पुत्र झगड़े में दीखा अपनेको अपक दशामें वाहर निकाल लेनेसे उस तत्कालको जन्मे पुत्रने कोथके आवेशमें आकर माता को ग्रांप

स्त्र मामिदाराडीभ्यत्तात् । न कारण्यस्यनः वा त्यः वाग यशः स्वितम् ॥ २० ॥ प्रतिपालयितव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया । विशिष्टं । विशिष्टं । व्यक्तमेष्मत्त्त्या पञ्चवर्षप्रतात्परः ॥ २१ ॥ पदं प्रश्चा ततः पुने विन्नतामन्तरीत्त्वनः । श्ररुणे दश्यते व्रक्षन्त्र प्रभातसमये छदा ॥ २२ ॥ श्रादि त्यस्थमध्यास्ते लास्थ्यं समक्तययन् । गरुडोऽपि यथाकालं जाते पृशा-प्रभाताः ॥ २२ ॥ स जातमात्रो यितातं परित्यस्य स्वयादिशन् । श्रादा । स्वातमात्रो भोज्यसर्थं विशितमस्य यत् । विशादा भृतशाद्यादं लच्चितः

पन्ननेश्वरः ॥ २४ ॥ एत्यादिपर्वणि प्रास्तिके पोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ स्त उद्याच । पत्रस्मितेव काले तु भगिन्यो ते तपोधन । शपश्यतां समायातमुखैःश्रक्तसन्तिकात् ॥ १ ॥ यन्तं देवगंखाः स्वयं हृष्टक्पम-पूज्यन् । मस्ययमानेऽमृते जात्रभश्यरत्नमनुत्तमम्॥शाधमोष्ठयन्नमञ्जा-

दिया, कि—हे मातः ! तृने श्रसमयमें सुक्षें लोमसे वाहर निकालकर मेरे शरीरको श्रभ्रा रहनेदिया इसकारण, तृ जिस क्रीके साथ सीतिया ज्ञाह करती हैं, पांच सो वर्षतक तुक्षे उस लोकी ही दांसी वनकर रहना पड़ेगा परंतु हे मातः ! तृने केस श्रराउँको कोड़कर मुक्षे श्रराहीन करिया है, रेसे ही इस दूसरे तपस्वी पुत्रको श्रराज भोड़कर श्ररहीन वा श्रप्त श्रे केसे श्रीरही वा स्वपूर्ण श्राहीन वा श्रप्त श्री हो सही करिया है, रेसे ही इस दूसरे तपस्वी पुत्रको श्ररा को स्वत्व स्वाप्त स्वाप्त

द्या ॥ १४ ॥ २०॥ याद तुभ प्रापक वलवान पुत्रका इच्छा हाय ता धीरज घरकरपांच सो वर्षपर्यन्त इसके जन्मकी प्रतीचा कर, पाँचसी पर्य वित्त पर उसका जन्म होगा तव ही तू शापसे छूटेगी ॥ २१ ॥ इसप्रकार वितताको शाप देकर उसका पुत्र शाकाशों को चहुगया, हे ब्रह्मत् । यह स्पर्यके रथके ऊपर वैठकर स्त्रीका लारधीपना करनेलगा जो कि प्रातःकालके समय श्रव्यक्रपासे श्रव भी नित्य दर्शन देता है, पाँचसी वर्ष प्रदेशित पर दूसरे श्रप्डों से सपाँका भोजन करनेवालेगवड़ जी भीउत्पक्ष हुप ॥ २२॥ २३ ॥ हे भृगुशार्द्ल । यह विनताके पुत्र श्रीर सकत पत्तियों से राजा गव्हजी जन्म होतही श्रपनी माताको त्याग कर भुल लगी होनेके कारण विधातो श्रपन लिये जो श्रान ही क

करके रक्खा था उसको लेनेके लिये श्राकाशमेंको उउगए ॥ २८॥

नाझुत्तमं जगतां वरम् । श्रीमन्तमजरं दिव्यं सर्वकृत्वण्यूजितम् ॥ ३ ॥ श्रीनक जहान्य। कथं तद्मृतं ऐवेर्मथितं क च शंख मे। यत्र जक्षे महावीर्य्यः खोऽश्वराजो महाचुतिः॥शास्त्रीतिरुवाच । ज्वलन्तमचलं मेरुं तेजोराश्रिमचुत्तमम् । ज्ञान्तिपन्तं प्रभां मानोः स्वयृङ्गेः काञ्चनोज्ज्वलेः ॥ ५ ॥ कृतकाभरणं चित्रं देवगन्ध्वयं सितम् । श्रप्रमेयमनाश्रूप्यमधर्मवहुले जैतेः ॥ ६ ॥ व्यालेराचरितं चोर्रेहिंच्यौषधिवदीिषतम् । नाक्तमान्तस्य तिष्ठन्तमुच्च्ययेष महागिरिम् ॥ ७ ॥ अगम्यं मनसाप्यन्यैर्नरीष्ट्रक्तसम्वितम् । नानापतंगसंबैध्य नादितं सुमनोहरेः ॥ म ॥ तस्य यृङ्गसुपा-रुख चहुरत्नाचितं शुभम् । श्रमन्तकर्पमृहस्यं सुराः सर्वे महोक्तसः ॥ ॥ ॥ तस्य वहुरत्नाचितं शुभम् । श्रमन्तकर्पमृहस्यं सुराः सर्वे महोक्तसः ॥ । तस्य त्रामगम्य ॥ ॥ तस्य त्रामगम्य ॥ ॥ तस्य सन्त्रयितुमारव्यास्त्रज्ञासीना दिवोकसः । श्रमृताय समागम्य त्रोनियमसंयुताः ॥ १० ॥ तव नारायणो देवो ब्रह्माण्यित्मस्यवीत् । चित्तवरु च सर्वणः । स्वैरस्र संवैश्वमय्यतीं ।

िसत्रहवां

तपोनियमसंद्रुताः ॥ १० ॥ तत्र नारायणो देशे ब्रह्माण्मिद्मब्रवीत् । चिन्तयत्सु सुरेष्येवं मन्त्रयत्सु च सर्वशः ॥११॥ देवेरसुरसंघेश्च मध्यतां कलशोद्धिः । भविष्यत्यमृतं तत्र मध्यमाने बहोद्धौ ॥१२॥ सर्वोपधीः था, खद्यद्को मध्यते समय उसमेंसे वह एक रत्नरूप निक्रला था ख्रोर सव देवता उस हुए पुष्ट तथा रूपवान् घोड़ेकी पूजा करते थे

॥ १—३॥ श्रोनक वृक्षते हैं कि—देवताओं ने किस प्रकार समुद्रको सथकर त्रमृत निकाला था और उसको किस स्थान पर निकाला था ? कि—जिसमें से परमकान्ति और महाग्रारीरवाला यह अश्वराज उत्पन्न हुआ था, उस कथा को कही ॥ ४ ॥ उप्रश्वनों कहा, कि—जिसमें से परमकान्ति और महाग्रारीरवाला यह अश्वराज उत्पन्न हुआ था, उस कथा को कही ॥ ४ ॥ उप्रश्वनों कहा, कि—जुनर्गं ती समान दमकते हुए अपने शिखरों से पूर्वनी कान्तिका भी तिरस्कार करनेवाला मानो खुनर्गं के आभूपण पिहरे, बड़ा आक्षर्य करनेवाला, देवता और गन्धवां से सेवित, जिसका नाप न होसके, जिसको अधर्मी मनुष्य देख भी न सके पेला भयानक सर्पों से भरा, दिव्य औषध्यांसे समलता हुआ, उज्जाहं से स्वर्गलाकों अरेहुए, इसराकों मनसे भी अगस्य, नदी और चुन्तेंसे परिपूर्ण, मनोहर नाना क्रांत प्रत्या के प्रत्या हुआ, तेजका हर चुन्तें से पिहर्गं से स्वर्ग तेजका हर और पर्वतों से सवसे उत्तर र के सर्पोंसे गुंजारता हुआ, तेजका हर और पर्वतों में सवसे उत्तर मेर नामवाला एक महापर्वत है ॥ ५- = ॥ उस पर्वतके, अनेको रक्षां से सरपूर उत्तम और आकाशसे कुछ ही

बुद्धिमान् देवता इकट्ठे हो अमृत पानेके लिये विचार करनेलगे ॥ ६ ॥ ॥ १० ॥ सव देवता विचार कररहे थे, उस समय ही भगवान् नारा-यस्ने ब्रह्माजीसे कहा, कि—तुम छुर और असुरोंको साथ लेकर अमृतके लिये समुद्रको मथो, समुद्रका मथन करने पर उसमेंसे अमृत उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ और हे देवताओं ! समुद्र को मथने

कम ऊँचे शिखर पर चढ़कर, तपस्वी श्रीर नियमसे रहनेवाले परम

अध्याय] # भाषानुवाद सहित # समाबाप्य सर्वरत्नानि चैव हामध्नध्वमुद्धि देवा वेत्स्यध्वममृतं तनः॥ इत्यादिपर्वणि अमृतमन्थने सप्तदशोऽव्यायः॥ १७॥ सौतिरुवाच । ततोऽभ्रशिखराकारैंगिरिश्क रलंकतम् । मन्दरं पर्व-तवरं लताजालसमाञ्जलम् ॥ १ ॥ नानाविद्यसमुष्टं नानादृष्टिसमाञ्ज-लम् । किन्नरेरप्सरोभिध्व देवैरपि च सेवितम् ॥२॥ एकादशसंहस्राणि योजनानां समुच्छि तम् । अधोभूमेः सहस्रोपु तावतस्वेव प्रतिष्ठितम् ॥३॥ तमुद्वर्त्तमशंका व सर्वे देवगणास्तवा । विप्णुमासीनमभ्येत्य ब्रह्माणं चेदमव वन् ॥ ४ ॥ भवन्तावत्र कर्वातां वृद्धिः नैश्रेयसी पराम । मन्दरोद्धर्णे यत्नः क्रियताञ्च हिताय नः ॥ ५ ॥ सातिरुवाच । तथेति चाववीदिष्णार्वासामा सह भागव । अचोदयदमेयातमा फणीन्द्रं पद्मलो-चनः ॥ ६ ॥ ततोऽनन्तः समुत्थाय ब्रह्मणा परिचोदितः । नारायग्रेन चाप्युक्तस्तस्मिन् कर्मणि वीर्य्यवान् ॥ ७॥ श्रथ पर्वतराजानं तमनन्तो महायतः । उज्जहार यलाद्व्यसन् सवनं सवनोकसम् ॥ = ॥ ततस्तेन पर उसमेंसे सब श्रीपधियें और सकल रहा भी तमहें मिलेंगे और

उसके पीछै फिर समुद् को मथने पर उसमेंसे श्रमृत निकलेगा॥१३॥ सम्रहमां श्रध्याय समाप्त ॥॥१०॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

उप्रथवा कहते हैं. कि-वादलीके शिखरीकी समान श्वेत शिखरीसे शोभांयमान श्रनेकी लताजालींसे भरपूर,नानाप्रकारके पिचयीके मधुर स्वरींसे गुज्जरित, अनेकों प्रकारके डाढ्वाले पशुश्रींसे भरपूर, किन्नर अप्सरा और देवता श्रीसे सेवित, ग्यारह सहस्र योजन ऊँचा श्रीर उतना ही नीचे भिममें गढाहुआ पर्वतोंमें श्रेष्ट मन्दर नामका एक पर्वत है १-३ उसको सब देवता उखाडने लगे, परन्त वह उखड नहीं सका. तब जहां विष्णु और ब्रह्माजी वैडेथे तहां उनके पास जाकर कहनेलगे कि ॥ ४ ॥ महाराज । श्राप दोनो इस कार्यमें कल्याणकारिली जो यक्ति होय उसको बताह्ये श्रीर हमारे हितके लिये मन्दराचलको उखाउँनेमें सहायता दीजिये ॥ ५ ॥ उग्रश्रवा कहते हैं, कि—हे शौनक !तदनन्तर ब्रह्माजीके पास चैठेहुए, कमलकी समान नेत्रीवाले श्रीर जिनके स्वरूप की तर्फना भी नहीं होसकती ऐसे भगवान विष्णुने 'वहत श्रच्छा. कहकर देवताश्रीका काम साधनके लिये सपेंकि राजाशेपजीको मन्द राचलको उखाडनेकी प्रेरणाकी, नारायण तथा ब्रह्माजीकी प्रेरणा होने पर महावली श्रनन्त भगवान् उस कामके करनेको तत्पर हुए श्रीर हे ब्रह्मन् । वन तथा वनवासियों सहित श्रपने वलसे उस पर्वतराजको

उंखाड़दिया ॥ ६- ॥ श्रौर तदनन्तर देवताश्रोंके साथ समुद्रके तटपर श्रावे. उस समय देवताश्रोंने समुद्रसे कहा, कि—हे सागर ! इस

सहाभारत श्रादिपर्व # **िश्रटारहवां** (१२⊏) सुराः सार्द्धं ससुद्रसुपतस्थिरं । तमृञ्जरमृतस्यार्थं निर्मधिष्यामहे जलम् ॥ँ ६ ॥ श्रपाम्पतिरथोवाच ममाप्यंशो भवेत्ततः । सोहास्मि विपुतं मई मन्दरभ्रमगादिति ॥१०॥ ऊचुश्च कूर्मराजानमक्पारेसुरासुराः । अधि छानं शिरेरस्य भवान् भवितुमर्हति ॥ ११ ॥ कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठ-सस्य जमर्पितम् । त शैलं तस्य पृष्ठस्थं सन्त्रेगेन्द्रो म्चपीडयत् ॥ १२ ॥ मंथानं संदरं छत्वा तथा नेत्रञ्च वासुकिम् । देवा मधितुमारच्याः लमुद्रं निधिमस्यसाम् ॥ १३ ॥ श्रमृतार्थं पुरा ब्रह्मं स्तथैवासुरदानवाः। एकंयन्तमुपाश्किष्टा नागराजो महासुराः ॥१४॥ विवुधाः लहिताः सर्वे थतः पुच्छं ततः स्थिताः । श्रनन्तो भगवान्देवो यतो नारायण्स्ततः । शिर उत्स्विप्य नागस्य पुनः पुनरवाक्तिपत् ॥ १५ ॥ वालुकेरथ नागस्य सहसा विप्यतः सुरैः । सधूमाः सार्चिपो याता निष्पेतुरसङ्ग्युसात् ॥ १६ ॥ ते धूमसंबाः सम्भूता मेघसंघाः सविद्युतः । अभ्यवर्षन् सर-राणान् अमसन्तापकपितान् ॥ १७ ॥ तस्माख गिरिक्टरप्रात् प्रच्युताः पुष्पबृष्ट्यः । सुरासुरगणात् सर्वान् समन्तात्समवाहिरन् ॥ १ = ॥

अमृतकी प्राप्तिके लिये तेरे जलको मथना चाहते हैं॥ ६॥ उस समय समुद्ने उत्तर दिया, कि-श्रन्छा मधलो, परंतु उत्तरेले सुक्षे भी भाज सिलना चाहिये, द्योंकि-सुक्षे भी मंदरावलके अमलले वड़ा दुःख सहना पड़िंगा॥ १०॥ फिर देवता झीर दैत्य, ससुद्र के समीपमें जहां, क्रमेराजा था तहां गए और उससे कहनेलगे कि—हे हर्मराज ! तुम्हें श्रोपनी पीठपर इस पर्वतको धारण करना पर्छेगा कुर्मराजने बहुत श्रेच्छा कहकर स्वीकार करिलवा और अपनी पीट अर्पण की तब इन्द्रने संब पढ़कर मन्दराचलको कुर्मराजकी पीठपर ला घरा ॥ ११ ॥ १२ ॥ है जहान ! तदनन्तर मंदर।चलको रै और वासुकि को रस्त्री वनाकर देवता और दैत्य अमृतके लिये समुद्को मधनेलगे, उस समय अस-रीने मिलकर वासुकिके फनको श्रीर सप देवतताश्रीने इकट्टे होकर बासुकिकी पृंछको पकड़ा था, सगवीन नारायण नागका विष चार र माथा उँचा करके दुव्वीपर डालते जाते थे अर्थात् उसके मुखमें छै क्षड़तेष्टुष दिपको सहत करते थे॥ १३—१५॥ देवता वासुकि नाग को एकसाथ ऐसे जोरसे खेंचनेलगे, कि—उसके युखमेंसे भूऔं ब्रीर ब्रिप्तिकी चिनगारियों लहित श्वालको वासु वार र निकलनेलगा ॥ १६ ॥ उस घएंडा समृह विजलीसहित सेघ वनकर, सथनेके परि-

अञ्चल्क व्याञ्जल हुए देवतात्रोंकी थदावट दूर करनेके लिये उनके ऊपर वरसनेलगा, १९७ दूसरी श्रोर मंदराचलके शिखरोंपर के बूचोंकें से देवता और दानवांके ऊपर चारों श्रोरचे पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी॥१=॥ अञ्चलका कराज्य कराज्य वर्षा स्वारों अव्याय] ** मार्याष्ठ्रपाद साहतः ** (९८६) वात्र महानादो महामेघरघोषमः । उद्घेर्मध्यमानस्य मन्दरेण सुरास्तरेः ॥ १८ ॥ तत्र नानाजत्तवरा विनिध्यद्या महाद्विणावित्रयं समुपाजगमुः शतरा विचयानित ॥ २० ॥ वारुणानि च मुतानि विविधानि महा-घरः । पातालतत्तवासीनि विलयं समुपानयत् ॥ २१ ॥ तस्मिश्च भ्राम्य-माणुद्धौ सङ्ग्रुप्यन्तः परस्परम् । न्यपतन् पतनोषेताः पर्वतात्रानम-हाद्रमाः॥२शातेषां सङ्ग्र्यंज्ञश्चाद्विर्राचिभः प्रज्यतन्मुष्टः । विद्युद्धिरिय नीलान्ममावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥ २३ ॥ दद्दाह् क्रुज्जरास्त्व सिहांश्चेय

धिनिर्गतान्। विगतान्ति सर्वाणि सस्यानिविविधानि च ॥२४॥ तम-ग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः।वारिणामेघजेनेन्द्रः ग्रमयामास सर्वग्रः ॥२४॥ततो नानाविधास्तत्र सुम्रु युः सागराम्भतिमद्दाद्रुमाणां निर्यासा चहवद्योपधीरसाः ॥ २६ ॥ तेगममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च । स्रमरत्वं सरा जभाः काञ्चनस्य च निस्नवात् ॥ २० ॥ ततस्तस्य सम्-

॥ १८ ॥ इसक्रकार देवता और प्रसुर मन्दराचलसे समुद्रको मधने तो उस समय मधेजातेहुए समुद्रमें से घोर घनघटाके गंभीर

धूमनेसे समुद्रमें रद्दने वाले नानाप्रकारके सहस्यों जन्तु पिसकर मरगप ॥ २० ॥ ज्ञीर वरणलोक तथा पातालमें रहनेवाले क्ष्मेका गाणियों को भी मंदराचलने छचल कर चूरा करडाला ॥ २१ ॥ ज्ञीर वह पर्वत जिस समय समुद्रमें धूमताथा उस समय उसके ऊपरके यहे २ वृत्त ज्ञापसमें टकराते, लडसे उसड़कर पिचयों सहित समुद्रमें गिरते थे ॥ २२ ॥ कितने ही बृत्तीका धापसकी रगड़से वार वार सप्टॉके साथ प्रक्षि प्रक्षाति होताला था और जैसे बिजली में में मंदराचलको वालेता था ॥ २२ ॥

गर्जने की समान वड़ा भारी शब्द होनेलगा ॥ १८ ॥ मंदराचलके

मेधकी श्याम घटाको छालेती है तैसे मदराचलको छालेता था॥२॥ हे बाहाणों! प्रज्वलित हुआंवह श्रव्धि तिस पर्वतमेसे वाहर निकलेहुए सिंह हाथी तथा श्रन्य प्राण्यहित हुए नाना प्रकारके सकल प्राण्यों को भी भस्म करेडालता था॥ २४॥ तदनंतर देवताओंके राजाइंद्रने जल पर्पो कर चारों श्रोर प्रज्वलित हुए श्रद्भिको शांत करदिया जले

जल वर्षा कर चारों थ्रोर प्रज्वलित हुए श्रिक्तो शांत करिदया जले हुए वड़े र वृत्तीके गाँद श्रीर श्रीपिथ्योंके श्रानेकों रस निकल २ कर सागरमें वहनेलगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ तव्नंतर हे ब्राह्मखाँ ! उन श्रीपथाँ के श्रम्तमय वीव्याले रसाँसे मिलेहुए जलके श्रीर खुर्णभ्य पर्वत मेसे वहेहुए खुनहरी जलसे देवता श्रमर होगए ॥ २० ॥ तव्नंतर उत्तर कही हुई श्रमतमय वीर्यवाली श्रीपिथ्योंका जल श्रीर स्वर्णमय

पर्वतका जल सागरके जलमें मिलजाने पर सागरका खारी जल दूध की समान होगया और वह दध श्रेष्ठ रसोंके साथ मिलने पर घी